मणि-मंथन

प्रवचनकार

पूज्य गणिवर्य श्री मणिप्रभसागरजी म

सपादन

दर्शनाचार्य साध्वी श्री शशिप्रभा श्री जी म

साध्वी सौम्यगुणा श्री जी म. शास्त्री

कान्ति प्रकाशन

प्रवचनकार

पूज्य गणिवर्य श्री मणि प्रभ सागरजी म. सा.

प्रेरणा

पूजनीया प्रवर्त्तिनी श्री सज्जन श्री जी म. सा.

संपादन

दर्शनाचार्य पू. साध्वी श्री शशिप्रभा श्री जी म. सा.

साध्वी सौम्यगुणा श्री जी शास्त्री

प्रकाशन

वि. सं. 2047

श्रावण पूर्णिमा

प्रकाशक

कान्ति प्रकाशन

शिवकर रोड

बाडमेर

मुद्रक

मणिधारी आफसेट प्रेस

2463, बाजार सीताराम, दिल्ली—110006

दूरभाष 261023

मूल्यः रुपये 25-00 मात्र

अर्थ सहयोग

प पू जैन जगत की अनुपम थाती, आगम ज्योति,

स्व प्रवर्त्तिनी श्री सज्जन श्री जी म सा की

पट्टधर शिष्या

विदुषी आर्या रत्न श्री शशिप्रभा श्रीजी म सा की

सत्प्रेरणा से

स्व उम्मेद सिह जी सा मेहता मकराणा वालों की पुण्य स्मृति में

उनकी धर्मपत्नी बुगल बाई सा

फर्म

मेहता मार्बल इण्डस्ट्रीज, मेहता ब्रदर्श

विपिन कुमार मनोजकुमार, दीपक मार्बल्स

पकज मार्बल्स, मेहता मार्बल एम्पोरियम

c/o मेहता ब्रदर्श गेस्ट हाउस

पो बॉ न 11/17, पो मकराना (नागोर-राज) पिन 341505

न्यू इण्डिया मार्बल

5/175 जी आई डी सी पो नरोडा (अहमदाबाद-गुज)

फोन घर 2050 ऑफिस 2165 2304

प्रकाशकीय

युवा मनीषी, सतत कठोर परिश्रमी, वहुआयामी व्यक्तित्व के धनी पूज्य गुरुदेव गणिवर्य श्री मणिप्रभ सागरजी म. सा. के अमृत प्रवचनों की "मणिमथन" के रुप में आपके करकमलों में अर्पित करते हुए हम अनहद आनद की उर्मियों से भर रहे हैं ।

विगत वर्षो से हमारी आकाक्षा थी कि वर्तमान युगानुरुप पूज्य श्री के क्रान्तिकारी उद्‌वोधन जन-2 तक पहुँचे और आज वर्षो से सजोयी वह कामना साकार वनी है ।

परम पूजनीया प्रवर्त्तिनी श्री सज्जन श्री जी. म सा की प्रेरणा से उनकी शिष्या परम पूजनीया परम तपस्विनी विदुषी आर्या रत्न श्री शशिप्रभा श्री जी. म सा. एव वाल विदुषी आर्या रत्न श्री सौम्यगुणा श्री जी म सा. ने अथक परिश्रम करके इस ग्रन्थ का संपादन किया है । हम उनके परिश्रम को शब्दों के दायरे में वाघने में असमर्थ है । अक्षम है । हम उनके परिश्रम का हार्दिक अभिनदन करते हैं । साथ ही कामना करते हैं कि भविष्य में भी वे कलम का अनवरत उपयोग करें जिससे साहित्य भंडार समृद्ध वने एव सोया समाज जागृत वने ।

प्रवचनों के प्रकाशन में अर्थव्यवस्था पूजनीया साध्वी रत्न श्री शशिप्रभा श्री जी म सा. सदुपदेश से मकराणा निवासी श्रीमती वुगल वाईसा ने की है । उन्होंने अपने स्वर्गीय पति श्री उम्मेदचंद जी मेहता की स्मृति में इस पुस्तक का प्रकाशन करवाकर दो प्रकार से लाभ उठाया । लक्ष्मी का पुण्यकार्य में वितरण और साथ ही जिज्ञासु पाठकों को स्वस्थ खुराक देना । हम उनकी इस उदारता का हार्दिक अभिनदन करते हैं ।

पूज्य गुरुदेव श्री के प्रवचनों का मूल्यांकन करने में हम असमर्थ हैं, यह उत्तरदायित्व हम अपने पाठकों पर डालते हैं । पाठक इनका स्वाध्याय कर अपनी मजिल को प्राप्त करे, यही इन प्रवचनों का सार्थक मूल्यांकन होगा ।

ये प्रवचन जन-2 के आचरण का विषय बने, यही हमारी मंगल कामना है ।

मंत्री
कान्ति प्रकाशन
बाडमेर

अक्षय तृतीया
सं 2047

सपादकीय

पुस्तक का सपादन अपने आप में एक जटिल एवं दुरुह प्रक्रिया है । उसमें भी प्रवचन की पुस्तक का सपादन तो बेहद जटिल है फिर भी गुरवर्या श्री के आदेश से इस जटिल प्रक्रिया से गुजरने को हम प्रस्तुत हो गयी ।

परमपूज्या, आगमज्योति आशु कवयित्री गुरवर्याश्री सज्जन श्री जी म. सा के अभिनदन समारोह पर ज्योतिर्विद, प्रवचन पटु महाप्रज्ञ गणिवर्य श्री मणिप्रभ सागरजी म. सा का जयपुर में पदार्पण हुआ और सघ एवं गुरवर्या श्री के सम्मिलित प्रयासों से उनका चातुर्मास भी जयपुर में निश्चित हो गया ।

प्रवचनों का क्रम प्रारंभ हुआ । आधुनिक शैली में आगमिक व्याख्या विवेचन निराला था । श्रोतावर्ग झूम उठता ।

पूज्य गणिवर्य श्री श्रोतावर्ग की मानसिक शक्ति को पहचानने मे दक्ष है। अद्भुत है उनका व्यक्तित्व अपूर्व है उनका कृतित्व, अनूठी है उनकी आधुनिक शैली मे मंजी सजायी आध्यात्मिकता से ओतप्रोत प्रवचन शैली । इस त्रिवेणी के अपूर्व संगम ने गुरवर्या श्री सह समस्त संघ के मानस को गहराईयो से छू लिया । परिणामस्वरूप एक भावना सभी के मानस में प्रबल हो उठी - गणिवर्य श्री के प्रवचनो को जन-जन तक पहुंचाया जाय ।

गुरुवर्या श्री ने अपने मानसिक भावों को आदेश के स्वरों म अभिव्यक्त किया कि पूज्य गणिवर्य श्री के प्रेरणास्पद प्रवचनों को संपादित करके उसे जन-2 तक पहुँचाने का पुनीत प्रयास करना है । चाह तो हमारी भी यही थी कि जीवन उत्थान में अत्यावश्यक इन प्रवचनों की लड़ियों को एक पुस्तक रूप कडी में जोड़कर दूर-सुदूर के स्वाध्याय प्रेमियो को लाभान्वित करने का प्रयास हो । गुरुवर्या श्री के आदेश से हमारी आकांक्षा को जैसे फैल गये । यद्यपि प्रवचन संपादन का हमे अनुभव नहीं था फिर भी गुरुवर्या श्री के आदेश का संबल और हमारी निष्ठा का पाथेय परिपूर्ण था । कोई भी कार्य आत्म विश्वास की दृढ़ता के आगे कठिन नहीं होता । हम उसी दिन से जुट गये ।

पूज्य गणिवर्य श्री के प्रवचनो मे भाषा की प्रांजलता का और भावो के गांभीर्य का अनोखा मिश्रण है । विवेचन की पुष्टि मे दिये गये छोटे-छोटे उदाहरण मन की गहराई को छू जाते है। कथानक के मुख्य किरदार जटाशंकर-घटाशंकर आदि का नाम आते ही पूरा प्रवचन हॉल ठहाकों से गूंज उठता । ‚जयपुर का जटाशंकर' ज्योंहि ये शब्द पूज्य गणिवर्यश्री के मुंह से निकलते,

श्रोताओं के कान चौकन्ने हो जाते । सभी के कान जटाशंकर के नाम पर उत्सुक रहते और नाम लेते ही सभी तुरत अपलक एकाग्र हो जाते । गली-गली में, व्यक्ति-व्यक्ति की जुबा पर यह नाम चढ़ गया था । अगर कभी अत्यावश्यक कार्यवश कोई नहीं आ पाता तो वह अन्य से पूछता कि आज प्रवचन में जटाशकर कितनी बार और किस रूप में आया ?

परमात्मा महावीर की वाणी सुनने की, उसे पढ़ने की और समझने की जिज्ञासा मुमुक्षु आत्मा को होती ही है और जो भी उस प्यास को तृप्ति प्रदान करता है, निश्चित ही वह अभिनंदनीय और वंदनीय है ।

गणिवर्यश्री ने परमात्मा महावीर के संदेशों का सतत परिश्रमपूर्वक अभ्यास किया है । उसकी गहराइयों में निरंतर डुबकियाँ लगाकर उन्हें क्रियान्वित करने का दृढ़ संकल्प किया है । अनुभूति की ज्वाला में जलकर उनकी वाणी कुंदन की तरह निखर चुकी है ।

कथनी और करनी की एकता से पू० गणिवर्य श्री के प्रवचन हृदय पर एक अमिट छाप छोड़ते हैं । पाठकवृद स्वय इस सत्य का साक्षात्कार, ज्यों-ज्यों पढ़ेगा, निरतर करता जायेगा ।

वैराग्य की रसधारा में डूबे इन महामगलकारी प्रवचनों के संपादन का सौभाग्य हमें प्राप्त हुआ। इसके लिये हम पूज्य गणिवर्य श्री के पूर्णत आभारी हैं । पूज्या गुरूवर्या श्री के हम पूर्ण कृतज्ञ हैं जिन्होंने विषय-वासना की तेज धारा में डूबती आज की मानव जाति को शीतल बहारों के रूप में परमात्मवाणी का अमोघ और शाश्वत सुखकारी उपाय की ओर ध्यान केन्द्रित करवाया ।

संपादन में हमारा अपना कुछ भी नहीं है, जो कुछ है पूज्य गणिवर्य श्री एवं गुरुवर्याश्री का है फिर भी लेखन की असावधानी वश गणिवर्य श्री की भाव-भाषा के विपरीत अकित हो गया हो तो वह त्रुटि हमारी अपनी है । और उस त्रुटि के लिए हम नतमस्तक क्षमायाचना करते हैं ।

श्रद्धेय गणिवर्य श्री के प्रवचन प्रकाशित हो रहे हैं । इस अवसर पर हमारा रोम-रोम उल्लसित हो रहा है परंतु इसकी मूल प्रेरिका गुरुवर्या श्री की अनुपस्थिति हमें व्यथित कर रही है फिर भी उनकी भावना सार्थक हो रही है यह सोचकर अपने आप को बहुत हल्का अनुभव कर रहे है ।

एक बार हम पुन परम तारक तीर्थंकर परमात्मा की वाणी को श्रद्धासह नमन कर पूज्य गणिवर्य श्री एवं गुरुवर्याश्री के प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करती है ।

सुविज्ञ पाठकों की तटस्थ समालोचना सादर आमन्त्रित है ।

जयपुर
10 जून, 1990

साध्वी शशिप्रभा
साध्वी सौम्यगुणा

प्रेरक जीवन

कतिपय पुरुषों की जीवनिया प्रेरक एव उपदेशक होती हैं जिनका स्मरण इसलिए किया जाता है कि हम भी उनसे कुछ ग्रहण कर सकें । श्रीमान् उम्मेद सिह जी साहब मकराना का जीवन भी ऐसा ही था जो अल्पायु में ही चले गये किन्तु अपनी स्मृति के सुमन सौरभ से हमें सुगन्धित कर गये ।

जैसलमेर जैन समाज के प्रमुख स्तम्भ श्रीमान फतेहसिह जी साहब मेहता के यहां सन 1937 में श्री उम्मेद सिह जी मेहता का जन्म हुआ । श्रीमान फतेहसिह जी एक धर्मपरायण सरल प्रकृति के परोपकारी सज्जन थे इसलिये ये सभी गुण श्री उम्मेदसिह जी को पैतृक रूप में प्राप्त हुए थे। श्रीमान् उम्मेदसिह जी ने जैसलमेर एव टोंक में प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त की । बाल्यकाल से ही वे चपल चतुर एव बुद्धिमान प्रकृति के थे । अध्ययन में सब से अग्रणी रहते थे और अपने शिक्षकों के सर्वाधिक प्रिय छात्र थे । अपने मित्रों में भी वे अत्यन्त लोकप्रिय थे । जयपुर के महाराजा कॉलेज से उन्होंने विज्ञान विषय में स्नातक परीक्षा उत्तीर्ण की । सन् 1957 में उनका विवाह टोंक निवासी श्रीमान् राय साहब बाबू चादमल जी साहब की सुपुत्री श्रीमति कुशलबाई से हुआ। उस समय उनका परिवार आर्थिक कठिनाईयों में था इसलिए उन्होंने अपने पिता के पास मकराना रहकर मेहता मारबल एम्पोरियम के नाम से अपना मकराना पत्थर का उद्योग स्थापित किया ।

लगन, परिश्रम एवं ईमानदारी से उनका यह उद्योग कुछ ही दिनों में चल निकला और बाद में निरन्तर इसमें वृद्धि होती रही । मेहता मारबल एम्पोरियम के माध्यम से श्री उम्मेद सिह जी ने पर्याप्त धन एव सम्मान अर्जित किया और वे राजस्थान में मकराना-पत्थर के एक प्रसिद्ध एवं विश्वस्त व्यापारी बन गये । उन्होंने प्रचुरमात्रा में अर्थ उपार्जित किया और सारे परिवार को सम्पन्न बना दिया । उनका परिवार आज मकराने का एक सम्पन्न परिवार है । सम्पत्ति उपार्जित करना और मुक्त हस्त से उसे खर्च करना श्री उम्मेद सिह जी की विशेषता थी । उन्होंने अनेक सामाजिक एवं धार्मिक कार्यों में आर्थिक योगदान देकर अपने धन का सदुपयोग किया है ।

सन् 1987 में श्रीमान् उम्मेद सिह जी बीमार हुए तो वे उपचार के लिये अजमेर आये और दादावाडी में ठहरे । दादावाडी में उपचार के लिये 7-8 माह रहे और इस अवधि में दादावाडी के सभी प्रबन्धकर्त्ताओं में वे अत्यधिक लोकप्रिय हो गये । दादावाडी को भी वे आर्थिक सहयोग प्रदान करते रहे । असाध्य बीमारी का वे साहस से मुकाबला करते रहे और सदैव प्रसन्नचित्त रहते हुए यही कहते रहे कि मुझे कोई बीमारी नहीं है । रोग से सघर्ष करने की उनकी शक्ति अद्वितीय थी । सन 1989 में 52 वर्ष की आयु में वे स्वर्ग सिधार गये किन्तु अपने परोपकारी जीवन का एक अनुपम उदाहरण छोड गये ।

श्रीमान् उम्मेदसिंह जी मेहता की स्मृति में पूज्य गणिवर्य मणिप्रभसागर जी महाराज साहब के प्रवचनों को पुस्तक रूप में प्रकाशित कराया जा रहा है गणिवर्य श्री के ये प्रवचन प्रेरक एवं सारगर्भित हैं जो धार्मिक साहित्य की अनुपम निधि है । इनको प्रकाशित कराने की प्रेरणा पूज्य शशिप्रभा श्री जी महाराज साहब के सदुपदेश से श्रीमति कुशलबाई मेहता को प्राप्त हुई हैं ।

आध्यात्मिक प्रवचनों का यह संकलन उच्च धार्मिक जीवन के लिये सतत् प्रेरणा का स्रोत बना रहेगा, ऐसा हमारा विश्वास है ।

— सुजानमल लोढ़ा
एडवोकेट, टोंक
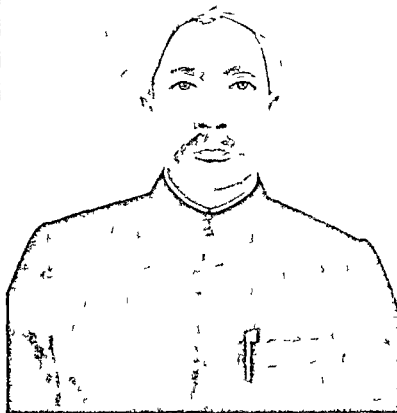
स्व. श्री फतेहसिंहजी हाडा, पी. सी. एस.

स्व. उम्मेद सिंह जी सा. मेहता मकराणा

• पू० गुरुदेव आचार्य श्री जिन कान्तिसागर सूरि म० सा •

सागर जी म० सा०
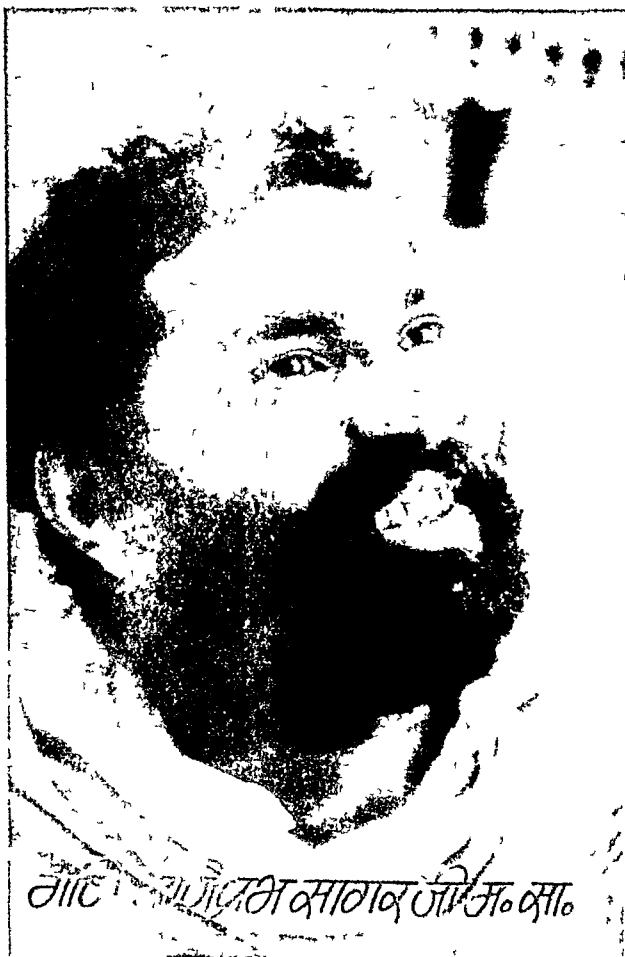
आगम ज्योति पू प्र सज्जनश्री जी म.सा

आर्या शशि प्रभा श्री

उपोद्घात

प्रवचन परिवर्तन का सबल साधन है। वीतराग वाणी के प्रति समर्पित आचारनिष्ठ ज्ञानीपुरुष के स्वय स्फूर्त चिन्तन से नि सृत यह वह अमृत है जो श्रोता को अजर-अमर बना देता है। यह वह सजीवनी है जो मोह-मूर्छित आत्मा को सजग बनाती है। यह वह सूर्योदय है जो सुषुप्त चेतना के जागरण का शखनाद करता है। यह वह कला है जो दिग्-भ्रमित मानव को सही दिशाबोध कर श्रद्धा और सकल्प पूर्वक उस ओर कदम बढाने का अप्रतिम साहस प्रदान करती है। किसी चिन्तक ने ठीक ही कहा है- वक्ता शत सहस्रेषु अर्थात् वक्ता लाखो मे एक मिलता है।

सामान्यत सभी कलाएँ प्रयास साध्य होती हैं। प्रवचन देना भी एक कला है अत वह भी प्रयास साध्य है किन्तु जीवन मे सर्वांगीण विकास उन्हीं कलाओं का होता है जिनके बीज सहज-सस्कार के रूप मे होते हैं। प्रस्तुत सग्रह एक ऐसे ही प्रवचनकार की अनमोल प्रसादी है जिनमे वक्तृत्व के बीज सहज सस्कार के रूप मे उपलब्ध होते हैं। ये प्रवचनकार हैं-प. पू प्रज्ञापुरुष आचार्यदेव श्री जिनकातिसागर सूरीश्वरजी म सा के प्रधान शिष्य प. पू महाप्रज्ञ प्रसिद्धवक्ता गणिवर्य श्री मणिप्रभसागर जी म. सा। जो कवि साधक व मनस्वी चिन्तक हैं।

जीवन समस्याओ का घर है-ज्यो-ज्यो भौतिक साधन और सुविधाएँ बढती जाती हैं त्यों-त्यो मानव का भटकाव और तनाव बढता जाता है। सुख शान्ति को पाने का वह जितना अधिक प्रयास करता है उतनी ही अधिक वे उससे दूर होती जाती है। इसका मूल कारण है-असंयम....वैषयिक सुखो की आसक्ति। जब तक मन विषयो मे भटकता रहेगा इन्द्रियां विषयो की ओर दौडती रहेगी आत्मसयम की बात असभव है। बिना आत्मसयम के उस सुख और शान्ति की उपलब्धि कल्पनामात्र है जिसके अभाव मे मानव सब कुछ होते हुए भी निरन्तर रिक्तता का अनुभव करता है। असन्तोष और अतृप्ति की आग मे जलता रहता है।

इन सबका समाधान है-शान्ति और सुख की सच्ची राह चीधने वाले महापुरुष का मार्गदर्शन। सुषुप्त चेतना को जगाने वाली साधक की सत्प्रेरणा। जीवन के लक्ष्य का निर्धारण करने वाली ज्ञानी पुरुष की वाणी।

प्रस्तुत प्रवचन वास्तव मे मार्गदर्शन, प्रज्ञा जागरण और लक्ष्य का निर्धारण के सबल व सफल प्रयोजक हैं जो हमारे अस्तित्व को पृथक् ही नहीं करते अपितु उसे सर्वोपरि महत्व देने को प्रेरित करते हैं।

साधना के द्वारा स्वय को उपलब्ध करना यही जीवन का सर्वश्रेष्ठ उपलभ्य और प्राप्य है।

विषय-कषायजन्य मल से मलिन आत्मा को ज्ञान और वैराग्य की रस धारा में डुबाकर अमल-विमल बनाना यही जीवन का सच्चा कर्त्तव्य है क्योंकि चराचर विश्व में 'आत्मा ही शाश्वत, सत्य, चेतन और अपना है । उसके सिवा सम्पूर्ण जगत् अनित्य, असत्य, जड़ और पराया है । आत्म-प्रेम· संयम का बीज है, वह पाप के प्रति आत्मा को सदा सजग रखता है, परंतु पौद्गलिक राग हमें भूल भूलैया में डालकर सदा बेभान कर देता है । यह भेदज्ञान ही बद्धआत्मा की मुक्ति का अमोघ उपाय है । यह सत्य प्रस्तुत प्रवचनों का मुख्य प्रतिपाद्य है ।

निस्सन्देह ये प्रवचन संपूर्ण रूप से शाश्वत मूल्यों के प्रतिष्ठाता है । तथा शाश्वत मूल्यों के प्रतिष्ठापन की सहज निष्पत्ति होने के कारण सामयिक समस्याओं का समाधान देने की भी उनके प्रवचनों में सहज शक्ति है ।

उनके प्रवचनों में विचक्षण बुद्धि, विलक्षण प्रतिभा के साथ-साथ मार्मिक दृष्टि के स्पष्ट दर्शन होते हैं । यही कारण है कि उन्होंने अपने प्रवचनों में दिशा और दृष्टिकोण के बदलाव पर अत्यधिक जोर दिया है । वस्तुत दृष्टिकोण का बदलना ही सम्यग्दर्शन है । जिसका कि जैन धर्म में सर्वाधिक महत्त्व है । यही ज्ञान और आचरण की सत्यता का आधार है । इसके सम्यक् बने बिना ज्ञान अज्ञान है और व्रत अव्रत कहलाता है अत आत्मिक विकास की भूमिका पर प्राथमिक अपेक्षा है-सम्यक् व यथार्थ दृष्टिकोण की ।

प्रस्तुत प्रवचन-संग्रह का प्रथम प्रवचन 'सम्यग्दर्शन' है । उसमें तो आद्योपान्त यह भाव अभिव्यक्त हुआ ही है किन्तु शेष प्रवचनों में भी इस भाव की ध्वनि कम नहीं है । साथ ही सच्ची शान्ति एवं आनन्द की उपलब्धि की अनिवार्यता झलकती है।

वास्तव में गणिवर्य श्री आध्यात्मिक उत्थान, शाश्वत मूल्यों का प्रतिष्ठापन, मानव-मात्र के कल्याण व निर्माण के सच्चे उद्‌गाता हैं ।

निश्चय ही गणिवर्य श्री का प्रवचन-कौशल अनूठा है । नपे तुले शब्दों में अपने भावों को गहराई से अभिव्यक्त करने का अदभुत कौशल है आप में । आपके प्रवचन के भाव आध्यात्मिक, भाषा-मंजी-मंजायी, सजी-संवरी, सरल और प्रांजल है । शैली आधुनिक है । भाषा में भावों के अनुरूप सहज उतार-चढ़ाव है । शब्दों का प्रयोग सर्वथा उचित व उपयुक्त है । आपके प्रवचन में माधुर्य और ओज दोनों का अच्छा संमिश्रण है । कभी उनका वाक्प्रवाह कल-कल निनादिनी गंगाधारा की तरह बहता हुआ श्रोता को वैराग्य की रसधारा में डूबो देता है तो कभी उफनती धारा की तरह श्रोता के दिल को झकझोर देता है । इस स्थिति में श्रोता को अपने भीतर झांकने का सुनहरा मौका मिल जाता है । अपने मनोविकारों को देखने का और प्रवचन की पावन-धारा में उन्हें प्रक्षालित करने का एक अच्छा अवसर उपलब्ध हो जाता है । वास्तव में उनके प्रवचन में अन्तर्मन को छूने वाला जादू है ।

अपने कथ्य की पुष्टि के लिये दिये गये छोटे-छोटे उदाहरण प्रवचन के भावों को स्पष्ट, प्रभावी

व अत्यधिक हृदयस्पर्शी वना देते हैं । उनकी कहानियों का मुख्य किरदार है 'जटाशंकर' । श्रोता उसके आगमन का बडी बेसब्री से इन्तजार करते हैं । वह कभी अकेला और कभी घटाशंकर, पटाशंकर आदि साथियों के साथ उपस्थित होता है । श्रोता जटाशंकर के विचित्र रूपों करिश्मों एव बुद्धि के चमत्कारों को सुनने के लिये वडे उत्सुक रहते हैं । उसका नाम आते ही श्रोताओं के कान चौकन्ने हो जाते हैं । उसके उपस्थित होते ही एकबारगी समूचा वातावरण हसी से गूज उठता है । घर-घर गली गली मे हर सुनने वाले व्यक्ति की जुवा पर 'जटाशंकर' की चर्चा रहती है । यदि कोई व्यक्ति कार्यवश व्याख्यान मे नहीं आ पाता तो वह दूसरो से 'जटाशंकर' के हाल चाल जानने को बेचैन रहता है ।

आपका चिन्तन, स्पष्ट तर्कसगत व विवेकपूर्ण है । आप कल्पनाशील हैं किन्तु आपकी कल्पनाये यथार्थ के धरातल पर होने से ठोस हैं जीवनोपयोगी हैं । आपके प्रवचनों में मत पथ सप्रदाय का तनिक भी अवरोध नहीं है । वे अन्तकरण से सदा सत्य को समर्पित है ।

शब्द सयोजन, वाक्य-विन्यास सभी कुछ इतना उच्चकोटि का है कि कुल मिलाकर वातावरण वडा ही प्रभावोत्पादक वन जाता है । श्रोता के हृदय पर उसका इतना प्रभाव पडता है कि वह अन्दर ही अन्दर अपने को उस परिधि से उस प्रभाव से बधा-बधा महसूस करता है ।

यह सब तभी सभव है जबकि प्रवचन के शब्द और प्रवचनकार के जीवन मे सहज सामजस्य हो उसकी कथनी और करनी एक हो । तभी प्रवचन के शब्द श्रोता के मन पर अमिट छाप छोडते हैं । पूज्य गणिवर्य श्री के जीवन की यह महत्वपूर्ण विशेषता है कि उन्होंने भगवान् महावीर की वाणी को समझने का सतत परिश्रम किया है । आगम की गुत्थियों को चिन्तन, मनन व परिशीलन के द्वारा सुलझाने का प्रयास किया है । तथा आगम की गहराईयों मे डूबकियां लगाकर उसे क्रियान्वित करने का दृढ सकल्प लिया है । वास्तव मे उनके प्रवचन सुनकर ऐसा लगता है मानो प्रवचन में पू गणिवर्य श्री के शब्द ही नहीं बोलते उनका जीवन बोलता है । उनकी साधना बोलती है उनकी आत्मा बोलती है । वहां शब्द मात्र शब्द ही नहीं रह जाते शक्ति वन जाते हैं और शब्द की वही शक्ति श्रोता के हृदय को छू कर उसके जीवन-परिवर्तन का माध्यम वन जाती है । व्यक्ति के हृदय को छूने की अर्हता उद्भूत हो जाती है । ऐसे एक-एक क्षण को एक-एक पल को एक-एक शब्द को एक-एक दृश्य को साकार किया जा सके ? यह कितनी सुखद व यथार्थ कल्पना है । पर यह जितनी सुखद है उतनी सहज कहां ?

प्रस्तुत पुस्तक पू गणिवर्य श्री के वि सं. 2046 के जयपुर चातुर्मास के दरम्यान दिये गये प्रवचनों का सग्रह है ।

जन-जागरण का शखनाद करने वाले ये प्रवचन कुछ लोकों की धरोहर बनकर ही नहीं रह जाये किन्तु जन-जन को लाभान्वित करें यह भावना थी प. पू आगममर्मज्ञा प्रवर्तिनी जी श्री सज्जन श्री जी म सा की । उनकी इस जन कल्याणी भावना को प्रवचनों का सुन्दर संपादन कर साकार रूप दिया उन्हीं की परम विदुषी शिष्यारत्न, समादरणीया शशिप्रभा श्री जी म. व अध्ययनरत,

कोकिलकंठी साध्वी श्री सौम्यगुणा श्री जी ने । प्रवचनों के संपादन का कार्य अत्यधिक कठिन और श्रमसाध्य है । फिर भी विदुषी साध्वीद्वय ने इस दायित्व को वखूवी निभाया है । यह पृ. गणिवर्य श्री के प्रति उनकी श्रद्धा, निष्ठा व समर्पण का शुभ साक्ष्य है ।

उनके इस प्रयास के लिये धन्यवाद या कृतज्ञता ज्ञापन कर उनके अमूल्य श्रम का अवमूल्यन नहीं करना चाहती । वस इतना ही कहूंगी कि इस संकलन व संपादन के निमित्त, उन्हें ज्ञान के इस अथाह सागर में वार-वार डुवकियां लगाने का जो अवसर प्राप्त हुआ, वह उनके लिये महान् सौभाग्य है । उनका यह सौभाग्य जन-जन का सौभाग्य वने । जिन लोकों ने प्रवचन सुने हैं और जिन्होंने नहीं सुने हैं उन सभी को ये प्रवचन सही दिशा वोध करावें । जीवन जीने की सच्ची राह बतावें तथा निःश्रेयस् की यात्रा में पाथेय वने । इसी अभिलाषा के साथ...............

नाकोड़ा तीर्थ
13 जून, 1990

अनुभव-चरण-रज
हेमप्रभा

अनुक्रमणिका

1 सम्यक् दर्शन

अनन्त उपकारी जिनेश्वर परमात्मा ने केवलज्ञान की सम्पदा को प्राप्त करने के पश्चात् करूणा भाव से हर चेतना के लिये आत्म उपलब्धि का मार्ग प्रशस्त किया। किस प्रकार की साधना करें? किस प्रकार की आराधना करें? किस प्रकार का चिन्तन करें? जिससे व्यक्ति कर्मों को तोड सके आत्म दिशा की ओर दौड सके अपनी दिशा को जान सके पा सकें। इसी हेतु से परमात्मा ने आत्महित करने की प्रतिज्ञा का निर्देशन दिया। परमात्मा का उपदेश हमारा आचरण बन जाय परमात्मा की देशना हमारे आचरण में उतर आय तो निश्चित रूप से हमारे भीतर में भी सिद्धत्व की ज्योति केवलज्ञान की ज्योति आत्मज्ञान का आलोक फैल जाय। हमारे भीतर की सारी कालिमा छिन्न-भिन्न हो जाय प्रकाश बिखर जाय।

किस प्रकार की हमारी आराधना रहे किस प्रकार की साधना हो साधना का मूल लक्ष्य क्या हो इस पर हमें चिंतन करना है।

साधना का एक ही लक्ष्य होना चाहिए- जो हमारा अपना है उसे उपलब्ध करना। उसके साथ में एकरूपता हो जाय समवाय सम्बन्ध जुड़ जाय इस तरह का सम्बन्ध स्थापित हो जाय कि फिर हमारे भीतर में अंधकार का एक कण भी न रह जाय हमारे भीतर में अंधकार की कोई दुर्गन्ध उपस्थित न हो। यदि इस लक्ष्य की ओर यात्रा चलती रहे तो हम शीघ्र ही सिद्धत्व को उपलब्ध कर लें किन्तु खेद इसी बात का है जो अपना है उसी के साथ अपनत्व का सम्बन्ध नहीं है जो पराया है उसी के साथ अपनत्व की भावना है। जब तक पराये के साथ अपनत्व का सम्बन्ध विच्छिन्न नहीं हो जाता छूट नहीं जाता टूट नहीं जाता तब तक अपने साथ अपनत्व नहीं जुड़ सकता। अभी तक हमने पराई वस्तु को अपना माना इसी कारण हम अपनी सत्ता से स्वयं की निजता से स्वयं की निधि से कोसों दूर हैं। अपनत्व को अपने साथ कैसे जोड़ें? जो अपना है -अपने भीतर छिपा है—— हम परमात्मा का जीवन चरित्र श्रवण करते हैं-कहते हैं परमात्मा ने केवलज्ञान को प्राप्त किया।

केवल ज्ञान कहीं दुकान पर न था किसी गली में न था किसी घर में किसी समुद्र में न था। परमात्मा ने जो केवल ज्ञान प्राप्त किया- उसका अर्थ यही है कि -केवल ज्ञान पहले से ही आत्मा में छिपा पड़ा था केवल ज्ञान पर कर्मों का आवरण छाया हुआ था उस आवरण को दूर किया और केवलज्ञान का दीया जल गया।

केवलज्ञान का दीया तो पहले से ही भीतर में उपलब्ध था। कोई व्यक्ति जैसे कुआँ खोदता है। कुआँ खोदने का अर्थ इतना ही है कि भीतर से पानी निकालना। भीतर में पानी पहले से ही उपलब्ध है। पानी के ऊपर इतने पत्थर आए हुए हैं, कूड़ा करकट आया हुआ है, इसी कारण पानी भीतर होने पर भी ऊपर नहीं आ रहा, दिखाई नहीं दे रहा। यदि ऊपर के सारे पत्थर दूर हो जाय, सारी गंदगी दूर हो जाय तो पानी हमारे सामने प्रत्यक्ष हो जाय। उसी पल पानी दिखाई देने लग जाय। इसी प्रकार हमारे कर्मों के आवरण दूर हो जाय तो केवलज्ञान प्रकट हो जाय। केवलज्ञान हमारे भीतर ही छिपा पड़ा है। इन कर्मों को यदि दूर किया जाय तो निश्चित रूप से हम भीतर की सम्पदा को प्राप्त कर सकते है।

आपको ज्ञात होगा- न्याय मे 2 तरह के सम्बन्ध चलते है। 1· संयोग सम्बन्ध 2 समवाय सम्बन्ध। समवाय सम्बन्ध एक ऐसा सम्बंध है - एक बार यदि किसी के साथ जुड जाय तो कभी अलग नहीं होता। संयोगसम्बन्ध हमेशा वियोग के रूप में बदल जाता है। ध्यान रखे। पराये के साथ में हमारा जो सम्बन्ध है, वह सारा का सारा संयोग संबंध है। लेकिन केवलज्ञान के साथ, हमारी स्वयं की आत्मा के साथ, स्वयं की प्रभुता के साथ हमारा समवाय सम्बन्ध है। यदि एक बार हमारे भीतर में ज्योति जल जाय तो अंधकार कभी भी उपस्थित नहीं होता। एक बार सुगंध फैल जाय स्वयं की आत्मा की, केवलज्ञान की तो फिर बाह्य सुगंध की उपस्थिति को कोई अवकाश न रहे। देवचन्द्र जी महाराज ने कहा-

अव्याबाध सुख निर्मल ते तो, करण ज्ञाने न जणाय जी।
तेहज एहनो जाणंग भोक्ता, जे तुम समगुण राय जी।।

अर्थात् परमात्मा की ज्योति का जो स्वरूप है, ज्ञान का जो प्रकाश है, उसका वही व्यक्ति पान कर सकता है, वही व्यक्ति उसका रसास्वादन कर सकता है जिसने परमात्मा जैसे गुणों का उपार्जन कर लिया।

जिस व्यक्ति ने अपने आचरण के द्वारा, अपनी क्रियाओं के द्वारा, उन्हीं गुणों को उपलब्ध कर लिया जो परमात्मा में मौजूद हैं। निश्चित रूप से वही व्यक्ति उस अमृत का रसास्वादन कर सकता है, अमृत का झरना अपने भीतर में बहा सकता है वहीं व्यक्ति उस अमृत घट का रसास्वादन करके अपने भीतर में परम तृप्ति का अनुभव कर सकता है। आराधना और साधना के द्वारा हमें वही तो उपलब्ध करना है।

एक बार यदि हमारी उपस्थिति भीतर में हो जाय, तो स्वयं को प्राप्त कर सकते हैं, भीतर की जिज्ञासा को हम शान्त कर सकते हैं।

प्रयत्न तो हमें स्वयं को ही करना पड़ेगा।

परमात्मा की देशना सर्चलाईट का कार्य कर सकती है, परमात्मा की देशना माईल स्टोन का काम कर सकती है, मगर कदमों को तो स्वयं को ही चलाना होगा और कोई उपाय नहीं। जिन शासन में स्वयं की आत्मा को उपलब्ध करने के लिए, स्वयं को तपाने के सिवाय और कोई उपाय नहीं, दूसरा कोई रास्ता नहीं।

एक बार पादरी महोदय ने घोषणा की अपने ही अनुयायियों में घोषणा की। जो व्यक्ति हजार रूपये लेकर मेरे पास आयेगा उसे मैं स्वर्ग का सेर्टीफिकेट दे दूंगा। मैं ऐसा सेर्टीफिकेट दूंगा मेरे हस्ताक्षरों से युक्त जो व्यक्ति मरता हुआ अपनी छाती पर रखेगा अपने सीने पर रखेगा टिकट उसके साथ में जायेगा। जो भी व्यक्ति जैसे कर्म किये हुए हो अच्छे हो या बुरे, मगर जो भी मेरे हस्ताक्षर से अंकित सेर्टीफिकेट को लेगा वह नरक में नहीं जायेगा स्वर्ग ही जायेगा।

लोग अज्ञानी थे। अज्ञान के कारण उन्होंने सोचा- यह तो अच्छा उपाय है स्वर्ग उपलब्ध करने का। अरे एक टिकट ही तो लेना है और हजार रूपये ही तो लगेंगे फिर कितना ही पाप क्यों न करें। नरक में जाना नहीं पड़ेगा। अत एक टिकिट तो खरीद ही लो लोगों की लाईन लग गई। पादरी ने सोचा-पैसा कमाने का यह शानदार धन्धा है टिकट अपने फोटो सहित छपवायें। प्लास्टिक की थैली में पैक कराये।

लोगों को अपने हाथ से पकड़ाता गया और कहता गया यह टिकट खो मत देना मृत्यु के समय अपनी छाती पर रखना तुम्हारे साथ चलेगा।

मि- जटा शंकर ने विचार किया- यह तो बड़ा शानदार तरीका है स्वर्ग उपलब्ध करने का। जटा शंकर डाकू था। मन में डर था कि मैंने इतने सारे पाप किये हैं मुझे तो नरक निश्चित मिलेगा। बड़ा शानदार उपाय है टिकट ले लो स्वर्ग में चले जायेंगे फिर कितना भी पाप क्यों न कर लूं। टिकट खरीद लिया। टिकट खरीदने के पश्चात् उसके मन में दूसरी योजना आई। योजना यह आई कि उसने देख लिया पादरी के पास- बहुत सारे पैसे इकट्ठे हो गये। जटा शंकर भाँप रहा था- कब पादरी कार में बैठे और मैं इसके सारे रूपये लूट लूं। पादरी कार में बैठ गया। जंगल के रास्ते में जटा शंकर ने पकड़ लिया। खूब धन था पादरी के पास में। 10 20 लाख रूपये टिकटों की बिक्री से कमा लिये थे।

जटा शंकर ने कार को रोका पादरी को नीचे उतरवाया। पिस्तोल निकालते हुए कहा- मुझे सारे के सारे पैसे दे दो अन्यथा मैं अभी आपको पिस्तोल की गोली से उड़ा दूंगा। पादरी ने विचार किया- यह तो अपना ही अनुयायी मालूम पड़ता है फिर मुझे क्यों लूट रहा है। पादरी ने कहा- जानते नहीं मैं धर्म गुरू हूँ और तुम मुझे लूट रहे हो। मुझे मत लूटो अन्यथा तुम्हें नरक में जाना पड़ेगा। जटा शंकर ने कहा- मुझे नरक जाने की कोई चिन्ता नहीं क्योंकि मैंने पहले से ही आपके पास से स्वर्ग का टिकट खरीद लिया है। अब तो मैं कितना भी पाप करूँ स्वर्ग ही मिलेगा। जटा शंकर ने कहा- सारा सामान मेरे हवाले कर दो- अन्यथा अभी गोली से उड़ा दूंगा। मैं तो नरक जाऊंगा या नहीं मगर आपको तो अभी भेज दूंगा। लेकिन जिन शासन में इस तरह की कोई बात नहीं चलती। कोई सेर्टीफिकेट हो नहीं सकता सेर्टिफिकेट स्वयं की आत्मा का ही हो सकता है। वह सेर्टिफिकेट हमें कोई दे नहीं सकता। स्वयं के सेर्टिफिकेट का निर्माण स्वयं को ही करना होगा। स्वयं के प्रमाण पत्र का निर्माण स्वयं को ही करना होगा।

अपने आचरण के द्वारा, अपने संकल्पबल के माध्यम से अपनी ज्योति का निर्माण करना है। अपने भीतर में डूबकर के, अपने भीतर में उतर कर चिन्तन करना है कि हमारा व्यवहार किस तरह का है। हमारी प्रक्रियाएँ किस तरह की है? अभी तक क्या हमने आत्म तत्व की ओर कदम बढ़ाया, स्वयं को जानने की जिज्ञासा जागृत हुई-हम चिन्तन करें?

हम सुबह से शाम तक पुरूषार्थ करते हैं, किन्तु वह पुरूषार्थ किस दिशा की ओर हो रहा है, किस हेतु से हो रहा है। स्वयं की आत्मा का हो रहा, स्वयं के शाश्वत् तत्व की ओर हो रहा या अशाश्वत् के लिए ही हमारा सारा पुरूषार्थ हो रहा है।

जो हमारा अपना नहीं, उसी के लिए सारा पुरूषार्थ हो रहा है, जो हमारा है उसे ही हम विस्मृत कर बैठे हैं, अपने भीतर की बीमारियों को पकड़ने के लिए स्वयं की दृष्टि जाग जाय, उसे नष्ट करने के लिए भीतर में आकांक्षा का निर्माण हो जाय, जिज्ञासा की उपस्थिति हो जाय। तो हमारे कदम उसी दिशा में स्वत· बढ़ जाय। परमात्मा की देशना, साधु-सन्तों के प्रवचन केवल हमारे भीतर जिज्ञासा पैदा करते हैं। आकांक्षा पैदा करते हैं, आत्मा की ललक पैदा करते हैं। यदि यह ललक हमारे भीतर में पैदा हो जाय तो निश्चित रूप से हमारे कदम उस दिशा की ओर बढ़ चले। कोई पता न चले कब हमारे जीवन में परिवर्तन आ जाय।

सनत् कुमार सौन्दर्यवान् था। इन्द्र सभा में जब उसके रूप की प्रशंसा हुई कि उसके समान रूपवान् कोई नहीं है। देवों ने विचार किया- देवों का स्वरूप कहाँ और मृत्युलोक के मनुष्यों का स्वरूप कहाँ? उनके मन में ईर्ष्या हो गई। अविश्वास हो गया। 2 देव परीक्षा करने के लिए ब्राह्मणों का वेश धारण कर के आये। सनतकुमार नहा रहे थे। नहाकर तोलिये से पौछकर बाहर आये ही थे कि देवों ने देख लिया। देखते ही विचार किया- वास्तव में इनका रूप अद्‌भुत है।

मन में प्रसन्नता और प्रशंसा के भाव आ गये। देवों ने कहा- आपके जैसा सौन्दर्य हमने कहीं पर नहीं देखा। सनत्कुमार अपने सौन्दर्य को देखा करता था। उसे अपने रूप और लावण्य पर बडा अभिमान था, जब देवों ने प्रशंसा की तब मन में और ज्यादा प्रसन्न हुआ। उसने ब्राह्मणों से कहा- अभी मेरा आपने क्या सौन्दर्य देखा है, अभी तो कुछ भी नहीं है। अभी तो शरीर को देख रहे हो। एक घंटे बाद देखना जब मैं हीरे जवाहरात जडे आभूषण धारण कर सभा में सिंहासन पर विराजमान होऊंगा।

देवकुमार सनत्कुमार का सौन्दर्य देखने के लिए राजसभा में उपस्थित हुए। सनत्कुमार ने विचार किया- अब मेरे रूप की कितनी प्रशंसा होगी। उन्होंने मात्र शरीर को देखकर इतनी प्रशंसा की थी, अब तो मुझे देखकर ये न जाने प्रशंसा के कितने पुल बांधेंगे। घमंड में चूर उसका सिर ऊपर हो गया। मद मत्त होकर झूमने लगा। ब्राह्मणों ने ज्योहीं उसे देखा- नाक भौं सिकोड लिया। तुरंत कहा- अरे। वो स्वरूप

कहा- जो पहले देखा था वह सौन्दर्य कहाँ- जो घंटे भर पहले देखा था। अभी तो शरीर में कीड़े ही कीड़े भरे हुए हैं। सनत्कुमार ने सोचा यह क्या कह रहे हो? मेरा शरीर तो इतना सौन्दर्यवान् है और ये लोग कह रहे कि कीड़े ही कीड़े दिखाई दे रहे हैं। बात क्या? समझ में नहीं आ रही। देवों ने कहा- यदि हमारी बात पर विश्वास न हो तो एक पात्र मंगवाओ और उसमें थूको। थूक में भी न मालूम कितने कीड़े कुलबुलाते हुए दिखेंगे। पात्र मंगवाकर थूका तो उसमें असंख्य कीड़े छटपटाते हुए दिखाई दिये। उसी क्षण सनत्कुमार का चिन्तन बदल गया।

अरे! बाहर से इतना सुन्दर दिखने वाला शरीर भीतर में इतने कीड़ों का विश्राम घर है और मैं कितनी इसकी प्रशंसा कर रहा हूँ। इसे देखकर फूल रहा हूँ। जबकि मेरा शरीर तो न जाने कितने कीड़ों से भरा पड़ा है। चिन्तन बदल गया। संस्कार तो थे ही। परमात्मा की शरण में पहुँच गया। शरीर को देख लिया कि शरीर रोगों का घर है। फिर इसके लिए क्या प्रयत्न करना इसके लिए क्या पुरुषार्थ करना। फिर क्यों न भीतर की सम्पदा को उपलब्ध करने के लिए सारा प्रयत्न किया जाय।

हम जरा चिन्तन करें, हमारा चिन्तन किस तरह का होता है जरा परिस्थिति देखें। ज्यों ही हम देखते हैं कि हमारे शरीर में थोड़ी सी बीमारी आ गई- तुरंत डॉक्टर के पास पहुँचते हैं।

अपने भीतर के डॉक्टर की ओर नहीं जाते। आत्मा के जो डॉक्टर है- परमात्मा का मन्दिर, साधु-सन्त उनकी दिशा में हम नहीं दौड़ते। चिन्तन नहीं करते कि जब मेरा शरीर रोगों से घिर चुका है तो क्यों न मैं आत्मा की बीमारियों को ठीक कर लूं। शरीर में बीमारियाँ होने पर शरीर के डॉक्टरों के पास जाते हैं। सनत्कुमार ने ऐसा विचार नहीं किया- उसने सोचा जब मेरा शरीर रोगों से आक्रान्त हो गया तो अब आत्मा की बीमारियों को शान्त कर लूं। मुझे उस दिशा की ओर चलना है जहाँ भीतर के सभी रोग समाप्त हो जाय।

ध्यान रहे बीमारी आसक्ति छोड़ने का कारण है। हमारे भीतर में बीमारी आये तो यह चिन्तन होना चाहिए कि हमारा शरीर बीमार हो गया रोगों से घिर गया अब इसके प्रति क्या आसक्ति करना। रोग होने पर बीमारी आसक्ति छोड़ने का कारण बन जानी चाहिए। किन्तु बीमारी होने पर हमारी तो आसक्ति और ज्यादा बढ़ती है और ज्यादा तीव्र बन जाती है।

सनत्कुमार का विचार दीक्षित होते ही परिवर्तित हो गया था। इन्द्र सभा में इन्द्र ने कहा कि सनत्कुमार जैसी व्याधि किसी को नहीं फिर भी क्या समाधि है? यह सुनकर दो देव परीक्षा लेने के लिए आए। विचार किया- इनका शरीर के प्रति लगाव है या नहीं, देखें।

देवों ने आकर कहा- मुनि श्री आप इतनी व्याधि से ग्रस्त हैं क्यों नहीं इलाज करवा लेते? हमारे पास में ऐसी औषधि, ऐसी दवाई है जिससे आपका सारा रोग पल भर में समाप्त हो जायेगा। थोड़ी देर के लिए शरीर मुझे सौंप दीजिए। जिससे हम

व्याधि को दूर कर सके। सनत्कुमार ने बात सुनी-मुस्कराए और कहा- तुम इस शरीर की इतनी चिन्ता क्यो कर रहे हो? शरीर का धर्म है- रोग ग्रस्त होना। इस धर्म का पालन शरीर कर रहा है, मै अपने धर्म का पालन कर रहा हूँ। मुझे इससे कोई परेशानी नहीं।

देवों ने कहा- नहीं! हम आपका शरीर स्वस्थ करेंगे। आपका शरीर कितना सुन्दर था। देवो ने मुनि को बातो मे फंसाकर शरीर के प्रति मोह को उपस्थित करने का प्रवल पुरूषार्थ किया। सनत्कुमार ने जब ज्यादा सुना तो कहा- तुम क्या मेरी बीमारी की चिकित्सा करोगे। इस रोग की चिकित्सा, दवाई तो मेरे भीतर मे ही मौजूद हैं। यह कहकर थोडा थूक एक अंगुली पर डाला। तुरंत वह अंगुली कंचन जैसी हो गई। रोग नष्ट हो गया। सनत्कुमार ने कहा- मै चाहूँ तो पल भर में शरीर को रोग से मुक्त कर सकता हूँ किन्तु मुझे क्या करना? मुझे बाहर की बीमारियों का खातमा नहीं करना है, भीतर की बीमारियों को नष्ट करना है, भीतर के कीटाणुओ को बाहर निकाल फेकना है। उसी के लिए मैं सारा प्रयत्न कर रहा हूँ।

अभी तक हमने आत्मा की बीमारियों को नष्ट करने की कोई चिकित्सा प्रारम्भ नहीं की, कोई परिणाम पैदा नहीं हुआ, कोई जिज्ञासा उत्पन्न नहीं हुई। इस प्रकार की जिज्ञासा, आकांक्षा भीतर में उत्पन्न हो जाय तो तुरंत हमारा जीवन बदल जाय। जीवन दिशा परिवर्तित हो जाय, जीवन में एक नये तरह का प्रकाश, एक नये तरह का उन्मेष उपस्थित हो जाय।

आचार्य हरिभद्रसूरि धर्मबिन्दु ग्रन्थ के द्वारा उसी श्रेष्ठता तक पहुँचाना चाहते हैं। प्रारम्भ में कहते हैं- हम जरा चितन करे कि हमारी भूमिका क्या है? हम कहाँ पर खडे हैं? हम जहाँ पर खडे हैं उस भूमि का निरीक्षण, करें वह भूमि हमारे योग्य है या नहीं? ऐसे दलदल पर तो नहीं खडे हैं कि जरा सा धक्का लगे और उसमें फँस जाय। ऐसे किनारे पर तो नहीं खड़े हैं कि पास में ही समुद्र बह रहा है, एक धक्का लगे, एक हवा का झोंका आए और हम उसमें गिर जाय।

आचार्य भगवन् दो प्रकार की भूमिकाओं का वर्णन कर रहे हैं- गृहस्थ धर्म के 2 मार्ग बताये।

1· सामान्य गृहस्थ 2· विशेषगृहस्थ

हम जरा चिन्तन करें, अभी तक हम सामान्य गृहस्थ की भूमिका तक भी पहुँचे हैं या नहीं, हमने भीतर में इस प्रकार की प्रक्रियाओं का निर्माण किया या नहीं, इस प्रकार की भूमि का निर्माण किया या नहीं। सामान्य गृहस्थ उसे कहें, जिसने सम्यग्दर्शन को उपलब्ध कर लिया। परमात्मा के प्रति, परमात्मा के सिद्धान्तों के प्रति, स्वयं की चेतना के प्रति, आत्मा के प्रति श्रद्धा जागृत हो गई। हम चिन्तन करें कि भीतर में इस तरह के श्रद्धाभाव जगे या नहीं। निश्चित रूप से देखेंगे तो अभी तक ऐसे कोई परिणाम, अभी तक ऐसे कोई भाव हमारे भीतर में जागृत नहीं हुए। जरा सा झोंका आता है, भीतर की श्रद्धा खण्ड-खण्ड हो जाती है। जरा सा तूफान चलता है, और हम फिसल

जाते हैं। अभी तक सम्यग्दर्शन की नींव मजबूत नहीं- यदि सम्यग्दर्शन की नींव मजबूत हो जाय तो फिर कितने ही तूफान आऐ नहीं डिगता। एक कच्ची झौंपड़ी रेती के टीले के ऊपर खडी हुई हो जिसके भीतर में ठूठ डाले हुए नहीं हो ऊपर ही ऊपर रख दी हो एक तूफान भी वह सहन नहीं कर सकती। एक बरसात भी वह झौंपड़ी झेल नहीं पाएगी। तितर बितर हो जाएगी।

यदि हमने सम्यग्दर्शन की नींव मजबूत कर ली। उसके ऊपर एक शानदार महल तैयार कर लिया। फिर कितने ही तूफान आए, कितनी ही बरसात आए, कितने ही पाश्चात्य संस्कृति के झौंके आए कोई चिन्ता नहीं कोई डर नहीं। हमारा महल वैसा का वैसा खडा रहेगा बिल्कुल नहीं डिगेगा। हम चिन्तन करें, भूमिका का निर्माण किया या नहीं। अभी तक सामान्य गृहस्थ की भूमिका हमारे भीतर में उपस्थित नहीं हुई हम जहाँ खड़े हैं यहीं टिके नहीं रहना है यहीं खड़े नहीं रहना है आगे भी बढ़ना है। क्रमश इन सीढ़ियों को पार करते हुए अपने भीतर की ज्योति को प्रज्ज्वलित करना है। यही एक मात्र हमारा लक्ष्य है।

हमारे भीतर में सम्यग्दर्शन का प्रादुर्भाव हो जाय तो हमारी छोटी सी क्रिया भी महत्वपूर्ण बन जाती हैं। भगवन् पार्श्वनाथ के साधु थे मुनि सुदर्शन। एक बार शिष्यों के साथ विहार करते हुए जा रहे थे। रास्ते में घोर जंगल आया; उस घोर जंगल में कोई बड़ा तांत्रिक रहता था। जो बलि देकर मंत्रों की साधना किया करता था। 32 पुरूष लक्षण की बली देने का विधान आया सोचा- किसकी बलि दी जाय। कोई व्यक्ति वहाँ पर उपलब्ध नहीं था। एक व्यक्ति ने आकर खबर दी- उधर मुनियों का कोई मण्डल चल रहा है उसमें से एक मुनि निश्चित रूप से बली देने के योग्य है। कापालिक सभी मुनियों को पकड़ लाया। सुदर्शन मुनि ने विचार किया यहाँ पर कोई प्रतिकूल उपसर्ग आ गया है। ऐसे उपसर्ग यदि जीवन में आ जाय तो उस समय आराधना के उपायों को देखना चाहिए। उन्होंने उसी समय कायोत्सर्ग को धारण कर लिया। कायोत्सर्ग की अवस्था में खड़े हो गये। कापालिक ने अपने शिष्य को आदेश दिया कि इनकी बली दे दी जाय।

जरा चिंतन करें कि क्या परिस्थिति थी- नंगी तलवार पड़ी है गर्दन के ऊपर चलने ही वाली है वो जानते थे कि मत्यु होने ही वाली है। ऐसे समय में थोड़ा रोए, चिल्लाये चीखें या अनुनय विनय करें, इस तरह की कोई बात नहीं। अपने मन को चेतना के साथ जोड़ दिया। परमात्मा के साथ जोड़ दिया। बाहर की सारी परिस्थितियों से अलग हो गए। कोई चिन्ता नहीं थी। परेशानी नहीं थी।

मन जब तक इन्द्रियों से युक्त रहता है तभी तक परिस्थितियों का प्रभाव हमारे ऊपर पड़ता है। यह बात अपने दिमाग में नोट करके रख लीजिए। हम रोते भी है हँसते भी हैं उदास भी होते हैं इसका कारण यह है कि हमारा मन इन्द्रियों से जुडा है। फिर जैसा-जैसा वातावरण देखते हैं- वातावरण हर्ष का है तो हर्षित होते हैं रूदन का है तो रोते हैं हास्य जनक है तो भीतर में मुस्कराहट छा जाती है। परिस्थितियों का प्रभाव पल-प्रतिपल पड़ता है जब तक हमारा मन इन्द्रियों के साथ में जुड़ा है। मन का इन्द्रियों से विच्छेद हो जाय मन स्वयं की चेतना से जुड़ जाय फिर

परिस्थितियो का कोई प्रभाव नहीं पडता। फिर कैसी भी परिस्थितियाँ क्यो न हो, न मन मे रोना आता है न हँसी आती है, न प्रसन्न होते है।

मुनि सुदर्शन कायोत्सर्ग में खडे हो गये- स्थिति का चिन्तन करें, बाजार से जा रहे हो और ठोकर लग जाय, हमारे भीतर से हाय-हाय की चीख निकलने लग जाती है। उनकी दशा का चिन्तन करे, मन की भावदशा का चिन्तन करे। ऐसी स्थिति मे अपने मन को नियंत्रण करके तुरंत आत्म दिशा की ओर जोड देना, परम उत्कृष्ट साधु दशा का नमूना है। कायोत्सर्ग से ऐसे कवच का निर्माण हो गया, जिससे तलवार उठी मगर गर्दन तक नहीं पहुँच पाई और तलवार नीचे गिर पडी। तांत्रिक के साधु जो भी थे वे सभी बेहोशी मे गिर पडे। कायोत्सर्ग की स्थिति पूर्ण होने पर सुदर्शन ने देखा- चारो ओर वे बेहोशी की अवस्था मे गिरे पडे थे। मुनि सुदर्शन अपने शिष्यो को लेकर वहाँ से रवाना हो गये। आधा घंटे के बाद होश आने पर तांत्रिक आचार्य ने देखा-जिस व्यक्ति को मै बली के लिए लेकर आया था, वह व्यक्ति बंधन से मुक्त हो गया। मेरे पास आए हुए लोग बन्धनो से मुक्त हो गए, यह मेरे द्वारा सहन नहीं किया जा सकता। तब उसने शक्ति का निर्माण किया। जिस देवी की साधना उसने कर रखी थी, उस देवी को प्रगट किया, पीछे भेजा कि उन सभी को पकड लाओ। शक्ति उस दिशा की ओर बढने लगी। सुदर्शन आगे चल रहे थे शिष्य पीछे थे- ज्यों ही शक्ति शिष्यो के पास पहुँची, 2 मिनट में दो मुनि भस्म हो गए। सुदर्शन ने सोचा- निश्चित कोई उपसर्ग आया है, जानकर वहीं पर कायोत्सर्ग की अवस्था मे लीन हो गये। शक्ति चारो ओर घूमती रहीं, उन्हें नहीं जला सकी, स्वयं जल गई।

ध्यान रहे, ऐसी स्थिति में भी कायोत्सर्ग के प्रति, परमात्मा के प्रति हमारे भीतर मे श्रद्धा हो तो निश्चित रूप से हमारा मन स्वयं की आत्मा के साथ जुड जाता है, बाहरी परिस्थितियों से मुक्त हो जाते हैं हम। हमारे भीतर की जो श्रद्धा है, थोडी सी स्वार्थभूमि देखी, तुरंत हमारी श्रद्धा संसार की ओर मुड जाती है। हमारे कदम तुरंत संसार की ओर बढ जाते हैं।

आचार्य हरिभद्रसूरि मूल सम्यग्दर्शन की बात करते हैं। कहते हैं यदि सम्यग्दर्शन पुष्ट है तो फिर कितने ही तूफान चले, हमारा महल नहीं गिरेगा। हम अपनी स्थिति का चिंतन करें कि हमारी झौंपडी कच्ची रेती के टीले के ऊपर बनी हुई है या नींव की मजबूती से स्थायित्व का वातावरण बना है।

हमारे भीतर में यदि सम्यग्दर्शन है, श्रावकत्व के गुण हैं, तो हम श्रावक की भूमिका पर खडे हैं। खुद के आचरण को खुद ही देखना होगा। स्वयं की त्रुटियों को स्वयं को ही देखना होगा। देखकर अपने आपको प्रमाणपत्र देना होगा कि चेतन! तुम्हारी स्थिति क्या है? तुम किस भूमिका पर खड़े हो?

हम स्वयं चिन्तन करें- चिन्तन के द्वारा भीतर झांकने का प्रयत्न करें तो सारी स्थिति ज्ञात हो जायेगी, हमारे भीतर में प्रकाश ही प्रकाश फैल जायेगा। भीतर में छिपा हुआ कोश अपने आप प्रकट हो जायेगा।

आज इतना ही

2 धर्म की परिभाषा

अनन्त उपकारी अरिहंत परमात्मा ने स्वयं की चेतना को उपलब्ध करने के पश्चात् करूणा भाव से भरकर देशना दी। जगत् के समस्त जीवों को निजता में प्रवेश करने का स्वयं की प्रभुता को प्राप्त करने का मार्ग निर्दिष्ट किया। किस प्रकार व्यक्ति बाह्य वातावरण से मुक्त होकर आभ्यन्तर वातावरण में प्रवेश कर सके समस्त कर्म जंजीरों को तोड़कर के भीतर की शुद्धता को उपलब्ध कर सके इसी हेतु से परमात्मा ने देशना दी। परमात्मा की वाणी के भाव हमारे भीतर में उतर जाय तो निश्चित रूप से व्यक्ति स्वयं की शुद्धता को प्राप्त कर ले।

आचार्य हरिभद्रसूरिजी महाराज धर्म बिन्दु ग्रंथ में धर्म की व्याख्या कर रहे हैं आचार्य भगवन्त फरमा रहे हैं - 'वचनाद्यनुष्ठानं''

बड़ी विशिष्ट विवेचना कर रहे हैं। परमात्मा के जो वचन हैं वे परस्पर अविरूद्ध है। जिन्होंने सत्य का अवलोकन कर लिया जिन्होंने प्रवचन की गंगा बहाई है उन परमात्मा के वचन और उन वचनों के अनुरूप हमारा आचरण।

हम जरा चिन्तन करें, सुबह ही सुबह उठकर। परमात्मा के आदेशों का परिपालन हमारे जीवन में हमारे आचरण में किस प्रकार होता है कैसा होता है कितना होता है?

एक सत्य घटना मैंने पढ़ी थी। नेपोलियन बोनापार्ट जिस समय युद्ध कर रहा था। उस समय युद्ध भूमि से बाहर जाकर रात्रि के समय बैठा था। मन में विचार किया कि सेना की स्थिति को मैं देखूँ। उसने सैनिकों को पहले ही आदेश दे दिया था कि इस पड़ाव में किसी भी प्रकार का हल्के से हल्का प्रकाश भी नहीं होना चाहिए। नेपोलियन बोनाबार्ट रात्रि में 12 बजे सैनिकों का निरीक्षण करने क लिए चला। पूरे पड़ाव को उसने देखा। अचानक उसे लगा एक तम्बु में से प्रकाश छनछन कर बाहर आ रहा है। नेपोलियन तम्बू के भीतर चला गया। उसने देखा- भीतर छोटी सी मोमबत्ती जल रही थी उसके प्रकाश में एक सैनिक कुछ लिख रहा था। नेपोलियन ने सामने जाकर पूछा तुम क्या कर रहे हो? सैनिक ने ज्यों ही नेपोलियन को देखा- परेशान हो गया विचार में पड़ गया। सेनापति का आदेश था कि हल्का सा भी प्रकाश न करें। किन्तु मैंने प्रकाश में लिखने का साहस किया वह भयभीत हो गया। सैनिक ने कहा- मैं एक पत्र लिख रहा हूँ। नेपोलियन ने कहा- मेरा क्या आदेश था तुम्हें

ध्यान नहीं। सैनिक ने तर्क से उत्तर दिया- यह प्रकाश जरा भी बाहर नहीं जा रहा। मुझे घर छोडे बहुत वर्ष हो गये, पत्नी की याद आ गई इसलिए पत्र लिखने बैठ गया। नेपोलियन ने तर्कपूर्ण बात सुनी और कहा- तुम इस पत्र में एक बात और लिख देना कि मैं यह अन्तिम पत्र लिख रहा हूँ। दूसरे दिन नेपोलियन ने सैनिक सभा में कहा-सेना में और किसी बातों का महत्व नहीं होता, जो मैंने आदेश दे दिया, तदनुरूप उसका पालन होना ही है यदि उस आदेश में गड़बडी की गई तो उसके लिये मृत्युदंड के सिवा और कोई दण्ड नहीं। नेपोलियन ने सभी के समक्ष उस सैनिक को गोली से उड़ा दिया।

जब मैंने यह घटना पढ़ी तो मुझे लगा कि एक व्यक्ति ने सेनापति जैसे सामान्य व्यक्ति की आज्ञा का पालन नहीं किया तो मृत्युदण्ड भोगना पड़ा, गोली से उड़ जाना पड़ा।

हम जरा चिन्तन करें, परमात्मा के शासन में, प्रभु महावीर के शासन में हम रहते हैं, परमात्मा की आज्ञा का पालन कितना करते हैं। आज्ञा का पालन न करें, आदेशों के अनुरूप हमारा आचरण न बने तो न जाने हमें कितनी गोलियाँ खानी पड़ेगी। हमारी स्वयं की आत्मा कितनी दुःखी हो जाएगी, कर्मों से बोझिल बन जाएगी।

परमात्मा के जो वचन हैं, उन वचनों के अनुरूप हमारा आचरण बने। वचनों के अनुरूप आचरण हो तो ही वह व्यक्ति जैन कहला सकता है, अन्यथा कोई अर्थ नहीं।

एक बार मि॰ जटा शंकर के पेट में दर्द हुआ। बुजुर्गों ने सलाह दी कि डॉक्टर को दिखा आओ। पहली बार उसके पेट में दर्द हुआ था। डॉक्टर को दिखाने का बुजुर्गों का आदेश पालन किया गया। चल दिया हॉस्पिटल की ओर। हॉस्पिटल पहुँच गया।डॉक्टर की क्लिनिक में चला गया। रोगियों की लाईन थी, वहाँ जाकर बैठ गया। 5-10 मिनट बाद ज्यों ही डॉक्टर आया- डॉक्टर को देख लिया। तुरन्त वहाँ से रवाना होकर घर पहुँच गया।

बुजुर्गों ने पूछा- डॉक्टर को दिखा आये जटा शंकर! मि॰ जटा शंकर ने कहा- खूब अच्छी तरह से। मैंने तो उन्हें खूब अच्छी तरह से देख लिया किन्तु डॉक्टर ने मुझे देखा या नहीं, यह मालूम नहीं। लेकिन दर्द केवल डॉक्टर को दिखा लेने से शांत नहीं होता।

बुजुर्गों ने कहा- तुमने पेट कैसे दिखाया? जटा शंकर ने कहा- मैं क्या करता? मैंने तो डॉक्टर के सामने सिर झुकाया, नमस्कार किया लेकिन डॉक्टर ने तो मेरे सामने ही नहीं देखा। कुछ उत्तर नहीं दिया- मैं चला आया। उन्होंने कहा- मात्र डॉक्टर को देख लेने से, सिर झुकाकर पुनः यहाँ पर लौट आने से तुम्हारी बीमारी ठीक नहीं होगी! लौट जाओ। डॉक्टर को अच्छी तरह से दिखाओ, बौडी को अच्छी तरह से चैक करवाओ, कोई इंजेक्शन या गोली दे, तब तुम्हारा पेट दर्द ठीक होगा।

दूसरे दिन मि॰ जटा शंकर आदेशानुसार रोगियों की लाईन में जाकर खड़ा हो गया। उसका नम्बर आया तब, डॉक्टर ने अच्छी तरह से चैक किया और दर्द शांत करने के

लिए दवाई का पर्चा लिख दिया। दवाईयों के नाम वगैरह लिख दिये। लिख दिया कि गोलियाँ कितनी लेनी कितनी बार लेनी। साथ में कह दिया 3 दिन पश्चात् आओ उस समय इस पर्चे को सुरक्षित लेकर आना।

जटा शंकर ने सोचा- 3 दिन पश्चात् पर्चे को व्यवस्थित ले जाना है अतः इसे व्यवस्थित जगह पर रख दूँ। घर पहुँच गया। तिजोरी में उस पर्चे को रख दिया- ताकि गले नहीं सड़े नहीं फटे नहीं।

बुजुर्गों ने पूछा- डॉक्टर को दिखा दिया। जटा शंकर ने कहा- हाँ! एक पर्चा दिया है। डॉक्टर ने कहा-3 दिन बाद इसको अच्छी तरह से लेकर आना इस कारण कहीं खराब न हो जाय इस वजह से दवाई के पर्चे को मैंने तिजोरी में रख दिया है।

उन लोगों ने कहा- सिर्फ तिजोरी में पर्चा रख लेने से दर्द मिटने वाला नहीं- जब तक दुकान में जाकर दवाई न खरीदोगे खरीदने के पश्चात् उसे पेट तक नहीं पहुँचाओगे तब तक दर्द शांत नहीं होने वाला।

केवल डॉक्टर को सिर झुकाने से दिखाने से उनके द्वारा लिखे गये पर्चे को सुरक्षित रखने से बीमारी नष्ट नहीं होती। तदनुरूप उसका आचरण होगा तभी बीमारी दूर हो सकती है।

हम जरा चिन्तन करें, हम बीमार हैं बीमार के रूप में परमात्मा महावीर के पास जाते हैं। हमारे भीतर में क्रोध की बीमारी लगी मायाजाल की बीमारियाँ लगी दूसरों को ठगने की बीमारियाँ लगी कषायों और वासनाओं की बीमारियाँ लगी बीमारियों को लेकर परमात्मा के पास जाते हैं। हमारी सारी बीमारियाँ शान्त हो जाय, कर्मों की शृंखलाएँ टूट-टूट कर गिर जाय, इसी हेतु से हम परमात्मा के पास जाते हैं। परमात्मा की शरण में जाते हैं। किन्तु केवल हाथ जोड़ लेने से भीतर का दर्द शान्त नहीं होगा। वचनों के सुन लेने मात्र से बीमारी शान्त नहीं होगी। वचनों के अनुरूप हमारा आचरण हो, वचनों के अनुरूप हमारी क्रियाएँ हो तभी भीतरी दर्द का उपशमन होगा।

आचार्य हरिभद्रसूरिजी महाराज ने परमात्मा के वचनों पर इतना जोर नहीं दिया जितना जोर वचनों के अनुरूप आचरण पर दिया। आचार्य हरिभद्रसूरि धर्म की व्याख्या कर रहे हैं- हमारा जीवन वचनों के अनुसार बने वचनों के अनुसार ही हमारा आचरण हो क्रियाएँ बने तभी वह क्रिया धर्म कहलाती है।

"मैत्रीभाव रखो" आचार्य भगवन्त कहते हैं- धार्मिक व्यक्ति वही कहला सकता है जिसके भीतर में मैत्रीभाव हो जिसके भीतर में करुणा का झरना प्रवाहित हो, वही धार्मिक कहला सकता है।

भावना चार प्रकार की होती है - मैत्री प्रमोद करुणा और माध्यस्थ्य। ये धर्म के मूल बीज हैं। जिनमें ये भावनाएँ रमण करती हैं वह व्यक्ति निश्चित रूप से धर्म को पहचानता है। उस व्यक्ति का प्रवेश धर्म के क्षेत्र में हो जाता है।

एक शान्तिसागर नाम के मुनि थे। शहर के बाहर विराज रहे थे। एक व्यक्ति बाहर जा रहा था, वह उपवन के पास आ गया। उसने सोचा- जरा देखूं तो सही कौन है। देखने पर लगा कि इनको तो मैं खूब अच्छी तरह से जानता हूं। इनके भीतर क्रोध का दावानल भरा हुआ था। अब देखूं तो सही कि साधना का परिणाम कितना जीवन में उतरा है। वह व्यक्ति उनके पास चला गया, वन्दन किया। तत्पश्चात् कहा- जरा आपका नाम तो बता दे। मैं जयपुर जाऊंगा, लोग मुझे पूछेंगे तो मैं आपका नाम बता सकूं। आपका नाम सुनकर लोग भी सामने आयेंगे। शांति से मुनि ने जवाब दिया- मेरा नाम शांतिसागर है। आगन्तुक व्यक्ति ने सोचा- इनका नाम ही शान्ति सागर है या इन्होंने अपने भीतर में शान्ति को उपलब्ध भी किया है? इनके भीतर शांति का सागर है या नहीं? जरा परीक्षा तो कर लूं।

वह व्यक्ति वन्दन करके थोडा पीछे गया पुन मुनि के पास आया- कहा महाराज, मेरी भूलने की बडी आदत है, कृपा करके एक बार फिर आपका नाम बता दीजिए। साधु जी ने अपना नाम बताया। बोलने मे शान्ति तो थी किन्तु तेजी आ गई थी शब्दों मे। व्यक्ति फिर थोडी दूर गया, वापस लौटा पुन पूछा- महाराज आपका नाम क्या? मै भूल गया। क्या करूं? मेरी भूलने की बडी गन्दी आदत है। महाराज को गुस्सा आना प्रारम्भ हो गया- कहा- मैंने दो बार बता दिया, मेरा नाम शांतिसागर है शांतिसागर है। अच्छी तरह से याद कर लो। व्यक्ति ने सोचा - हाँ। अब थोडा परिवर्तन आना शुरू हो गया। वह पुन दरवाजे तक जाकर वापिस लौटा। महाराज से कहने लगा- मैं माफी माँगता हूं। मेरी भूलने की आदत बहुत ज्यादा है। याददास्त बिल्कुल नहीं। कृपा करके एक बार फिर आपका नाम बताइये? मुनि ने कहा- कितनी बार कह दिया मेरा नाम शांतिसागर है।

व्यक्ति ने देख लिया- अब चरम बिन्दु आने ही वाला है। क्रोध भीतर से बाहर की ओर उबलने ही वाला है। व्यक्ति बाहर चला गया- थोडी ही देर चला होगा, वापस नाम पूछने के लिए आ गया- मै क्या करूं? मेरी बुद्धि तीव्र नहीं, बस! एक बार और आपका नाम बता दो। इस बार तो साधु जी तमतमा उठे। क्रुद्ध होकर डंडा उठाकर जोर से बोले- मेरा नाम शांति सागर है। आगन्तुक व्यक्ति ने कहा- भले ही नामनिक्षेप से आपका नाम शांतिसागर है वास्तव में तो आप क्रोध सागर है। भीतर में क्रोध भरा पडा है।

ध्यान रहे! निमित्त उपस्थित न हो, प्रतिकूल परिस्थितियाँ उपस्थित न हो और भावों में परिवर्तन न आये तो कोई विशेष बात नहीं। श्रावकत्व की कसौटी तो वहाँ है। जहाँ चारों तरफ वातावरण अशांत हो, आस-पास काँटों से भरा हो! राग के कारण उपस्थित होने पर भी रागभाव पैदा न हो, द्वेष के हेतु विद्यमान होने पर भी द्वेष पैदा न हो, अहंकार उत्पन्न न हो, वहीं साधना की सफलता है। ऐसी स्थिति में ही व्यक्ति परमात्मा के क्षेत्र में प्रवेश कर सकता है।

यहाँ पर आचार्य भगवन्त प्रारम्भ में ही सूत्र देते हैं। धर्म बिन्दु ग्रंथ आपको साधना के मार्ग में ले जाता है, अन्तिम चरम लक्ष्य तक पहुँचा देता है। इसके लिए

कुछ उपाय देते हैं। उन उपायों को दृढ़ता के साथ अपने भीतर में उतारना होगा। सीढ़ियों को लांघना होगा तभी व्यक्ति अपने मव्यमहल में प्रवेश कर सकता है। परमात्मा ने आचारांग सूत्र में साधकों को उपदेश देते हुए बड़े सुन्दर शब्दों का प्रयोग किया।

परमात्मा ने कहा- तुम स्वयं को देखो कि तुम क्या कर रहे हो? दूसरों की ओर मत देखो कि वे क्या कर रहे हैं? यदि अन्य साधकों की ओर तुम्हारी नजर होगी तो निश्चित रूप से तुम स्वयं को भूल जाओगे स्वयं को विस्मृत कर जाओगे। स्वयं को भूलकर के खुद पर विस्मृति के बादलों को फैलाकर के अन्धकार में डूब जाओगे।

यदि स्वयं की बीमारी को शान्त करना है तो चिकित्सा स्वयं की करनी होगी अन्यों की चिकित्सा से कोई लाभ नहीं। अन्यों की बीमारियों को देखने से अन्यों की गंदगी को देखने से कोई लाभ नहीं। हमें स्वयं के भीतर को देखना है। गंदगी हमारे भीतर की तभी समाप्त होगी जब हम स्वयं में झांक कर देखेंगे।

आनन्दघन जी कह रहे हैं- परमात्मा कैसे है? *"करूणा कोमलता तीक्ष्णता उदासीनता सोहे रे"* परमात्मा के भीतर करूणा भी है कोमलता भी तीक्ष्णता भी किन्तु एक बड़ा महत्वपूर्ण विशेषण दिया- उदासीनता! हम उपेक्षा करें अन्यों की कि वे क्या कर रहे हैं उससे कुछ भी लेना-देना नहीं। तभी स्वयं के भीतर झांक सकते हैं स्वयं की यात्रा कर सकते हैं। मगर हम स्वयं की ओर नहीं देखते अन्यों की ओर देखते हैं इसी कारण भीतर की बीमारियाँ शांत नहीं होती। बीमारियों को शान्त करने के लिए स्वयं के भीतर प्रवेश करना होगा। हम चिंतन करें हमारी जो प्रक्रिया हैं वह किस तरह की हैं। माध्यस्थ भावना है अन्यों की ओर उपेक्षा भाव हैं तो निश्चित रूप से हमारा पुरूषार्थ प्रबल रूप से सम्यक है।

एक बार जटा शंकर गिर गया था। कुआँ कच्चा था। आस-पास मुँडेर बँधी हुई नहीं थी। पानी खींच रहा था। पैर फिसल गया और वह कुएँ में गिर गया। अन्दर बैठा बैठा जोर से चिल्लाने लगा। मुझे बाहर निकाल दो मुझे बाहर निकाल दो। बहर जो व्यक्ति खड़ा था उसने पूछा-तुम नीचे कैसे गिर गये। भीतरी व्यक्ति ने कहा- यह सवाल बाद में पूछना पहले मुझे बाहर निकाल दो। जल्दी से जल्दी निकालने का प्रयत्न करो अन्यथा मैं यहीं पर मर जाऊँगा। बाद में तुम कितने ही प्रश्न पूछ लेना। उस व्यक्ति ने जो अपने आपको बड़ा चिंतनशील धार्मिक मानता था- उसने कहा- तुम कुएँ में गिरे हो अपने कर्मों के कारण। मैं तुम्हें बाहर निकालूँगा तो फिर बाहर निकलकर अपने जीवन में तुम जाने कितने पाप करोगे, उन सबका दोष मुझे लगेगा नहीं भाई नहीं! तुम पड़े रहो अन्दर। अपने कर्मों के भोगने का अच्छा अवसर मिला है तुम्हें भोगो। वह व्यक्ति उपदेश देकर चल दिया। एक राजनेता उधर से निकला। जटाशंकर चिल्ला रहा था। नेताजी के कान खड़े हो गये। उसने कहा- मुझे बताओ कि नीचे कैसे गिरे। उसने भीतर से बताया- मैं क्या करता? मैं पानी लेने आया था- कुआँ कच्चा था पैर फिसल गया और मैं गिर गया। वह विपक्ष का नेता था। उसने कहा-सरकार कितनी बेकार, बिगड़ी हुई आलसी है कि सारे कुएँ अभी तक

कच्चे हैं। सारे लोगों की जान खतरे में पड गई है। लोग भीतर गिर जाते हैं, मर जाते हैं। उसने कहा- मैं अभी सरकार के पास जाता हूँ और यह बात बताता हूँ, मै पार्लियामेंट में सवाल उठाऊँगा, सरकार को नाको चने चबवा दूंगा!

जटा शकर ने कहा- भाई! पहले मुझे बाहर निकाल दो, फिर जहाँ जाना हो, वहाँ चले जाना। अन्यथा मैं भीतर ही मर जाऊँगा। राजनेता ने कहा- नहीं, नहीं। यदि तुम्हें बाहर निकाल दूँगा तो बताने के लिए प्रमाण क्या रहेगा। अभी मैं वहाँ जाऊँगा और राजनेताओ को कहूँगा। जोर का हंगामा करूँगा फिर यहाँ पर लाकर बताऊँगा कि देख लो, प्रमाण के रूप में यह व्यक्ति भीतर पडा है। जटा शंकर ने कहा- आप वापस आओगे, तब तक यदि मैं मर गया तो। विपक्षी नेता ने कहा- यदि तुम मर जाओगे तो मेरी बात को और ज्यादा बल मिलेगा। एक बार तो तुम मर ही जाओ। तुम तो एक मरोगे लेकिन तुम्हारे पीछे सारे कुएं ठीक हो जाएँगे। तुम शहीद कहलाओगे, मेरे शब्दों में ताकत आजायेगी। राजनेता तो वहाँ से बडबडाता हुआ आगे चल दिया- प्रसन्नचित्त होता हुआ जा रहा था, आज मुझे शानदार पोईंट मिल गया। पीछे से पादरी महोदय आ रहे थे। उन्होंने भीतर से बचाओ, बचाओ की आवाज सुनी। जरा देखूँ तो सही कौन हैं? पूछा- भीतर कौन हैं? जटा शंकर ने कहा- मैं हूँ। मुझे जल्दी से बाहर निकालो। पादरी महोदय ने ईसामसीह को याद किया-क्रॉस वगैरह बनाया। ईसा से कहा- आज मुझे शानदार अवसर दिया कि एक दुःखी व्यक्ति की सेवा मैं कर सका। तुम्हारा आभार प्रभु! पादरी ने रस्सी फेंकी। कहा- इसके सहारे तुम बाहर आ जाओ। जटा शंकर रस्सी पकड कर ज्यों ही बाहर आया त्यों ही पादरी ने कहा- तुम भीतर गिरे, मैंने बाहर निकाला। हमारे धर्म में लिखा हुआ है कि मानव सेवा करना सबसे बड़ा धर्म है। मैंने तुम्हें बाहर निकाला- मुझे बड़ा धर्म हुआ। ईसामसीह की कृपा से मेरा नाम धार्मिक व्यक्तियों की गिनती में लिख दिया जायेगा। किन्तु एक काम करो जिससे मैं तुम्हारी और सेवा कर सकूँ। यह अवसर बडे भाग्य से मिलता है। सुबह से ही मैं सेवा के लिए घूम रहा था- भाग्यवश तुम्हारी सेवा का अवसर उपलब्ध हो गया।

तुम एक काम करो। वापस भीतर गिर जाओ ताकि मैं दुबारा निकाल कर सेवा का दोहरा लाभ प्राप्त कर सकूँ, डबल धर्म का सम्पादन कर सकूँ, डबल पुण्योपार्जन कर सकूँ। तुम एक बार फिर गिर जाओ। वह व्यक्ति बड़ा घबराया। मैं तो इतने दुःख से बाहर निकला और तुम पुनः गिराना चाह रहे हो। पादरी ने सोचा - यह गिरने के लिए आना-कानी कर रहा है। पादरी ने उसे धक्का दे दिया- वह नीचे गिरा। रस्सी वापस फेंक दी और पादरी महोदय ने कहा- तुम इस रस्सी के सहारे बाहर आ जाओ ताकि मैं पुण्योपार्जन कर सकूँ।

पादरी धर्म की मूल बात को भूल गया था। यह करूणा नहीं, करूणा का दिखावा है।

आचार्य भगवन्त कह रहे हैं- "मैत्र्यादिभाव संयुक्तं" हमारी क्रिया के पीछे मैत्री, करूणा, प्रमोद, माध्यस्थ भावना नहीं है तो निश्चित रूप से हमारी क्रियाएँ 'धर्म' नहीं

है। व्यवहार में तो हो सकता है कि वह क्रिया धर्म दिखाई दे किन्तु निश्चय से वह क्रिया धर्म नहीं होती।

हम चिन्तन करें भीतर में डूबे डूबकर विचार करें, हमारी स्वयं की क्रियाएँ किस तरह की है किस प्रकार की है। इस सूत्र को समझे बिना इस सूत्र को पकड़े बिना इस सूत्र को स्वयं की बुद्धि के द्वारा भीतर में उतारे बिना धार्मिक क्षेत्र में प्रवेश नहीं कर सकते।

चारों भावनाओं में से महत्वपूर्ण भावना माध्यस्थ भावना है। इस सूत्र को पकड़कर के ही इस भावना को पकडकर के ही व्यक्ति का प्रवेश साधना के क्षेत्र में हो सकता है। हमें उस मध्यस्थ सूत्र को पकड लेना है ताकि भीतर में मध्यस्थ भावना का प्रवेश हो जाय। परमात्मन् तो कहते हैं- हमारे भीतर ऐसी स्प्रिंग लगा दें कि राग का झटका आये तो भी पता न चले द्वेष आये तो भी पता न चले।

जितने भी दूषित पदार्थ हैं मनोवत्तियाँ हैं किसी का भी धक्का लगे हम अपने भीतर में उपेक्षा भाव की माध्यस्थ भाव की समता भाव की इस तरह की स्प्रिंग का निर्माण कर लें ताकि हमारी आत्मा को कोई भी किसी तरह का धक्का न लगा सके।

ऐसी स्प्रिंग धर्म कहलाती है। हमें धर्म के क्षेत्र में प्रवेश करना है तो निश्चित रूप से माध्यस्थ भावना को पकड़ना होगा। हमारी दष्टि को बदलना होगा चिन्तन की धारा को परिवर्तित करना होगा देखने की दष्टि सोचने की दष्टि बदलनी होगी।

हमारे भीतर में समत्व की दष्टि को प्रतिष्ठित करना होगा। समत्व की दष्टि करूणा भाव की दृष्टि उपेक्षा की दष्टि हमारे भीतर में प्रवेश कर जाय तो निश्चित रूप से धर्म के मार्ग में हमारा प्रवेश हो जाये और सच्चिदानन्द के विशुद्ध भावों का आविर्भाव हो जाय।

आज इतना ही।

3. सर्वांगीण साधना

नेश्वर परमात्मा ने प्राणी मात्र के कल्याण हेतु करूणा भाव से भरकर देशना दी। जो वात्सल्य एक माँ का अपनी संतान के प्रति उमड़ता है, उससे अनन्तगुणा वात्सल्य परमात्मा के भीतर भरा हुआ था। हर चेतना के प्रति, हर जीव के प्रति वही वात्सल्य और करूणा भरी हुई थी। उनके उपदेश का एक ही लक्ष्य था-व्यक्ति अपने आप से दूर होता जा रहा है, अपने स्वभाव से, अपनी चेतना से अपनी आत्मा से दूर होकर विभाव दशा के गर्त मे डूबा जा रहा है, वह किस प्रकार अपनी आत्मदशा को उपलब्ध करे, अपने भीतर का आस्वादन करे।

हमारे भीतर का आनन्द जिसे हम परमतृप्ति कहते हैं वह अपने भीतर ही है। स्वयं की चेतना में ही आनन्द का स्रोत बह रहा है। आनन्दघनजी महाराज कहते हैं-

तीन लोक के अघ बिच कुआँ, वहाँ है अमी का वासा।
सुगुरा हुवे सो भर भर पीवे, निगुरा जावे प्यासा।।

तीन लोक के मध्य अमृत का कुआँ भरा पड़ा है। गुरू का निर्देशन पाकर के, शास्त्रों को सुनकर के जो व्यक्ति उस कुएं तक पहुँच जाता है, वह व्यक्ति अमृत का आस्वादन कर लेता है, वही व्यक्ति अपनी प्यास को बुझा सकता है, तृप्त हो सकता है। शेष व्यक्ति पास में चले जाने पर भी, सामने उपस्थित हो जाने पर भी कुएँ के चक्कर लगाते रह जाते हैं। किन्तु जब तक अमृत की बूंदें व्यक्ति के गले के नीचे नहीं उतरती तब तक अमृत का आस्वादन नहीं कर सकता।

ध्यान रखें! प्यास बुझाने के लिए कुएँ के पास जाना पड़ेगा, उसमें डुबकी लगानी पड़ेगी। आधी अधूरी बात इस क्षेत्र में नहीं चलती। परमात्मा के क्षेत्र में बहुमत नहीं चलता, यहाँ तो सर्वमत चलता है। जैसे कोई व्यक्ति बाल्टी लेकर कुएँ के पास चला जाय और बाल्टी को रस्सी के सहारे कुएँ में उतार दें। कुआँ 50 फुट नीचा हो, बाल्टी 25 प्रतिशत नीचे उतर जाय। यदि 50 फुट बाल्टी नीचे भी चली जाय तब भी बाल्टी में पानी नहीं आ सकता। एक बूंद भी पानी उस बाल्टी में नहीं आ सकता। उसकी सारी यात्रा अधूरी होगी। हमारी यात्रा सर्वांगीण होनी चाहिए। यदि हमारी यात्रा

सम्पूर्ण बनती है तभी यात्रा का परिणाम सम्पूर्ण रूप से प्राप्त होता है। अधूरी यात्रा यहाँ नहीं चलती। यदि बाल्टी का पैंदा पानी को स्पर्श भी कर ले उसके तल को छू भी जाय फिर भी पानी भीतर नहीं आ सकता। जब तक बाल्टी कुएँ के भीतर छलांग नहीं लगाती डुबकी नहीं लगाती तब तक पानी नहीं भरेगा। उसकी यात्रा सारी व्यर्थ चली जाएगी। बाल्टी डुबकी लगाती है तभी परिणाम सामने आता है अधूरी यात्रा से परिणाम सामने नहीं आता। हमारी सारी यात्राएँ अधूरी होती है। सर्वांगीण नहीं होती। संसार की यात्रा का कोई महत्त्व नहीं। हमारे भीतर के कदम परमात्मा के क्षेत्र में आगे बढ़े नहीं; तब तक कोई अर्थ नहीं।

एक बार मि जटा शंकर ससुराल जा रहा था। भोला भाला जीव था। माँ ने कहा- तुम ससुराल तो जा रहे हो किन्तु अपनी इज्जत का ख्याल रखना सम्मान से रहना। ऐसा न हो कि लोग तुम्हारी मजाक उड़ायें। सम्मान से रहना ही ससुराल में अच्छा माना जाता है। जाते-जाते एक बात और भी कह दी। तुम्हें भूख बहुत लगती है। 40-50 रोटियाँ खा लेते हो किन्तु ससुराल में इतनी रोटियाँ मत खाना। अन्यथा मजाक करेंगे। यदि इतनी रोटियाँ खाओगे तो वे सोचेंगे यह भूत कहाँ से उठकर आ गया। अत यह बात उचित नहीं। एक कहना मेरा मानना तुम 5 फुलके से ज्यादा हरगिज मत खाना। यदि ज्यादा ही सालाजी वगैरह मनुहार करें तो आधा फुलका ले लेना मगर पूरा तो हरगिज मत लेना। जटा शंकर ने माँ की बातें गाँठ में बाँध ली हृदय में पिरोली। ससुराल पहुँच गया। खाना खाने के लिए बैठा। वैसे भी उसकी भूख ज्यादा थी फिर आज तो इतनी लम्बी यात्रा करके आया था।

मन में विचार करने लगा-पाँच फुलके से ज्यादा एक भी फुलका नहीं खाना माँ ने कहा है किन्तु इनसे तो टीकी भी लगने वाली नहीं है। यह तो ऊंट के मुँह में जीरे जैसी बात होगी। गरमागरम फुलके आने लगे। एक दो तीन चार इस प्रकार पाँच फुलके तो पलक झपकते खा लिये। जैसे ही छट्ठा फुलका आया तो जटा शंकर ने साफ मना कर दिया। ससुर जी आदि कहने लगे आज आपको क्या हो गया कोई रोग लग गया क्या? वे जानते थे कि जवाँई जी की खुराक कितनी है?

ससुराल वाले सोचने लगे कोई भातावाता लेकर आये हैं क्या? या पेट भरा हुआ है या शर्म आ रही होगी। ससुराल वालों के द्वारा खूब मनुहार की गई किन्तु जटा शंकर ने एक भी फुलका नहीं लिया। तब ससुरजी ने कहा पूरा फुलका नहीं लेते हो तो आधा फुलका तो लेना ही पड़ेगा। जटा शंकर ने कहा- आधे-आधे फुलके तो 40-50 ले आइए। वह मैं सहर्ष स्वीकार कर लूंगा। क्योंकि माँ ने मुझे कहा था- कि पूरा फुलका हरगिज मत लेना आधा ले लेना।

ध्यान रहे बात सर्वांगीण होनी चाहिए, अधूरी नहीं। अध्यात्म क्षेत्र में अधूरी बात नहीं चलती। कभी आपने चिन्तन किया- कहीं दौड़ होने वाली हो जहाँ कुछ इस तरह की प्रतियोगिता रखी हो जहाँ कूदने की बात हो। एक व्यक्ति वहाँ खड़ा हो

जहाँ 20 फूट नीचे खड्डा है। एक व्यक्ति में 10 फूट नीचे कूदने की क्षमता हो, फिर भी वह खाई को पार नहीं कर सकता। एक व्यक्ति में 18 फुट कूदने की क्षमता है किन्तु वह भी उस खड्डे को पार नहीं कर सकता। 21 फूट कूदने वाला ही उस खाई को पार कर सकता है। यहाँ भावना सर्वांगीण होनी चाहिए। आधी अधूरी बातों से काम नहीं चल सकता। हमारी सारी चेतनाएँ अधूरी बातों में खो जाती हैं। सर्वांगीण बातों की ओर हमारा कभी ध्यान नहीं जाता।

एक बहुत बडा संत हुआ। वह हमेशा झोली में एक बडी व्यवस्थित चीज रखा करता था। शिष्यो को, किसी को इस बात का पता न था। कोई व्यक्ति चीज को ज्यादा छुपाता है तो लोगों के मन में ज्यादा संदेह होता है कि इसमें कोई अवश्य अमूल्य निधि होनी चाहिए।

उन शिष्यों ने विचार किया-गुरू के पास ऐसी कौन सी वस्तु है, जिसे सुबह भी देखते हैं और शाम भी। फिर वस्तु को हाथ में लेने के पश्चात् 1-2 मिनट के लिए नैन बंद कर लेते हैं। उस समय ऐसा लगता है कि ये समाधि क्षेत्र में पहुँच जाते हो। इसका कारण क्या है? लगता है इनकी कोई प्रिय चीज होनी चाहिए जिसे देखकर गुरू परम तृप्ति का आनन्द लेते हैं। सभी की तृप्ति के अलग-अलग कारण होते हैं।

कोई धर्म क्रियाओं को देखकर तृप्ति का अनुभव करता है, कोई सोने के आभूषणों को देखकर राजी होता है तो कोई अपने आलीशान बंगलों को देखकर आनन्द मनाता है। सभी व्यक्तियों के तृप्ति के अलग -2 कारण होते हैं। शिष्यों ने विचार किया - गुरू के पास कौन सी ऐसी वस्तु है जिसे देखकर 1-2 पल के लिए नयन बन्द कर लेते हैं और तृप्ति का आनन्द लेते है ।जरूर इसे एक बार देख लेना चाहिए।

एक दिन शिष्यों ने मिलकर पूछ ही लिया- गुरू जी। हमारे मन में बड़ी जिज्ञासा है, उत्कण्ठा है कि झोली में ऐसी कौन सी वस्तु है जिसे देखकर आप परम तृप्ति का अनुभव करते हैं। गुरू ने कहा- उस झोली में कोई चीज नहीं, मात्र मेरा भविष्य है और उस भविष्य को देखकर मैं पलभर के लिए सावधान हो जाता हूँ। शिष्यों ने कहा- आपका भविष्य हमें भी दिखाओ। गुरू ने झोली खोलकर दिखाई तो उसमें मरे हुए मनुष्य की खोपड़ी थी और कुछ नहीं था। उसे देखकर ऐसा लगे कि कोई भूत प्रेत हो, व्यक्ति तुरंत डर जाय। शिष्यों ने कहा- आप सुबह और शाम इसे देखकर तृप्ति का अनुभव करते हैं, यह बात हमारी समझ में नहीं आती।

गुरू ने कहा- मैंने जान बूझकर इस खोपड़ी को अपने पास रख रखा है। मेरे दिमाग में संसार की बातें आ जाय, संसार की वस्तुओं के प्रति मन आसक्त हो जाय, मैं साधक हूँ तो यदि साधना के प्रति अहंकार आ जाय तो मैं उसी पल इस खोपड़ी को देखता हूँ और चिन्तन करने लगता हूँ कि तेरी भी दशा ऐसी ही होने वाली है।

मैं इसे देखकर सावधान बन जाता हूँ। एक प्रकार से यह मेरी जागरूकता की निशानी है। यदि मैं थोड़ी सी देर के लिए भी असावधान बन गया, थोड़ी सी देर के लिए भी अपने पथ से पतित हो गया तो निश्चित रूप से मैं पुन संसार के गर्त में

चला जाऊँगा। अशाश्वत तत्व की ओर मेरी गति हो जाएगी मैं आत्मा की अनुभूति से वंचित रह जाऊँगा।

कभी-कभी व्यक्ति मन्दिर में चला जाय भले ही थोडी देर के लिए परमात्मा में लीन भी बन जाय किन्तु ज्योंहि वापस बाहर निकलता है वह संसार के रंगों में मस्त हो जाता है। हृदय के रोम- रोम में संसार बस जाता है।

साधना जब तक सर्वागिण नहीं होती तब तक कुछ भी नहीं। जैसे- अधूरी यात्रा करने से बाल्टी में पानी नहीं आ सकता उसी प्रकार हमारे भीतर में भी अमृत का स्रोत खुल नहीं सकता अमृत का झरणा बह नहीं सकता। हमारी साधना सम्पूर्ण रूपेण होनी चाहिए। जब स्वयं की आत्मदशा का चिन्तन गहरा होने लगता है तभी हम स्वयं के भीतर में प्रवेश कर सकते हैं। परमात्मा की यही करूणा है उसी करूणा को झेलना है। संसार के बंधनों से मुक्त होना है। संसार में रूकने के लिए हमें कोई जबर्दस्ती नहीं करता संसार हमें संसार में नहीं रोकता। बल्कि हम स्वयं संसार का निर्माण करते हैं। हम इन्द्रियों के कहने-कहने में सारा जीवन संसार में व्यतीत कर लेते हैं। फिर हमारी साधना सर्वागिण कैसे बनेगी? सम्पूर्ण रूपेण कैसे होगी?

एक बार मि- जटा शंकर विदेश गया। पत्नी घर पर ही थी। उसके पडोस में एक माँजी रहती थी। बूढी माँ जटा शंकर की पत्नी के पास रोजाना आया जाया करती थी और थोडी देर बातें करके चली जाया करती थी। बूढी माँ के मन में एक बार विचार आया-इन दोनों पति-पत्नी में प्रेम भारी है। पति तो विदेश गया हुआ है क्यों न भिड़ाकर आपस में झगडा करा दूं।

बाईयाँ बातें करने में बड़ी माहिर होती है। उनमें स्वाभाविक ईर्ष्या होती है। जबकि उन्हें कोई लेना देना नहीं होता फिर भी भिडाने में इधर-उधर करने में बडा मजा आता है। बूढी माँ रोज-रोज मीठी-2 बातें करती। एक दिन उससे कहा- तुम अपने पतिदेव को बडे खानदानी घर के समझती हो किन्तु वे बडे खानदानी नहीं हैं। एक नीच खारेवाल नामक जाति है। उस जाति का है। पत्नी भोली भाली थी। उसने कहा- खारेवाल। पत्नी बुढी माँ के समझाने में आ गई और मन में विश्वास जम गया कि मेरा पति खारेवाल नामक नीच जाति का है। जटा शंकर की पत्नी ने कहा- मुझे कैसे पता चले कि वह खारेवाल है ऐसी कौन सी निशानी है जिससे मैं उसे खारेवाल के रूप में जान सकूं। बूढी माँ ने कहा- उनकी एक अद्भुत निशानी होती है उनका सारा शरीर खारा-खारा होता है। 15 दिन में ही पतिदेव जी आने वाले हैं जब रात्रि में भर नींद में सोए हुये हो उस वक्त उनकी पीठ चाटना पता लग जाएगा। यदि पीठ खारी हो तो खारेवाल समझना। पत्नी के मन में यह बात जम गई। विश्वास हो गया। विश्वास होता भी क्यों नहीं बात भी बता दी और प्रमाण भी पेश कर दिया।

पतिदेव आ गये। पत्नी के मन में एक ही ललक थी- कब पतिदेव सो जाय और मैं उनकी पीठ चखूं। इधर जटा शंकर घर आया। उधर बूढ़ी माँ ने सोचा- इतने दिनों से आया है तो जरा बात करके आ जाऊँ। सोचा- एक तरफ तो आग लगा दी।

दूसरी तरफ भी पलीता चेप दूँ। जटा शंकर ने माँजी से पूछा- तुम ठीक तो हो। यहाँ के हाल तो ठीक है। बूढी माँ ने कहा-सब ठीक है पर मुझे बताना नहीं! जटा शंकर ने पूछा- क्या बात है? नहीं नहीं! मुझे क्या लेना-देना है, मैं तो बूढ़ी हो गई।

कई लोगों की आदत होती है, बातों को लम्बी करके बताने की ताकि सामने वाले के मन में तीव्र उत्सुकता पैदा हो जाय और खुद की बात का वजन बढ जाय। जटा शंकर के मन की जिज्ञासा तीव्र हो उठी- नहीं तुम्हे बताना ही होगा। बूढी माँ कहती जा रही थी कि मुझे नहीं बताना चाहिए, फिर भी तुम्हारी भलाई के लिए बताना जरूरी है। यदि उस राज को छिपा दूंगी तो तुम्हारा खान्दान नष्ट हो जाएगा। बेटा! बताना यह चाहती हूँ कि तुम तो परदेश चले गये। पीछे से तुम्हारी पत्नी भूत, प्रेत, डाकणों के सम्पर्क मे आ गई, यहाँ मन्दिर में जो डाकण रहती है ना! उसके पास रोज विद्या सीखने जाती है। सचमुच तुम्हारी पत्नी डाकण हो गई, आज रात्रि में ही तुम्हें खा लेगी।

ध्यान रखना, हर डाकण तो छाती से खाती है किन्तु यह तो पीठ से तुम्हारा माँस निकालेगी। जटा शंकर बात सुनकर परेशान हो गया। दोनों एक दूसरे को संशय की दृष्टि से देख रहे थे। जटा शंकर सोच रहा था, कब सोऊँ और कब मालुम पडे कि यह डाकण है या नहीं। पत्नी भी यही सोच रही थी कि कब पतिदेव सोएँ ओर कब मुझे मालूम पडे कि यह खारेवाल जाति का है या नहीं। दिन भर दोनों का एक दूसरे के प्रति इसी प्रकार का संशय बना रहा। रात्रि में जटा शंकर सो गया। गर्मी के दिन थे, पसीना आ रहा था। ऊपर छत पर नींद का बहाना बनाकर सो गया। नींद तो आ नहीं रही थी। रात्रि के 11 बज गये। पत्नी ने विचार किया, अब पतिदेव गहरी नींद में सो गए। जरा जाकर धीरे से पीठ चख लूं। धीमे से उठी, पीठ पर जैसे ही मुँह लगाया कि जटा शंकर चिल्ला उठा- डाकण आ गई-डाकण आ गई। पत्नी ने तब तक पीठ चख ली थी, वह भी जोर-जोर से चिल्लाने लगी, खारेवाल रे खारेवाल। थोडी देर बाद दोनों में सामन्जस्य हुआ तब बूढी माँजी की करतूतें समझ में आ गई।

यदि दोनों को बूढी माँजी की करतूत समझ में नहीं आती तो दोनों के बीच 36 के आंकडे रह जाते। कभी आपस में मिल नहीं पाते।

ध्यान रहे! ये सारा संसार हमें करतूतों में फँसा रहा है और हम भोले बनकर उन करतूतों में फँसते जा रहे हैं। यदि करतूतें हमें बेहोश होने से पहले समझ में आ जाय तो निश्चित रूप से हम चेतना को साधना के मार्ग में लगा दें। अन्यथा हम सारा जीवन दूसरों के सिखाने में अर्थात् इन्द्रियों के वशीभूत होकर गुजार देते हैं, व्यतीत कर देते हैं, नष्ट कर देते हैं। स्वयं की आत्मा से बहुत दूर रह जाते हैं। जब इन्द्रियों की आसक्ति से दूर हमारी साधना सर्वांगीण बनेगी, तभी साधना का प्रादुर्भाव होगा, साधना में प्रगति होगी। तभी हम निजता में प्रविष्ट हो सकेंगी।

आज इतना ही।

4 तपश्चरण

अनंत उपकारी अरिहन्त परमात्मा ने केवल ज्ञान की सम्प्रभुता को प्राप्त करने के पश्चात् करुणा भाव से भरकर देशना दी। केवल ज्ञान के द्वारा उन्होंने जो जाना जो देखा जो अनुभव किया उसी ज्ञान गंगा को समस्त जनता के लिए प्रवाहित किया। किस प्रकार व्यक्ति अपनी चेतना में प्रवेश कर सके किस प्रकार व्यक्ति बाह्य साधनों के व्यामोह से मुक्त होकर आन्तरिक सम्प्रभुता को प्राप्त करने के लिए अपने कदमों को आगे बढ़ा सकें? इसी हेतु से परमात्मा ने देशना दी। इसी हेतु से इसी लक्ष्य से इसी उद्देश्य से हमें भीतर की यात्रा का प्रारम्भ करना है भीतर जाने के लिए अपने कदमों को आगे बढ़ाना है। उसी दिशा में जाने के लिए अपनी ऊर्जा का अपनी शक्ति का सही उपयोग करना है। ताकि हर कदम प्रगति का कदम बन जाय हर कदम उन्नति का कदम बन जाय हर कदम जागति का कदम बन जाय। हमारे कदम बेहोशी को मजबूत न करें बल्कि जागति का संदेश बन जाय। यात्रा पाँवों को करनी होगी लेकिन यात्रा का निर्धारण हमें करना होगा। पाँव नीचे की भी यात्रा कर सकते हैं और सीढ़ियाँ भी चढ़ सकते हैं। पाँव दोनों दिशाओं में समान पुरुषार्थ करेंगे लेकिन दिशा का निर्धारण अपने चिन्तन के द्वारा करना होगा ।

यदि पुरुषार्थ सही दिशा में हुआ आत्म जागति की दिशा में हुआ तो निश्चित रूप से हमारा कदम जागति का कदम होगा हर कदम मूर्च्छा की समाप्ति का कदम होगा हर कदम बेहोशी के आलम को तोड़ने वाला निर्णायक कदम होगा।

भीतर की बेहोशी को किस प्रकार समाप्त की जाय। हम सारा का सारा जीवन बेहोशी में गुजारते हैं मूर्च्छा में व्यतीत करते हैं। मूर्च्छा तोड़कर के जागति में जागति के वातावरण में किस प्रकार हम प्रविष्ट हो सकें यही तो साधना है। साधना का कुल मिलाकर अर्थ इतना ही है कि मूर्च्छा समाप्त हो जाय। कभी-कभी हम बाजार से गुजरते हैं मन कल्पनाओं में घूमता हो भविष्य की आशाओं में गुनगुना रहा हो मन और कहीं इधर-उधर भटक रहा हो हमारे कदम भले ही बाजार में चलें लेकिन हो सकता है कि हमारा मन और कहीं उड़ रहा हो और कहीं किसी शहर और गलियों में भटक रहा हो। बहुत बार ऐसा सम्भव है कि हमारे कदम जहाँ चलते हैं हम स्वयं वहाँ नहीं होते। हमारे कदम जिस दिशा की ओर बढ़ते हैं हमारा मन और कहीं

रहता है, यही मूर्च्छा है। इस मूर्च्छा को कैसे समाप्त किया जाय। मूर्च्छा को समाप्त कर लेने पर ही जागृति का संगीत गूंजता है, जागृति की गूंज हमारे भीतर में उपस्थित हो जाती है। यह मूर्च्छा किस तरह से समाप्त हो, किस तरह हमारे भीतर में जागृति का माहौल खडा हो जाय, यही साधना हमें करनी है। आचारांग सूत्र में जहाँ भगवान महावीर की साधना की बातें हैं- परमात्मा भगवन्त किस तरह से साधना करते थे, किस तरह बोलते थे, चलते थे या जो भी क्रिया करते थे, साधना के इन पृष्ठों को यदि खोला जाय, उन पृष्ठों को यदि पढ़ा जाय तो परमात्मा की सारी साधना समझ में आ जाय। साधना के पृष्ठों को जब हम पढते हैं तो हमारा रोयां-रोयां कांप जाता है। परमात्मा प्रतिकूल परिस्थितियों में अपने आप को जान बूझकर डालते थे ताकि भीतर में एक तरह का ऐसा वातावरण खडा हो जाय जिससे उन प्रतिकूल परिस्थितियों के साथ में हम लड़ सकें, युद्ध कर सकें और अच्छी तरह से उन्हें जान सकें।

हमें यदि किसी भी वस्तु को जानना है तो उसे प्रतिकूल परिस्थितियों में खडा करना होगा। अनुकूल स्थितियों में हम नहीं जान सकते। अनुकूल स्थिति बेहोशी को बढ़ाती है और प्रतिकूल स्थिति बेहोशी को जागृति में बदल डालती है, इन दोनों को अच्छी तरह से समझना होगा। यदि अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थितियों को अच्छी तरह से जान लें तो निश्चित रूप से जैनदर्शन की साधना का जो मूल तत्व है वह हमारे समझ में_आ जाय। जैन दर्शन की साधना अनुकूल स्थितियों की नहीं है, प्रतिकूल परिस्थितियों की साधना है। प्रतिकूल वातावरण में हमें अपने आप को डाल देना है ताकि प्रतिकूल परिस्थितियों में खडे रहकर जो द्वन्द्व, जागृत होता है, उसे जान सकें, पहिचान सकें, और युद्ध की क्षमता भीतर में उपस्थित हो सके।

तपश्चरण इसी का एक प्रकार है- तपश्चर्या का अर्थ है- स्वयं की इच्छा के विरोध में चलना, मन के विरोध में चलना, इन्द्रियों के विरोध में चलना, यही प्रतिकूल परिस्थिति हैं। प्रतिकूल परिस्थितियों में ही साधना के दीये जलाये जा सकते हैं। अनुकूल परिस्थितियों में तो हमारी इन्द्रियाँ बेहोश बनेगी, अनुकूल स्थितियों में तो मन और ज्यादा इन्द्रियों के साथ जुडेगा। मन और ज्यादा इंद्रियों से युक्त हो जाएगा। परमात्मा की साधना आचारांग के पृष्ठों पर जो अंकित हैं। जरा वे सूत्र सुनें, पढें तो हमारा रोयां-रोयां रोने लग जाय। भयंकर सर्दी का समय, रात्रि में तो और ज्यादा सर्दी का माहौल, फिर भी नग्न, ऐसी अवस्था में भी परमात्मन् जागृत रहते थे। जान बूझकर परमात्मन् पेड के नीचे चले जाते थे। ऐसे समय में हर व्यक्ति रजाई की कामना करता है, ऐसे समय में हर व्यक्ति बंद कमरे की इच्छा करता है, लेकिन ऐसी भयंकर सर्दी में भी परमात्मन् बाहर निकलते थे। इसका अर्थ इतना था कि परमात्मा की जो चेतना थी, परमात्मा का जो मौलिक चिन्तन था, शरीर जब सर्दी सहन करता था, इन्द्रियाँ और शरीर ठिठुर जाते, उस समय परमात्मन् स्वयं को अलग करके इन्द्रियों की स्थिति को देखा करते थे कि इन्द्रियों में किस तरह की हलचल प्रारम्भ हो रही है?

भयंकर गर्मी में भी, कडी धूप में भी, परमात्मन् बाहर चले जाते थे- ऐसे समय में हर व्यक्ति का मन छाया चाहता है, हर व्यक्ति का मन ठंडी बहारें चाहता है, हर

व्यक्ति का मन कूलर के सामने बैठे रहने का करता है ऐसे समय में भी कड़कड़ाती धूप में भी परमात्मन् बाहर निकलते थे और धूप में खड़े हो जाते थे। प्रतिकूल परिस्थितियों में वातावरण की प्रतिकूलता में अपने आप को डालकर स्वयं की इन्द्रियों का चिन्तन करना यही परमात्मा की साधना थी और यही जैन दर्शन की मूल साधना है। अपने आप को प्रतिकूल परिस्थितियों में डालकर के इन्द्रियों पर हो रहे परिवर्तन का अभ्यास करना उस समय में मन के चिन्तन को सम्यक दिशामें लगाना।

साधना के दो प्राणतत्व हैं (1) अपने आप को प्रतिकूल परिस्थितियों में डालना (2) उन प्रतिकूल परिस्थितियों में सम्यक चिन्तन का अभ्यास करना। विपरीत परिस्थितियों में डालने के पश्चात् यदि हमारा मन सम्यक चिन्तन के साथ नहीं जुड़ा यदि हमारा मन स्वयं की आत्मजागति के संदेश में नहीं जुड़ा तो निश्चित रूप से अपने आपको विपरीत परिस्थितियों में डालने पर भी वह मात्र देह की पीड़ा रह जाएगी। तपश्चर्या का कुल मिलाकर अर्थ यही है कि मन का इन्द्रियों के साथ में जो जुड़ाव है लगाव है उसे तोड़ देना समाप्त कर देना। अपने मन को इन्द्रियों से अलग रखना। मन की सारी इच्छाएँ इन्द्रियों के कारण पैदा होती है क्योंकि इन्द्रियाँ मन का प्रमुख साधन हैं प्रमुख द्वार हैं। मन का संयोग जब तक इन्द्रियों से है तब तक व्यक्ति इच्छाओं की पूर्ति के लिए भागदौड़ करता है इच्छाओं की पूर्ति के लिए आपाधापी मचाता है लेकिन ज्योंही इन्द्रियों के साथ में मन का सम्बन्ध समाप्त हो जाता है तभी व्यक्ति के भीतर में तपश्चर्या का प्रारम्भ हो जाता है। इस प्रकार के तपश्चरण में अपने आपको जोड़ना है। इन्द्रियों से मन का लगाव दूर किया जाय ताकि मन को आत्म चिंतन के साथ जोड़ा जा सकें। मन यदि आत्म चिंतन के साथ जुड़ जाय तो अपने आप इच्छाओं का विरोध होना प्रारम्भ हो जाएगा। जो व्यक्ति कष्ट सहन करता है दुख सहन करता है उसे उसका पापोदय कहते हैं। किसी की इच्छा नहीं कि मैं धूप में खड़ा रहूँ लेकिन दोपहर में जाना है बाजार, दोपहर में करना है काम इच्छा न होने पर भी काम करता है शरीर को कष्ट पहुँचता है लेकिन वो एक तरह का पापोदय कहलाता है उसमें तप का कोई अंश नहीं। मात्र शरीर की पीड़ा है। यदि शरीर की पीड़ा के पलों में व्यक्ति आत्मचिंतन से जुड़ जाय तो वह क्रिया तपश्चर्या बन जाती है। शरीर की पीड़ा जब आत्मचिंतन का आधार बन जाय जागति का आधार बन जाय तो वहीं से तपश्चरण का प्रारम्भ हो जाता है। यह जैनदर्शन का मौलिक सूत्र है।

हम जरा चिन्तन करें कि उस समय में हमारी परिस्थितियाँ कैसी होती हैं चिन्तन कैसा होता है? परमात्मा की साधना जो आचारांग सूत्र में निर्दिष्ट की गई उसे सावधानी से पढ़ें भीतर में उतारने का प्रयत्न करें तो हमें ज्ञात होगा कि प्रतिकूल परिस्थितियों में भी परमात्मा की जागति किस प्रकार की थी?

स्वाभाविक रूप से शरीर की पीड़ा हमारे भीतर में कषायों को जन्म देती है। कषायों का मूल स्रोत शरीर है।

आपने देखा होगा- लड़ाई कुश्ती आदि में। जब दो पहलवान लड़ते हैं उनमें से जो समझदार अनुभवी पहलवान होता है वह कभी भी पहले वार नहीं करेगा मुक्का

नहीं मारेगा। वह दौड़ता रहेगा, उसे हंफाता रहेगा- जब सामने वाला थक जाता है, उस समय वह पहलवान तुरंत उस पर हमला करके जय प्राप्त करता है।

यह सारी स्थिति, विधि आत्म चिन्तना के विषय में भी उतनी ही सत्य है। सामने वाले उम्मीदवार को सबसे पहले प्रगट करना है, उभारना है, सबसे पहले उसकी जितनी शक्ति है, क्षमता है, उसे उजागर कर देना है। शक्ति उजागर कर देने के पश्चात्, उसे थकाने के बाद यदि प्रहार किया जाय तो वह निश्चित रूप से हार जाएगा। जैन दर्शन की यही साधना है।

परमात्मा की जो साधना थी, उसका मूल हार्द यही है कि जान बूझकर प्रतिकूल परिस्थितियों को उपस्थित करना ताकि शरीर के भीतर के जो विकार हैं, वह जागृत हो जाय। यदि कषाय की दशा जागृत हो जाय तो तुरंत आत्मचिन्तन का, सम्यक् चिन्तन का प्रहार किया जाय ताकि भीतर के सारे कषाय परमाणु नष्ट हो जाय, सारी वासनाऐं समाप्त हो जाय।

शरीर जब प्रतिकूल परिस्थितियों में होता है तो निश्चित रूप से क्रोध भी जागृत होता है, मान भी, माया भी, लोभ भी जागृत होता है। शरीर जब इस प्रकार के वातावरण में ढलता है तो मन का चिन्तन प्रतिकूल बन जाता है। प्रतिकूल परिस्थितियों में अपने आपको डाला हो, प्रतिकूल वातावरण भीतर में खड़ा हो और उस समय हमारा चिन्तन सम्यक् बन जाय, उस समय का हमारा चिन्तन आत्म जागृति का कारण बन जाय तो निश्चित रूप से उस समय उबले हुए, उबल रहे सारे कषायों के परमाणुओं को समाप्त किया जा सकता है। इसी साधना को हमें अपने जीवन में उतारना है। जिन दर्शन की साधना में अनुकूल स्थितियों का कोई काम नहीं क्योंकि अनुकूल परिस्थितियाँ व्यक्ति को बेहोश करती है, इन्द्रियों को बेहोश करती है। आँख चाहती है देखना यदि हम अनुकूल परिस्थिति में उसे डालते हैं तो आँख बेहोश हो जाएगी, इन्द्रियाँ बेहोश हो जाएगी, भीतर का मन बेहोश हो जाएगा। शरीर को, मन को प्रतिकूल परिस्थितियों में डालना है।

एक सम्राट् था नीरो नाम का। किस तरह इन्द्रियों को तृप्त करने की उसकी आकांक्षा रहती थी, किस तरह हर पल इन्द्रियों की तृप्ति के विषय में सोचा करता था। उसे केवल भोजन प्रिय था। इन्द्रियों के अपने-अपने विषय होते हैं। किसी को संगीत प्रिय होता है, हर वक्त वह गुनगुनाता ही रहेगा, रेडियो कान के पास लगाकर ही रखेगा। किसी को भोजन प्रिय होता है, वह सिवाय भोजन और स्वाद की चर्चा के और कोई बात नहीं करेगा। किसी को स्वाद प्रिय होता है तो हमेशा स्वाद के बारे में ही सोचा करता है। एक बात आप निश्चित तौर पर सुनलें-भोजन से पेट को भरा जाता है, स्वाद से कभी भी पेट को भरा नहीं जाता। स्वाद आपके सामने कितने भी आ जाय, सुगन्ध कितनी भी आ जाय, पेट कभी भी भर नहीं सकता।

नीरो की बड़ी विचित्र आदत थी। उसने पास में बड़े-बड़े चिकित्सक रख रखे थे। भोजन करता-- सुस्वादु भोजन। जब भी उठता, भोजन करने के लिए बैठ जाता। खूब

पेट भरकर भोजन करता लेकिन भोजन के प्रति स्वाद के प्रति जो आसक्ति थी वो शेष रह जाती।

एक व्यक्ति चाहे कि मैं बाजार में जितनी मिठाईयाँ हैं सारी की सारी खालूँ, पेट की अपनी सीमा है वह खा नहीं सकता। चिन्तन किया जा सकता है सोचा जा सकता है मगर पेट की अपनी सीमा है। वह आधा-एक किलो ही खा सकता है ज्यादा नहीं। नीरो चाहता था कि मैं खाता ही रहूँ, खूब सारा खाता रहूँ और इसके लिए उसने ऐसी योजना कर रखी थी कि भोजन करता और भोजन करने के पश्चात् मोर पंख पास में रहते एक चिकित्सक भी पास में रहता तुरंत वह चिकित्सक मोरपंख को उसके गले में डालता ताकि उसे उल्टी हो जाय। वह तुरंत बाजू में जाकर उल्टी कर डालता। पेट खाली हो जाता और फिर भोजन करने के लिए बैठ जाता। पुन खूब पेट भरकर भोजन करता-दुबारा मोरपंखों का उपयोग करता उल्टी करता फिर खाने के लिए बैठ जाता। भोजन की आसक्ति इतनी जुडी हुई थी। यह बात अतिशयोक्ति पूर्ण हो सकती है क्योंकि कोई व्यक्ति इतना भोजन नहीं कर सकता।

लेकिन जरा हम अपनी ओर चिन्तन करें, अपनी ओर विचार करें, हमारा सबका अभ्यास कुछ न कुछ इसी तरह का है। हम हमेशा जरूरत से ज्यादा अपने भीतर में उतारते हैं एक तरह से अपनी इन्द्रियों को बेहोश करने का अपने शरीर को बेहोश करने का अपने मन को बेहोश करने का काम करते हैं। जबकि जैन दर्शन की साधना है कि इस तरह की क्रिया करें, जिससे शरीर, इन्द्रियाँ एवं मन जागत बने जिसको आत्म चिन्तना के द्वारा ठंडा किया जा सके आत्म चिन्तना के द्वारा इच्छाओं का निरोध किया जा सके।

हमारी परिस्थिति बड़ी विचित्र है। यदि हमें सुस्वादु भोजन मिल जाय तो 10 फुलके ज्यादा खाते हैं इन्द्रियों की तृप्ति द्वारा मन को और ज्यादा बेहोश करते हैं। एक बार आनन्दघनजी महाराज विराज रहे थे। बुखार हो रहा था बुखार में पीड़ित थे चद्दर भी इतनी गर्म हो गई थी कि वह भी फुदकने लग गई थी। उसको नीचे रखा। आनन्दघन जी ने विचार किया- इतना तेज बुखार हो रहा है शायद अब शरीर का ढांचा लड़खड़ा गया है शरीर का महल ध्वस्त होने ही वाला है। चेतना अब तो मुझे आत्मदशा की साधना करनी है शरीर उड़ने वाला है इस समय मुझे आत्माराधना करनी है। उन्होंने शरीर को सम्बोधित करते हुए कहा - मैंने सारा जीवन किसके लिए खपाया। आप जरा चिन्तन करें- जिनका पल-पल आत्मा के प्रति समर्पित था जिनका हर क्षण शरीर के माध्यम से भीतर की जागति को समर्पित था। उन्होंने कभी शरीर की ओर ध्यान नहीं दिया। न कभी संसार की ओर ध्यान दिया।

उन्होंने अपने जीवन की ओर निगाहें डाली। अपने अतीत की ओर निगाहें डाली। हम अतीत का चिन्तन करते हैं तो क्या सोचते हैं? हर व्यक्ति के जीवन के दो पहलू हैं (1) शुभ (2) अशुभ।

हमने अपने जीवन में कर्म बंधन भी किया होगा तो कभी सामायिक मन्दिर, दानादि के द्वारा कर्मों को काटा भी होगा। अतीत की ओर निगाहें डालें मगर क्या देखें? उन

घटनाओं की ओर निगाहें नहीं डाले, जिन घटनाओं में कर्मों को तोड़ा है, काटा है। हमें उनकी ओर देखना है, जिनमें हमने बेडियों को मजबूत किया है।

मान लें! कोई व्यक्ति लोहे की श्रृंखला में बंधा है। उस समय यदि उसे हथियार मिलता है तो वह चाहता है कि मैं बेड़ियों को तोड़ डालूं। वह बेड़ियों को काटना शुरू कर देता है, और एक-एक करके तोडता जाता है- 5 कड़ियों को तोड देता है आगे और तोड़ता चला जाता है, मगर उसकी निगाहें उन पांच कडियों की ओर नहीं होती जिसको काट डाला है, उसकी निगाहें तो जो कडियाँ कटी नहीं उनकी ओर होती है, जल्दी से जल्दी काट डालूँ, यही उसकी इच्छा रहती है, यही उसकी तमन्ना रहती है।

हम कभी अतीत की ओर विचार करें, चिन्तन करें। हमें उस अतीत की ओर निगाहें डालनी है, उन घटनाओं की ओर निगाहें डालनी हैं जो कर्मबंधन का निमित्त थी।

आनन्दघनजी योगी अपने अतीत की ओर निगाहें डाल रहे हैं और चिन्तन कर रहे हैं कि मैंने इस शरीर के लिए क्या-क्या नहीं किया। उन्होंने शरीर को सम्बोधित करते हुए बहुत अच्छा मधुर पद्य लिखा। "अरी! काया! अब चल संग हमारे" उन्होंने शरीर को सम्बोधित करते हुए कहा - अरी काया! अब तुम्हें मेरे साथ में चलना होगा। मैं अब इस यात्रा को पूरी करके दूसरी यात्रा पर चलने वाला हूँ। लेकिन मैं अकेला नहीं जाऊँगा, मैं तुम्हें साथ लेकर जाऊँगा। शरीर बोला- भाई! ऐसी बात कैसे हो सकती है? आनन्दघन योगी ने कहा- मैंने तुम्हारे लिए कितने जीवों की हिंसा की होगी, कितना दु:ख झेला होगा अठारह पापों का सेवन किया- मैंने इतना पाप किया वह किसके लिए किया। सारा का सारा तुम्हारे लिए किया। तुम्हारे लिए झूठ बोला, तुम्हारे लिए चोरी की। आनन्दघनजी महाराज की बातें हर व्यक्ति के लिए लागू होती हैं। उनका यह पद्य उनके लिए नहीं, समष्टि के लिए है। सभी को इसी प्रकार का चिन्तन करना है। आनन्दघनजी महाराज कहते हैं कि मैंने तुम्हारे लिए बहुत कुछ किया, मगर अब जाने का समय आ गया, अब तो मैं तुम्हें लेकर ही जाऊँगा, अकेला जाने वाला नहीं। शरीर कहता है-यह कोई रीत नहीं कि मैं तुम्हारे साथ रहूँ, तुम्हारे साथ चलूँ। तुमने जो पुण्य और पाप किए, वही तुम्हारे साथ चलेंगे, मैं चलने वाला नहीं।

हम जरा चिन्तन करें कि हम अपना जीवन किसके लिए व्यतीत कर रहे हैं, हम जीवन में किन कार्यों को अधिक महत्व देते हैं? अपने कार्यों से अपनी दिशा का निर्धारण करें, ताकि हमारे कार्य आत्म जागृति के कारण बन जायें। हम सारा समय शरीर को देते हैं मगर आज से कुछ समय आत्मा के लिए भी दें, शरीर के माध्यम से आत्म जागृति को दें। शरीर का पूरा-पूरा उपयोग करें। शरीर के द्वारा भीतर में आत्म जागृति का संदेश गुंजा दें। हमें कैसी क्रियाएँ करनी हैं और हम कैसी क्रियाएँ करते हैं?

हमारी क्रियाएँ बिल्कुल विपरीत होती है। एक बार मि. जटा शंकर को भोजन का निमंत्रण मिला। भोजन का निमंत्रण मिलते ही वह पहुँच गया। वहाँ पर बहुत सारे लड्डू वगैरह थे। पेट भरकर खाये। पेट फुल भर लिया। घर जाने लगा तब परोसकारी करने वाले ने कहा - आप दो लड्डू और खा लीजिए। जटा शंकर ने कहा- - नहीं भाई! अब तो मैं एक भी नहीं खा सकता। सामने वाले ने 5-5 रूपये के नोट निकाले और कहा- यदि एक लड्डू खाएंगे तो पांच का नोट मिलेगा। मि. जटा शंकर ने सोचा रूपये भी मिल रहे हैं लड्डू भी मिल रहे हैं पानी पीने के लिए जगह छोड़ रखी थी सोचा 1-2 तो खा ही लूँ। विचारकर 3-4 लड्डू खा लिये 25-50 के नोट ले लिए। मेजबान ने इस बार 100-100 के नोट निकाले। जटा शंकर से कहा- इस बार एक लड्डू खायेंगे तो 100 रूपये का नोट मिलेगा। जटा शंकर का मन ललचा गया। उसने पेट को इधर-उधर हिलाया- थोड़ी सी जगह की। 1 लड्डू और उतार दिया 100 का नोट जेब में। अब तो एक बूँद पानी पीने की भी जगह नहीं रही। इधर बेटा दौड़ता हुआ आया कहा- पिताजी - आप क्या कर रहे हैं जल्दी से घर चलो। उसने सोचा- कहीं लोभ में आकर के एक दो लड्डू और न खालें। चला तो जा नहीं रहा था जटा शंकर से पुत्र ने टैक्सी में बिठाया और जल्दी से घर ले गया। तुरंत वैद्य को बुलाया। वैद्य से कहा- इन्होंने खूब सारा खाना खा लिया पेट में दर्द हो रहा है अब क्या किया जाय? वैद्य ने कहा- मैं इनके लिए चूर्ण दे देता हूँ, चूर्ण लेने से हाजमा हो जाएगा। दर्द शान्त हो जाएगा। बेटा चूर्ण लेकर तुरन्त पिताजी के पास में पहुँचा और कहा - पिता श्री! आप पहले तुरंत इस चूर्ण को ले लीजिए ताकि हाजमा दुरूस्त हो जाय।

पिताजी ने कहा - तू मूर्ख है यदि चूर्ण लेने जितनी जगह होती तो मैं एक लड्डू और नहीं खा लेता। अब तो चूर्ण फाँकने जितनी भी जगह नहीं है।

व्यक्ति का इस तरह जीवन चलता है। इस तरह की व्यक्ति क्रियाएँ करता है यहाँ तो 5 रूपये की बात थी 100 रूपये की ही बात थी यह तो बडी छोटी बात है लेकिन व्यक्ति जब स्वाद के लोभ में आ जाता है तो ठूँस-ठूँस कर खाता है। एक प्रकार से ऐसी क्रियाओं के द्वारा अपने आपको बेहोश कर देता है अपने आपको इन्द्रियों को मन को बेहोशी में ले जाकर जागति से और ज्यादा दूर चला जाता है। तपश्चर्या का अर्थ है- इन्द्रियों को जो प्रिय विषय हैं उन प्रिय विषयों से इन्द्रियों को दूर रखना।

हम जरा चिन्तन करें कि हमारी तपश्चर्या कैसी होती हैं। आहार का त्याग किए बिना तपश्चर्या संभव नहीं। जब कभी युद्ध होता है तो सेना यदि सामने वाली शत्रु सेना को हराना चाहती है तो वह सबसे पहले उसके पास में रसद पहुँचने के जो साधन है उसको काटती है यही सेना की महत्त्वपूर्ण युद्ध नीति है। इस नीति से ही सेना जीत सकती है। यदि युद्ध में जीतना हो तो सर्व प्रथम रसद पहुँचने के जो साधन है उन्हें तोड़ देना पड़ता है। हम भी इन्द्रियों के साथ में शरीर के साथ में

युद्ध करने के लिए चले हैं, युद्ध में सप्लाई को रोक देना है। इससे इन्द्रियाँ अपने आप वश में हो जाएगी। सर्व प्रथम इन्द्रियों की सप्लाई को खत्म करना है।

आहार का त्याग होगा तो निश्चित रूप से पेट में भूख तो लगेगी ही। एक दिन भी नहीं खाते हैं तो हमारी दशा कैसी हो जाती है। मारवाडी में कहावत है-

"अनीयो नाचे अनीयो कूदे, अनीयो करे मटरका।
अनियो पेट मे नहीं हुवे जद, जीभ करे लपरका।"

तपश्चर्या का महत्वपूर्ण बिन्दु है- आहार का त्याग। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि मात्र आहार का त्याग करने से ही तपश्चर्या हो जाती है। तपश्चर्या का सही अर्थ है- पाँचों इन्द्रियों को नियंत्रण में करना। तपश्चर्या के समय में क्या चिन्तन करें! यही महत्व की बात है- एक व्यक्ति ने उपवास का पच्चक्खाण किया। रोटी पेट में न होने के कारण किसी में मन नहीं लगता। दिन तो काटना ही पडेगा। 24 घंटे तो निकालने ही होंगे। सूर्योदय तक तो कुछ भी खाना नहीं होगा। उसके पश्चात् दुग्धपान होगा। लेकिन इतना समय कैसे कटे? मन नहीं लग रहा। चलो पाँच-छः दोस्तों के साथ बैठकर ताश खेलता हूँ ताकि समय पूरा हो जाये। एक इन्द्रिय पर तो नियंत्रण कर लिया लेकिन शेष इन्द्रियों को खुला छोड दिया- यह तपश्चर्या नहीं है। तपश्चर्या का अर्थ है- पाँचों इन्द्रियों पर, मन की इच्छा पर सम्पूर्ण रूपेण नियंत्रण करना।

एक व्यक्ति ने विचार किया - आज उपवास है, खाना पीना तो है नहीं, मन नहीं लग रहा है, चलो 3 घंटे निकल जाएंगे, पिक्चर हॉल में ही बैठ जाते हैं। एक इन्द्रिय पर तो नियंत्रण कर लिया लेकिन चक्षुरिन्द्रिय पर नियंत्रण न हुआ।

एक व्यक्ति ने विचार किया - उपवास है, मन नहीं लग रहा है, चलो थोडी देर क्रिकेट की कॉमेन्ट्री सुन लेते हैं। मन लग जाएगा। उपवास कर रहे हैं, साथ-2 दुकान पर बैठकर के दस के बीस कर रहे हैं। उपवास कर रहे हैं, फिर भी बहीखाता लेकर उगाई के लिए घूम रहे हैं, तपश्चर्या का अर्थ यह नहीं। तपश्चर्या एक साधन है- इस साधन का पूरा-पूरा उपयोग करना है, तभी वह तपश्चर्या भीतर की जागृति में निमित्त बनेगी, सहायक बनेगी। तपश्चर्या के माध्यम से एक तरह से हम इन्द्रियों को हंफाने का प्रयत्न करेंगे, एक तरह से इन्द्रियों को हराने का प्रयास करेंगे। उस समय हमारे सम्यक् चिन्तन का प्रहार इतनी तेजी से होगा कि इन्द्रियाँ नियंत्रण में आ जाएगी।

हमारा चिन्तन कैसा हो? यही तो भेद विज्ञान है। तपश्चर्या करेंगे तो निश्चित रूप से भूख लगेगी। पेट माँगेगा। इन्द्रियाँ भोजन माँगेगी लेकिन उस समय हमारा सम्यक् चिन्तन चलेगा कि अरे चेतन! एक घंटा आहार नहीं पहुँचाया तो इतना परेशान हो गया। उस समय हम शरीर को आत्मा से पृथक् करके शरीर के लिए प्रेरणा के सूत्र उच्चारें। उस समय हमारा चिन्तन ऐसा चले कि अरे शरीर! इतनी उम्र में तुझे कितना खिलाया होगा, कितना दूध पिलाया होगा, न मालूम कितनी रोटियाँ खिलाई होगी, न मालूम कितने मिष्ठान्न खिलाये होंगे, फिर भी तुम जब देखो तब मांग करते ही रहते

हो। खाली के खाली रहते हो आज मैं तुमको नहीं खिलाऊँगा। अब तो मैं रसद और मिष्ठान्न अपनी आत्मा तक पहुँचाऊँगा।

ऐसा चिन्तन उस समय जाग्रत हो जाय भेद विज्ञान का चिन्तन उस समय उपस्थित हो जाय। तपश्चर्या के द्वारा ही हमें आत्म जागृति मिलती है कि शरीर अलग है और मैं अलग हूँ। उस समय ऐसा चिन्तन प्रारम्भ हो जाय तो निश्चित रूप से यह तपश्चर्या आत्म जागृति का माध्यम बन जाय। समस्त इन्द्रियों पर नियंत्रण करना है तभी यह तपश्चर्या भीतर में प्रकाश फैला देगी सुगंध लहरा देगी और यही जिन दर्शन की साधना है।

आज इतना ही।

महाराजा मैंने उसे बहुत हिलाया लेकिन उसने तो ऐसा मौन धारण कर लिया कि चलने का नाम नहीं ले। महाराजा आप संवत्सरी का प्रतिक्रमण कराते हैं, 20 लोगस्स का काउसग्ग 40 लोगस्स का काउसग्ग करवाते हैं, लेकिन उसका पारणा भी होता है, मगर घड़ी ने तो ऐसा कायोत्सर्ग ठान लिया "ठाणेणं मोणेणं झाणेणं अप्पाणं वोसिरामि बिल्कुल मौन हो गई। पारने का नाम ही नहीं ले।

घड़ी साज ने कहा-जटा शंकर, यह तो सिर्फ 80/- रूपये की घड़ी है। महाराज-आजकल किसी पर भरोसा करने का जमाना ही नहीं है।

हम जरा चिन्तन करें। जब उसने 4 हजार की घड़ी को 500/- रूपये में खरीदी थी, तब जमाना बड़ा अच्छा था लेकिन जब पता चला कि उसने 80/- रूपये की घड़ी को 500/- में मुझे बेचा। तब जमाना बडा खराब आ गया- हमारी दृष्टि केवल धन पर रहती है। धन के विषय में हमारा चिन्तन किस प्रकार का है। देखें - दो चरित्र हैं एक पूणिया श्रावक का, दूसरा जटाशंकर का।

आचार्य भगवन धर्मबिन्दु में फरमाते हैं- वैभव तो हमारे पास होना चाहिए, मगर कैसा हो- "न्यायोपात्तं" न्याय से उपार्जित वैभव होना चाहिए। वही द्रव्य हमें शान्ति दे सकता है, वही द्रव्य हमें सीढियाँ दे सकता है, वही धन वैभव हमें भीतर में जाने का मार्ग दिखा सकता है, प्रसन्नता के अम्बार खड़े कर सकता है। हो सकता है हमारे पास अपार वैभव नहीं हो, अतुल धन नहीं हो, फिर भी पूणिया जैसी शांति होगी। हो सकता है, हम बड़े अमीर न बन सकें, फिर भी भीतर की शांति को उपलब्ध कर सकते हैं, भीतर के सम्राट् बन सकते हैं।

धर्म बिन्दु ग्रन्थ के इस पहले सूत्र को हमें अपने मस्तिष्क में बिठा लेना है।

आज इतना ही।

इस पेज का मेटर पृष्ठ 38 के बाद का है ।

5 समत्व

अनंत उपकारी जिनेश्वर परमात्मा ने केवल ज्ञान की सम्पदा को उपलब्ध करने के पश्चात् करूणा भाव से भर कर देशना दी। देशना के द्वारा जीव मात्र के प्रति भीतर का वात्सल्य प्रवाहित किया। एक ही उनका लक्ष्य था- किस प्रकार हर व्यक्ति की चेतना निज भावों में बस जाय अन्तर्मुखी बनकर भीतर लहरा रहे सुख में डुबकी लगा दें।

परमात्मा की करूणा परमात्मा का वात्सल्य हर जीव के प्रति था। परमात्मा की करूणा हमारे ऊपर बरसी। यदि हमारा पात्र खुला है यदि हमने उस करूणा को झेलने का पात्र उपलब्ध कर लिया है तो निश्चित रूप से परमात्मा का अमत हमारे भीतर उतर आएगा। परमात्मा का करूणा भाव देखें जिस समय में परमात्मन् साधना में लीन थे कर्मों की श्रृंखलाओं को तोड़ने में तपश्चर्या और ध्यान में तल्लीन थे। उस समय में प्रतिकूल परिस्थितियों में रहकर किस प्रकार समभाव से समदृष्टिकोण से कर्मों की समस्त जंजीरों को काटा था।

संगम देव वहा पर उपस्थित हुआ। अनेक प्रकार के कष्ट देने लगा अनुकूल और प्रतिकूल उपसर्ग किये कितने हथौड़े बरसाये परमात्मा का जीवन चरित्र हम सुनते हैं कल्पसूत्रादि ग्रंथों में। सुनते समय हम एकाग्र होकर सुनें तो सुनते समय परमात्मा की व्याख्या श्रवण करते समय हमारी आँखें गीली हो जाती है भीतर में आँसुओं का प्रवाह बह जाता है कि किस प्रकार परमात्मा ने उपसर्ग सहन किये होंगे।

उपसर्ग देते देते वह थक गया परेशान हो गया देख लिया संगम देव ने कि मैंने इतने-भयकर कष्टों में डाला उनका ध्यान विचलित नहीं हुआ उनके भीतर में कषाय नहीं आया संगम देव हार गया परेशान हो गया त्रस्त हो गया तब अपनी आँखों को ऊपर उठाकर देखा इसका वर्णन हेमचन्द्राचार्य करते हैं।

संगम देव ने जब उपसर्ग देकर अपनी आँखें ऊपर उठाई तब भगवान की आँखें छलछला रही थी। देखा-परमात्मा की आँखें गीली हो चुकी थी। वह विचार में पड़ गया कि मैंने इतने कष्ट दिये तब आखों में एक बूंद भी नहीं थी हैरान होकर के परेशान होकर के जब मैंने उपसर्ग करना बन्द कर दिया तब परमात्मा की आखों में आँसू।

परमात्मा की आँखों में आंसू इसलिए नहीं आये थे कि उनके शरीर को बड़ा कष्ट पहुंचा था। शरीर को बडी पीड़ा हुई थी। इतने उपसर्ग किये इस हेतु उनकी आंखों में आंसू न आये। आँखो में आँसू आए संगमदेव के कारण। संगम देव ने मुझे इतने उपसर्ग दिये, इतने कष्ट दिये, इनका चिन्तन यह नहीं था, चिन्तन तो इस बात का था कि उसने कष्ट देकर के कर्मों का बंधन कर लिया, यह देव इस कर्मबन्धन से कब मुक्त बनेगा? इस देव की आत्मा के ऊपर छाये कर्मों के कारण करूणा के आंसू आये।

हम चिन्तन करें, कोई व्यक्ति दो थप्पड़ मार देता है, दो कटु शब्द कह देता है, कोई व्यक्ति गाली गलोच करता है, थोड़ी पीड़ा पहुंचाता है, हम तुरन्त तिलमिला जाते हैं। भीतर में क्रोध का आवेग उमड़ पड़ता है, तुरंत द्वेष की ज्वाला धधकने लगती है। जरा परमात्मा की ओर नजर डाले- परमात्मा की कृपा उस व्यक्ति के लिए, परमात्मा की महर उस व्यक्ति के लिए, अमृत की वर्षा उस व्यक्ति के लिए जिसने उन्हें मारा-पीटा, अनेक अनेक कष्ट दिये, अति कठोर उपसर्ग किये। कोई सामान्य व्यक्ति हो तो उन उपसर्गों को झेल न सकें, वहीं पर मर जाय। न उसका शरीर झेल सकें, न मन झेल सकें, न उस समय भाव स्थिर रख सकें।

लेकिन परमात्मा की करूणा देखें, वात्सल्य देखें, उनकी सबसे बड़ी विशेषता थी कि कोई व्यक्ति उनके शरीर को पीड़ा पहुंचाता है, कोई सेवा करता है, पर सबके लिए अमृत का झरणा एक-सा बहता था। परमात्मा का वात्सल्य परिस्थितियों को देखकर बदलता नहीं था। परमात्मा का वात्सल्य बिल्कुल निरपेक्ष था, सापेक्ष नहीं। हमारा प्रेम सापेक्ष होता है, हमारा बर्ताव सापेक्ष होता है, हमारी शत्रुता सापेक्ष होती है, सारे भाव सापेक्ष होते हैं।

यदि हम किसी से शत्रुता रखते हैं तो यह निश्चय करके शत्रुता करते हैं कि उसका बर्ताव कैसा हैं? कोई व्यक्ति हमारा मान करें उसके प्रति प्रेम उमड़ता है, कोई अपमान करें उसके प्रति क्रोध की ज्वाला धधकती है। सापेक्ष हमारी क्रियाएँ हैं, सापेक्ष हमारे भाव हैं। परिस्थितियाँ देखकर हमारे भाव बदल जाते हैं।

लेकिन परमात्मा की साधना ऐसी नहीं थी। वे हर परिस्थिति में समत्व की साधना करते थे। यही समत्व की कसौटी है। परमात्मा के इसी भाव को हमें अपने भीतर में उतारना है, भीतर में झेल लेना है। यह करूणा भाव यदि हमारे साथ में रहे तो भीतर का सारा वज्र-सा भारीपन हल्का हो जायेगा - कल्याण मन्दिर स्तोत्र में भगवान् की स्तुति करते हुए सिद्ध सेन दिवाकर ने बडी सुन्दर बात कही। स्वयं ने प्रश्न उठाया, स्वयं ने ही उत्तर दिया- स्वयं ने ही शंका उठाई और स्वयं ने ही समाधान दिया।

"त्वं तारको जिन! कथं? भविनां त एव,
त्वामुद्वहंति हृदयेन यदुत्तरंत.।
यद्वा दृतिस्तरति यज्जलमेषनून-
- मंतर्गतस्य मरूत· स किलानुभाव.।।"

(कल्याण मंदिर स्तोत्र - १०)

वे कह रहे हैं- भगवन्! आप तारक कहलाते हैं तारने वाले कहलाते हैं लेकिन मुझे यह बात समझ में नहीं आती। यदि आप सभी को तारने वाले हैं तो क्यों नहीं आप समस्त आत्माओं को तार देते हैं क्यों नहीं आपने सारी आत्माओं को तार दिया। इससे सिद्ध हो गया कि आपमें तारने की कोई शक्ति नहीं कोई सामर्थ्य नहीं।

स्वयं ने ही प्रश्न उठाया - आप तारक कहलाते हैं फिर क्यों नहीं सभी को मोक्ष का वासी बना दिया क्यों नहीं मुझ पामर जैसे को तार दिया? लेकिन स्वयं ही दूसरी ओर समाधान करते हैं- जैसे कोई मशक हो वह नदी में जल प्रवाह पर तैरता हो। वह तैरने का अधिकारी इसलिये बना है कि उसमें हवा भरी हुई है हवा के सहारे ही वह तैरता है।

भगवन्! आपकी वाणी आपका दर्शन आपकी भक्ति उसी हवा की तरह है। यदि हमारे भीतर भक्ति की हवा भरी हुई हो तो हम तैर सकते हैं। हम भी मशक हैं डूबने वाले हैं कर्मों का भार इतना छाया हुआ है कि यदि आपकी वाणी रूपी हवा हमारे भीतर न हो तो पल भर में डूब जाय।

उस करूणा को हमें झेलना है तभी हम स्वयं की चेतना को प्राप्त कर सकते हैं तैर सकते हैं।

जीवन धारा का जीवन प्रवाह का एक मात्र लक्ष्य है हम उस करूणा को कैसे उपलब्ध करें। मैं बार-बार कहता हूँ- जब भी आप उठें अपने मस्तिष्क में यह हमेशा प्रतिपल चिन्तन करें। अरे चेतन! तुम्हारा लक्ष्य क्या है? और तुम क्या कर रहे हो? तुम्हें किस दशा को उपलब्ध करना है?

इस हथोड़े की चोट इस वाणी की चोट यदि प्रतिपल मस्तिष्क पर पड रही है तो हम क्रियाओं में सावधान बन सकेंगे। निश्चित रूप से हमारे भीतर में निज भाव प्राप्ति की आकांक्षा का उद्‌भव हो सकेगा।

एक व्यक्ति मान लो। यहा से जा रहा है मेन रोड से नहीं जाकर अन्य रास्ते से जा रहा है सामने मकान दिख रहा हो उस व्यक्ति को उस महल तक पहुँचना है चलते चलते जहाँ रोड़ नहीं राज मार्ग नहीं उबड़ खाबड़ रास्ते से जा रहा है किन्तु महल सामने दिख रहा है जो उसका लक्ष्य है जहा उसे पहुँचना है सामने जिस दिशा में जाना है तब वह उस दिशा की ओर चलने के लिए नीचे भी देखता है। सामने जाने के लिए वह झाड़ियों से बचता है और झाड़ियों से बचने के लिए वह बायी ओर भी चलता है दायी ओर भी चलता है। लेकिन चाहे वह दायी ओर जाये या बायी ओर, उसके मस्तिष्क में तो एक ही बात रहती है कि मैं कहीं रास्ता न भूल जाऊँ। कहीं अन्य दिशा में न भटक जाऊँ।

वह रास्ता भी देखता है बाधाओं को भी पार करता है बाधाओं को भी झेलता है लेकिन लक्ष्य एक ही रहता है कि मुझे सामने जाना है। हमें अपने जीवन का निर्माण इसी तरह से करना है। मूल लक्ष्य को हमेशा सामने रखना है। भाग कर पहुँच नहीं

सकते, न मालूम बीच मे कितने कॉंटे कंकर हैं, न मालूम कितने नदी-नाले हैं, न मालूम कितने पत्थर हैं, उनसे अपने आपको बचाकर चलना है। चाहे हमें बांयी ओर भी चलना पडे, चाहे दांयी ओर भी चलना पडे, चाहे पीछे भी हटना पड़े, कोई चिन्ता नहीं लेकिन लक्ष्य को निर्धारित करना ही होगा, तभी हम अपने इष्ट स्थान पर पहुँच सकते हैं।

हमारी दशा बिल्कुल ऐसी है, ज्यो ही हम कांटे-कंकर देखते हैं, दिशा भूल जाते हैं, वापस लौट जाते हैं, गलत दिशा में मुड़ जाते हैं, पुन: नहीं देखते कि मैं किस दिशा मे आ गया। लक्ष्य का निर्धारण करना है अपने जीवन में। जो भी कंकर पत्थर आये कषायों के, लालसा - वासनाओं के, संसार के, उनसे हमें बचना है। थोड़ा-सा साईड से भी होकर हमे अपने लक्ष्य तक पहुँचना है।

यही जीवन जीने का सही मार्ग है, राज मार्ग है, सही कला है।

यहां पर आचार्य भगवन्त कहते हैं - सांसारिक जीवन में नाना तरह के पहाड़ आडे आते हैं, खाईयां आती हैं, व्यक्ति उन खाईयों को पार करके---- उन खाईयों पर भी पुल का निर्माण करके, पत्थरों पर भी सड़क का निर्माण करके, किस तरह अपने आपको प्राप्त कर सकें, इसी हेतु से इस ग्रन्थ में एक-एक सूत्र देते हैं, जीवन जीने की सही दिशा का उद्‌बोधन देते है यदि ये सूत्र हमारे जीवन में, भीतर में, उतर जाय तो जीवन जीने की कला आ जाय।

यहाँ पर श्रावक के पहले गुण की बात करते हैं। यदि एक गुण भी भीतर में उपलब्ध हो जाय तो सभी सूत्र समझ में आ जाय। आचार्य भगवन्त कहते हैं कि "न्याय्योपात्तं हि वित्तं"

प्रथम गुण को हमें पकड़ लेना है। धन के विषय मे आचार्य भगवन्त बात कर रहे हैं कि धन कैसा हो? धन एक तरह से संसार का नदी नाला है, धन एक तरह से संसार की खाई है। यदि एक बार व्यक्ति का उस खाई में प्रवेश हो जाय तो बचना बडा मुश्किल है। ऐसे खाई के ऊपर हम किस तरह के पुल का निर्माण करें, जिससे ऐसी खाई को भी पार कर सकें।

आचार्य भगवन्त विशेषण फरमाते हैं - जो पुल का काम करता है, उस पुल के सहारे सहारे पार उतर सकते हैं। यहाँ पर आचार्य श्री कहते हैं कि न्याय से उपार्जित वैभव होना चाहिए। आचार्य भगवन्त यह नहीं कहते कि तुम जरा सा भी धन मत रखो। आपके पास वैभव को देखकर आचार्य भगवन्त जरा भी नाराज नहीं होते, उस सम्पदा को देखकर आचार्य भगवन्त के हृदय में ईर्ष्या की अग्नि नहीं पैदा होती। लेकिन आचार्य भगवन्त तो यह चाहते हैं कि न्याय से उपार्जित धन हो।

अनेक प्रकार की परिस्थितियो मे उलझा यह सांसारिक जीवन है। आपको अपने कर्तव्यों का निर्वाह करना पड़ता है। धन के लिए कई उपाय करने पडते हैं। आचार्य श्री उसके ऊपर ही नजर डालते हैं। धन तो प्राप्त करें पर धन प्राप्त करने के

साधन कैसे हो। एक उक्ति है 'जैसा होवे धन वैसा होवे अन्न" 'जैसा होवे अन्न वैसा होवे मन' बड़ी महत्वपूर्ण बात है।

जिस प्रकार का हमारा धन होगा उसी प्रकार का हमारा अन्न होगा। जिस प्रकार का हमारा अन्न होगा उसी प्रकार का हमारा मन होगा। पूणिया श्रावक की आप बात सुनते हैं।

एक बार पूणिया श्रावक सामायिक लेकर बैठे लेकिन मन सामायिक में नहीं लगा। प्रतिदिन सामायिक लेकर बैठते और अपने मन को स्वाध्याय- चिंतन में लगा देते सामयिक लेकर बैठते और अपने मन का कनेक्शन आत्मा के साथ जोड़ देते। लेकिन उस दिन ऐसा हुआ कि सामायिक में मन बिल्कुल नहीं लगा।

मन में नाना प्रकार के विचारों की आंधी आने लगी, मन में अनेक प्रकार के तूफान उठने लगे। पूणिया ने सोचा- सामयिक में मन नहीं लगने का कारण क्या है? परम प्रामाणिक उसका जीवन था। परम सात्विक उसका जीवन था। पत्नी को बुलाकर पूछा सब कुछ व्यवस्थित है या नहीं? प्रभु भक्ति में मन नहीं लग रहा था परमात्मा की पूजा में मन नहीं लग रहा था। पत्नी को बुलाकर पूछा कि कल सारे दिन तुमने कौन कौन सी क्रियाऐं की? सारी क्रियाऐं बताओ। तुम्हारी क्रियाओं में तो अन्याय का प्रवेश नहीं हो गया। ऐसा लगता है कि तुम्हारी क्रियाओं में ही कुछ भूल हुई इसी कारण मेरा मन सामायिक में नहीं लग रहा।

पत्नी ने सारी बात बतानी प्रारम्भ की। उसमें से एक बात पूणिया ने पकड़ ली। वह बात थी - पत्नी ने कहा- कल रसोई करने के लिए ईंधन नहीं था। बाहर ऐसे ही 5-6 छाणे (गोबर के) पड़े हुए थे सोचा आप पधारेंगे उसके बाद मैं कब लाऊंगी? इसलिए बिना पैसे दिए ही छाने उठा लाई। सोचा- कल इसके पैसे चुका दूंगी। छाणे लेकर आई और उसी से अन्न पकाया।

पूणिया ने कहा-बस यही कारण है कि मेरा मन आज सामायिक में नहीं लग रहा है यही कारण है कि मेरा मन आज व्यवस्थित हो नहीं पाया। अन्याय का ईंधन मेरे घर में आ गया अन्याय की रोटी मेरे घर में पकी और वह रोटी मेरे पेट में गई।

ध्यान रहे आप भोजन करते हैं तब सिर्फ भोजन नहीं करते। भोजन के साथ-साथ परमाणुओं का प्रवेश भी होता है और उनका पूरा-पूरा असर हमारे मन पर पड़ता है। पूणिया को तो समझ में आ गया कि मेरे घर अन्याय का ईंधन आ गया। पत्नी के मन में यही था कि कल वापस लौटा देंगे। फिर भी अनीति का तो आ ही गया

जरा पूणिया श्रावक की बात को देखें जरा उनके चिन्तन को देखें कि कितना प्रामाणिक उनका जीवन था जो इस छोटी सी बात पर भी इतना चिन्तन करता था तो उनके जीवन की क्रियाऐं किस प्रकार की होगी उनका जीवन कैसा होगा?

हम छोटी छोटी बातों पर ध्यान नहीं देते यहा पर आचार्य श्री यही बात कहते हैं कि धन जरूरी है धन के बिना जीवन का निर्वाह नहीं हो सकता। धन से ही

संसार का पारम्भ होता है। जब जड में ही खराबी है तो फल में तो खराबी होगी ही। मूल में ही खराबी होगी तो फिर जीवन के लक्ष्य की ओर गतिशीलता कैसे होगी?

हम मूल की ओर जरा भी नहीं देखत, इसी कारण हमारी शिकायत यही रहती है कि महाराज हम मन्दिर में जाते हैं लेकिन मन नहीं लगता, माला फेरने बैठते हैं मगर दिमाग में कई तरह के झंझावात उठते हैं, कई तरह के विचार आते हैं। किसी भी धार्मिक कार्य में मन नहीं लगता। उसका मूल कारण यही है, हमने उस ओर ध्यान नहीं दिया। उस बात को दिल में प्रतिष्ठित नहीं किया।

आचार्य भगवन् यहाँ पहले सूत्र में व्यक्ति को सावधान करते हुए कहते हैं कि यदि आपका वित्त न्याय से उपार्जित है तो निश्चित रूप से वह वित्त भी धर्म का कारण बनेगा, वह वित्त भी दिल में हर्ष के फव्वारे छोड़ेगा, वह वित्त भी अच्छे कार्यों की सम्पन्नता में मित्र बनेगा।

एक बार मि. जटा शंकर बम्बई में चौपाटी पर घूम रहा था। मुनिराज उधर से चले जा रहे थे। मुनि महाराज ने सामने जटाशंकर को देख लिया। मि. जटाशंकर बडा प्रसिद्ध धार्मिक व्यक्ति था। वह जल्दी जल्दी चला जा रहा था, वह चलते हुए भी दौडा जा रहा था। मि. जटाशंकर ने मुनि महाराज को देख लिया था। मन में अति प्रसन्नता थी। जटा शंकर ने सोचा- महाराज परिचित हैं, यदि बाजू से निकल भी जाऊंगा तो भी मुझे बुला लेंगे। मुझे अवश्यमेव जाना पडेगा। हाथ भी जोडने पड़ेंगे, चरण भी छूने होंगे। एक-दो मिनट खराब होंगे, लेकिन क्या करूँ?

व्यक्ति के भीतर में जब प्रसन्नता का ज्वार उठता है या रूदन का अम्बार लगता है, उस समय में व्यक्ति अपने आपे में नहीं रह सकता, उस समय में व्यक्ति अपने मन को स्थिर नहीं रख सकता। या तो व्यक्ति ज्यादा सुखी हो जाय या अति उद्विग्न हो जाय तो उस समय न तो बोलने में मन लगे, न कोई काम करने में मन लगे।

जटाशंकर इतना खुश था कि जल्दी से जल्दी घर जाना चाहता था। महाराज ने पूछा- आज इतनी प्रसन्नता कैसे? बताओ, आज तुम इतने खुश क्यों हो रहे हो? जटा शंकर ने कहा - क्या बताऊँ महाराज? ऐसा दिन रोज आये। न मालूम आज मैंने सुबह ही सुबह किस महानुभाव के दर्शन किये, किस भाग्यशाली के दर्शन किये, आज मुझे काफी लाभ हुआ है।

महाराज समझ गये- जटा शंकर के राज को। जानते थे कि जटा शंकर धन के कारण ही खुश होता है और धन के कारण ही दुखी होता है। इसकी खुशियों का कारण भी धन है और इसकी उदासीनता का कारण भी धन है। उसने धन को ही सबसे अधिक महत्त्व दिया है।

जरा हम स्वयं की ओर निगाहें डालें कि कहीं हमने अपनी खुशियों का कारण और अपने दर्द का कारण धन को तो नहीं बनाया है। यदि अपनी प्रसन्नता का कारण अपनी आत्मा को बनायें तो निश्चित रूप से हमारे भीतर में परिवर्तन आ जाय, आत्मा की स्थिति को दर्द से देखें। कर्मों से आच्छादित आत्मा की स्थिति को दर्द से देखें।

और इस आत्मा को कितनी पुण्यवानी से प्रभु वाणी सुनने का व उसके अनुसार जीवन में आचरण करने का चिन्तन करने का अवसर मिला इस कारण खुशियों का अम्बार लग जाना चाहिए।

चाहें हम खुशियों के कारण प्रसन्न हो जाय या दर्द के कारण पीडित हो जाय मगर दोनों का कारण आत्मा होना चाहिए। हमारे हर्ष और शोक का कारण आत्मा नहीं। हमारे हर्ष और शोक का काएण संसार है धन है बाह्य वैभव है। अभी तक हमारा दृष्टिकोण नहीं बदला। अभी तक हमारा दृष्टिकोण संसार से जुड़ा हुआ है इसी कारण परिस्थितिया बदलने पर हम कभी हर्षान्वित होते हैं और कभी मन में रोते रहते हैं।

जटा शंकर की खुशियों का कारण भी धन था। वह परम आनन्दित था। महाराज ने कहा - मुझे बताना ही पड़ेगा कि आज तुम इतने खुश क्यों हो? जटा शंकर ने बात बतानी प्रारम्भ की। कहा - आज सुबह मैं 8 बजे चौपाटी पर घूम रहा था एक व्यक्ति मेरे पास आया। उसका चेहरा दर्द से पीडित था रो रहा था। वह मेरे चरणों में गिर पड़ा और कहा - मुझ पर दया करो। मैंने कहा - भाई मैं तो तुम्हें जानता नहीं दुनिया में बहुत से लोग दुखी हैं मैं किस किस की पीड़ा दूर करूं? यदि मैं इसी तरह से परेशानिया दूर करता रहूँगा तो एक दिन मैं स्वयं परेशान हो जाऊंगा। इस प्रकार फटकार कर मैं आगे चल पड़ा–किन्तु वह युवक फिर मेरे सामने आया चरणों में गिरा और कहा- बस! मुझे पांच सौ रूपये चाहिए। मेरी माता बहुत बीमार हो रही है। यदि 500/- रूपये दो तो बड़ी मेहरबानी होगी - मैंने कहा-भाई मेरे पास एक रूपया भी नहीं मैं तो स्वयं सुबह से घूमने के लिए निकला हुआ हूँ। मैं फिर आगे चल पड़ा।

वह युवक फिर मेरे सामने आया और कहा-भाई! मैं कोई भिखारी नहीं जो मुफ्त में 500/- रूपये ले लूंगा। आज मेरी ऐसी परिस्थिति हो गई कि मेरे पास एक रूपया भी नहीं बचा। दो महिने पहले ही चार हजार में मैंने राडो घड़ी खरीदी थी। वह "राडो" घड़ी तुम ले लो और मुझे 500/- रूपये दे दो। जटाशंकर सुनकर प्रसन्न हो गया। राडो घड़ी के विषय में तो उसने सुन ही रखा था क्योंकि राडो घड़ी जिसके पास होती है वह करोड़पति माना जाता है।

करोड़पति की तीन निशानियां होती हैं- एक हाथ में राडो घड़ी दूसरी क्रॉस पेन तीसरी हीरे की अंगूठी। वह व्यक्ति निश्चित रूप से करोड़पति होता है। जैसे ही जटा शंकर ने सुना कि 4 हजार की घड़ी है और यह 500/- रूपये में बेच रहा है। मुझे साढ़े तीन हजार का मुनाफा मिल रहा है तो इसे खरीद ही लेना चाहिए। अब जटा शंकर कहने लगा कि भाई! तुम्हारी माँ बीमार है इसलिए मुझे तुम्हारे ऊपर करूणा आ रही है दया आ रही तुम राडो घड़ी तो दे ही रहे हो। मुझे राडो से कुछ भी मतलब नहीं लेकिन तुम्हारी माँ पर मुझे करूणा आ रही है। सोचें-- पहले तो उसे करूणा नहीं आ रही थी दया नहीं आ रही थी- किन्तु 'राडो' का नाम सुनते ही करूणा और दया सब आ गई रूपये तो पास में थे ही। पहले पास में नहीं थे जब उसने माँ के बारे में सुना था। किन्तु "राडो" का नाम सुनते ही पास

मे हो गये। 500/- रूपये दिये "राडो" घड़ी ली और मैं अब घर जा रहा हूं बस। यही मेरी प्रसन्नता का कारण है। 4 हजार की घड़ी को आज मैंने 500/- रूपये में खरीद लिया। बताइये आज मेरी प्रसन्नता का कितना शानदार दिन है। ऐसा व्यक्ति रोज मिल जाय।

एक तरफ पूणिया श्रावक को देखें, उसका चिन्तन देखें और एक तरफ जटा शंकर का चिन्तन देखें। इस प्रकार दोनों के चिन्तन के परिप्रेक्ष्य में हम अपने चिन्तन को देखे कि हमारा चिन्तन पूणिया जैसा है या जटा शंकर जैसा।

हम बाजार में रहते है, संसार में रहते हैं, किन्तु हमारा चिन्तन किस तरह का होता है। जटा शंकर कहता जा रहा था, फुदकता फुदकता चला जा रहा था। मन प्रसन्नता से भरा हुआ था। म्हाराज ने सोचा-पता नहीं इसकी प्रसन्नता कितने दिन ठहरेगी।

हुआ कुछ ऐसा ही कि 4 रोज के बाद महाराज उधर से जा रहे थे। मि- जटा शंकर भी सामने से निकल रहा था किन्तु चेहरा लग रहा था, जूतों से पीटा हुआ जैसा, वर्षो से बीमार। एक पैर उत्तर दिशा की ओर जा रहा, दूसरा पैर पश्चिम दिशा की ओर जा रहा, चेहरा बिल्कुल निस्तेज था।

महाराज ने देखा कि 4 रोज में ही जटा शंकर की खुशियाँ कहाँ गायब हो गई? महाराज ने पूछा-भाई! तुम्हारा यह हाल कैसे हो गया। जटाशंकर खून के आँसू रो रहा था। जटा शंकर ने कहा - महाराज, जमाना बिल्कुल बदल गया, किसी पर भी भरोसा करने का जमाना नहीं रहा। महाराज ऐसा घोर कलियुग मैंने कभी नहीं देखा, कैसा जमाना आ गया? महाराज ने कहा- भाई! तीन दिन में जमाना इतना ज्यादा कैसे बदल गया। तीन दिन पहले तो यह जमाना सतयुग था और तीन दिन बाद कलयुग कैसे हो गया। तीन दिन पहले हँस रहे थे, फुदक रहे थे। सूर्य वैसा का वैसा, दिन वैसा का वैसा, जमाना वैसा का वैसा, सभी आदमी वैसे के वैसे, फिर तीन दिन में सतयुग से कलियुग में तुम्हारा प्रवेश कैसे हो गया।

जटा शंकर ने कहा - महाराज मैं आपको क्या बताऊँ? ऐसा धोखेबाज आदमी कहीं नहीं देखा, आपको पता ही है कि मैं उस दिन राडो घडी लेकर गया। उस दिन मैंने कुछ भी काम नहीं किया। सिर्फ बाजार में घूमता रहा, लोगों को राडो घड़ी बताता रहा, अहंकार का पोषण करता रहा कि मुझे अनुपम सम्पदा मिल गई। किन्तु बात ऐसी हुई कि कल शाम को मैं राडो घड़ी पहनकर बाहर जा रहा था, उस समय 5.30 बजे थे और मेरी घडी में 9 बजे हुए थे। देखकर आश्चर्य में पड गया। घडी को खूब हिलाया। मगर घड़ी का कांटा बिल्कुल चुप पडा था। तुरन्त मैं घड़ी को लेकर घडीसाज के पास गया, दुकान में गया, जाकर के कहा कि यह कीमती घड़ी है राडो घडी। जल्दी से ठीक कर दो। दुकानदार ने घडी के सारे पुर्जे खोले और कहा- इसे अभी ले जाकर ट्रेन के नीचे रख दो, यह ठीक होने वाली नहीं। सिर्फ इसमें डायल राडो का है सारे पुर्जे नकली और सस्ते हैं।

इसके बाद का मेटर पृष्ठ 30 पर

6 पुरूषार्थ

अनंत उपकारी जिनेश्वर परमात्मा ने केवल ज्ञान की अनन्त सम्पदा को उपलब्ध करने के पश्चात् भीतर की करूणा को समस्त जनता के लिए प्रवाहित किया। हर आत्मा की प्यास बुझाने की उन्होंने व्यवस्था की जो प्यासा है उसे अपनी प्यास का अनुभव जो भूखा है उसे अपनी भूख का अनुभव जो पीड़ित हैं वह अपनी पीडा की छटपटाहट का अनुभव करता है वही व्यक्ति अपनी भूख मिटा सकता है अपनी प्यास बुझा सकता है अपनी पीडा मिटा सकता है।

भूख का होना प्यास का होना दर्द का होना पीडा होना यह पहली सीढ़ी है। दूसरी सीढ़ी है - उन चीजों का अनुभव। व्यक्ति प्यासा हैं लेकिन प्यास बुझाने की कोई तमन्ना नहीं उसकी प्यास नहीं बुझ सकती। व्यक्ति भूखा है लेकिन भूख मिटाने की कोई इच्छा नहीं वह अपनी बुभुक्षा को नहीं मिटा सकता। व्यक्ति दर्द के मारे बैचेन हैं लेकिन उस दर्द से पीछा छुड़ाने की भीतर में कोई आकांक्षा नहीं वह व्यक्ति कभी भी स्वस्थता का अनुभव नहीं कर सकता। प्यास हो और प्यास बुझाने की तीव्र उत्कण्ठा हो वही अपनी प्यास बुझा सकता है। परमात्मा की वाणी का गंगा प्रवाह बह रहा है हर व्यक्ति के लिए। जो प्यासा है और प्यास बुझाने की इच्छा रखता है निश्चित रूप से उसके कदम अपनी दिशा की ओर बढ जायेंगे। निज दिशा की ओर उन्मुख होकर के परमात्मा के वचनों को अपने भीतर में उतारकर भीतर की प्यास को बुझा सकेगा।

हम सभी प्यासे हैं भूखे हैं कर्मों के दर्द से पीड़ित हैं बेचैन हैं। यदि हमारे भीतर इच्छा का जागरण हो गया आकांक्षा का उद्भव हो गया तो निश्चित रूप से हमारे भीतर की प्यास उस दिशा की ओर ले जाएगी अपने आप हमारे कदम उस दिशा की ओर बढ़ जायेंगे।

एक व्यक्ति को किसी शहर की ओर जाना हो अपने गन्तव्य स्थल पर जाना हो व्यक्ति चला जा रहा है और एक चौराहा बीच में आ गया। जिस रास्ते पर चला जा रहा था अब उस रास्ते के चार टुकडे हो गये। एक रास्ता बिल्कुल सामने की ओर जा रहा एक दायीं ओर, एक बायीं ओर, एक पीछे की ओर। जिस रास्ते पर बढ

रहा था, उसके तीन टुकड़े और ज्यादा हो गये, विभक्त हो गया रास्ता। चौराहे पर खड़ा व्यक्ति विचार करता है, मैं कौन सी सड़क पकड़ूं जिस शहर की ओर मुझे जाना है, उस दिशा की ओर कौन सी रोड़ जाती है?

यदि वहाँ पर कोई माइलस्टोन लगा हुआ हो, कोई साईनबोर्ड लगा हुआ हो, कोई सूचनापट्ट लगा हुआ हो तो व्यक्ति उसके सहारे-सहारे जिस दिशा की ओर जाना है, जिस गाँव की ओर जाना है, उस दिशा और शहर की ओर गति बढ़ा देगा। यदि वहाँ पर कोई साईनबोर्ड न हो, माइलस्टोन न हो, सूचना पट्ट न हो तो व्यक्ति भटक सकता है। व्यक्ति चौराहे पर खड़ा अपने लक्ष्य को विस्मृत कर सकता है, भूल सकता है। मैं किधर जाऊँ? किधर न जाऊँ, 'किं कर्त्तव्यविमूढ़' सी स्थिति हो जाती है। असमंजस में पड़ा व्यक्ति वहीं पर खड़ा रह जाता है।

हमारी स्थिति भी वैसी ही है, एक चौराहे पर खड़े हैं। जिधर जाना चाहें, जिस दिशा की ओर जाना चाहें, उधर जा सकते हैं। किन्तु हमारी मंजिल तो उन तीनों रास्तों में से एक रास्ते पर जाने से ही उपलब्ध हो सकती है तो ऐसे समय में परमात्मा के प्रवचन दिशानिर्देशन देते हैं, मार्ग बताते हैं। परमात्मा के प्रवचन साईनबोर्ड का काम करते हैं, परमात्मा के वचन सूचनापट्ट का काम करते हैं। परमात्मा की सूचना के अनुसार, उनके दिशा निर्देशन के अनुसार यदि हमारे कदम बढ़ें तो स्वयं की मंजिल को उपलब्ध कर सकते हैं, भीतर में हमारी गति हो जाती है। परमात्मा के प्रवचन दिशानिर्देशन का काम करते हैं। चौराहे पर खड़े हमारे जैसे व्यक्तियों को परमात्मा का दिशानिर्देशन न मिले तो हम वहीं पर भटक सकते हैं, अटक सकते हैं। हमें ऊचाईयों की ओर बढ़ना है लेकिन दिशा ग्रहण के अभाव में नीचे की खाइयों की ओर उतर जाते हैं, फंस जाते हैं, अन्य दिशा की ओर मुड़ जाते हैं, दल-दल में फंस जाते हैं और अपने आपको पार नहीं लगा पाते।

परमात्मा के वचनों को हमारे भीतर में प्रथम स्थान देना है, दिशानिर्देशन के अनुसार हमारे कदम बढ़ें तो निश्चित रूप से हमारा साक्षात्कार हो सकता है। लेकिन चलना तो हमें ही होगा, परमात्मा के प्रवचन मात्र दिशानिर्देशन का काम कर सकते हैं। परमात्मा के वचन सूचना पट्ट पर अंकित हैं लेकिन पढ़ना तो हमें ही होगा। उस तीर के निशान के अनुसार सड़क का निर्णय स्वयं को ही करना होगा। आगे तो हमें स्वयं को ही बढ़ना है, स्वयं को ही गति करनी है, स्वयं को ही भीतर में उतरना है।

एक कोई गवालिया है, 10-12 वर्ष का लड़का है, 100 गायों को घेर सकता है। गायों को प्यास लगी है, वह गायों को खींचकर के उस स्थान पर पहुँचा सकता है, जहाँ पर पानी की व्यवस्था है। वह बच्चा सौ गायों को इकट्ठा करके उस स्थान पर पहुँचा सकता है, जहाँ वे पानी पी सके। लेकिन पानी तो गायों को ही पीना पड़ेगा। पानी के स्थान पर वह बच्चा ले जा सकता है, पहुँचा सकता है, हाँककर के भी, पीटकर के भी, पुचकार करके भी, संकेत के द्वारा उस स्थान पर ले जा सकता है। लेकिन प्यास बुझाने के लिए पुरूषार्थ तो स्वयं गायों को ही करना होगा। उन गायों को ही पानी को होठों के नीचे उतारना होगा। तभी उनकी प्यास बुझेगी।

जितने भी साधु सन्त हैं परमात्मा के वचनों द्वारा उपदेश देते हैं प्रवचन देते हैं दिशानिर्देशन करते हैं ये सारे उस ग्वालिये की तरह हैं जो आपको हाथ पकड़ कर, खींचकर, कटु और मीठे शब्दों के द्वारा उस पानी तक पहुँचा सकते हैं उस तालाब तक पहुँचा सकते हैं। परमात्मा की वाणी रूप सरिता के पास जाकर पानी तो स्वयं को ही पीना पड़ेगा स्वयं को ही उतारना होगा तभी हमारी प्यास बुझेगी तभी हमारा दर्द मिटेगा और तभी कर्मों के द्वारा जो छायी हुई बैचेनी है वह समाप्त हो सकेगी। यदि हमारी भाषा में उस तरह की आकांक्षा है हमारी भाषा में उस तरह की तितिक्षा है तो निश्चित रूप से हमारा आचरण भी उसी तरह का हो जायेगा। यदि भाषा और आचरण में तालमेल नहीं है सामंजस्य नहीं है — प्यास है और प्यास बुझाने की आकांक्षा नहीं है तो प्यास बुझ नहीं पाएगी। हम प्यासे के प्यासे रह जाएँगे। यदि हमारी भाषा में हमारे शब्दों में हमारे वचन प्रवाह में उस प्रकार का लक्ष्य है पर तदनुरूप हमारा आचरण नहीं है तो वह हमारी भाषा उधार है बासी है। हमारी भाषा कितनी भी पुरानी क्यों न हो यदि उसमें आचरण का सामंजस्य है तो निश्चित रूप से वह भाषा हमारी है अपनी है।

हमारी भाषा ताजगी से युक्त होनी चाहिए उधार नहीं होनी चाहिए। एक बार मि-जटा शंकर अपने मित्र घटाशंकर के पास गया और कहा -मैंने जो पन्द्रह दिन पूर्व तुमको छाता उधार दिया था वह छाता वापस लौटा दो। मुझे अभी उसकी आवश्यकता है। मित्र ने कहा- बरसात के दिन हैं 15 दिन तो उपयोग कर लिया। 5-7 दिन और उपयोग कर लेने दीजिए। 5-7 दिन बाद तुम ले जाना। इतने दिन और तसल्ली रखो। जटा शंकर ने कहा- असल में यह छाता मेरा है नहीं मैं किसी मित्र से उधार लाया था। उसको वापस लौटाना है। घटा शंकर देना नहीं चाहता था। उसने कहा - जिससे तुम छाता उधार लेकर आये थे वो भी तो तुम्हारा मित्र है उसको जरा समझा देना। 5-7 दिन बाद तुझे छाता दे दूंगा।

जटा शंकर ने कहा - असल में मैं जिस मित्र से छाता लाया था उस मित्र ने भी वह छाता और किसी मित्र से उधार लिया था। वह माँग रहा है। मैं मित्र को दूँगा तभी मेरा मित्र अपने मित्र को दे पाएगा।

न मालूम वह छाता कहाँ से चला कहाँ आ गया। ऐसी बातें नहीं जमती।

ध्यान रहे। हमारी हर भाषा उधार मानी जाएगी यदि उस भाषा के पीछे आचरण का कोई तालमेल नहीं है। उधार से कोई काम नहीं चलता। यहाँ तो स्वयं का पुरूषार्थ होना चाहिए। संसार में हो सकता है कि हमारा कर्ज कोई दूसरा चुका दे कोई पूरा कर दे मिटा दे। लेकिन आध्यात्मिक क्षेत्र में उधार की कोई बात नहीं चलती यहाँ तो स्वयं को ही पुरूषार्थ करना होगा। तभी हमारी प्यास बुझेगी। दो चीजें चाहिए - एक प्यास और दूसरा प्यास का अनुभव। भीतर में जानकारी चाहिए कि मैं प्यासा हूँ। कई बार ऐसा होता है कि व्यक्ति इतना बेहोश रहता है व्यक्ति जागृति के अभाव में जो देखता है या जो देखना चाहता है उस समय विपरीत उसकी मान्यता रहती है। यदि हम प्यासे हैं तो प्यास का अनुभव होना चाहिए। यदि कोई व्यक्ति

वेहोशी मे जीता है, वेहोश की मदहोशी मे जीता है तो स्वयं के दर्द को कुछ पल के लिए विस्मृत कर देता है, भीतर की छटपटाहट को भूल जाता है, स्वयं की वैचेनी को विस्मृत कर देता है। हमारे साथ में इसी तरह की वात हुई है। हम प्यासे है लेकिन प्यास का कोई अनुभव नहीं।

ब्रह्ममुहूर्त में उठकर जरा स्वयं की चेतना के वारे में,स्वयं की आत्मा के वारे में चिन्तन करें- चेतना की स्थिति क्या है? कहाँ पर खडे है? किस भूमिका पर टिकी हुई है? हमारी क्रियाएँ कैसी हैं? हमारी प्रक्रियाएँ कैसी हैं? लेकिन हम ब्रह्ममुहूर्त में उठकर यह चिन्तन नहीं करते क्योंकि यह चिन्तन हमें दर्द देता है। हम चिन्तन करेंगे तो निश्चित रूप से हमारी आँखो में से आँसू वहेंगे। हम चिन्तन करेंगे तो हृदय रो पडेगा, हृदय कम्पित हो जाएगा, सारा शरीर हिल जाएगा क्योंकि हम अपनी स्थिति से अनभिज्ञ नहीं हैं। हम जानते हैं - आत्मा की स्थिति क्या है? और हम क्या कर रहे हैं? इस कारण इस चिन्तन से भीतर में दर्द होगा। उनके स्थान पर हम इन बातों को सुनकर, इन चीजों को प्राप्त कर के मन में आनन्द का अनुभव करते हैं, विचार करते है बस! शानदार वंगला वन गया, प्रसन्नता छा गयी। दूसरे दिन 1-2 लाख का सौदा हो गया तो हर्ष से भर उठते हैं।

हम यदि चेतना के विषय में चिन्तन करेंगे तो तुरन्त रो पडेंगे। मगर वाहर की चीजों का चिन्तन करते हैं और एक तरह की यह वेहोशी है। वाहर का चिन्तन हमें वेहोश करता है। भीतर की यथा स्थिति से और ज्यादा दूर ले जाता है। वाहर का चिन्तन भीतर की वास्तविकता से परिचित नहीं होने देता। वडी गम्भीर और रहस्यभरी बात है। सुवह उठकर चिन्तन करेंगे तो पायेंगे कि भीतर का चिन्तन हमें वास्तविकता से परिचित कराता है और वाहर का चिन्तन हमें संसार की ओर धकेलता है, वह भीतर की वास्तविकता से, यथार्थता से मिलने नहीं देता, वीच में एक प्रकार से दीवार खडी कर देता है। सांसारिक स्वार्थों की, सांसारिक साधनों की, सांसारिक सुखों की एक मोटी खाई निर्मित कर देता है। हमें भीतर उतरना है, भीतर जागृति का कोष पाना है, और यह वात तभी हो सकती है, जव हमें अपनी प्यास का अनुभव हो। प्यास का यदि अनुभव हो जाय हमारे भीतर में वैचेनी के भाव आ जाय कि हम प्यासे हैं फिर किसी को कहने की आवश्यकता नहीं, फिर किसी को आवाज देकर वुलाने की आवश्यकता नहीं। यदि हम प्यासे हैं और प्यास का अनुभव है तो हमारे कदम अपने आप प्याऊँ की दिशा की ओर वढ़ जायेंगे, पानी के घड़े की ओर उठ जायेंगे। पानी के घडे को वुलाने की आवश्यकता नहीं रहेगी, पानी का घड़ा आपको आमंत्रण नहीं देगा, स्वयं के कदम पानी के घड़े की ओर चल पड़ेंगे।

हमारी स्थिति तो ऐसी है कि हम प्यासे हैं, दर्द से भरे हैं, बैचेनी से भरे हैं, छटपटाहट से आक्रान्त हैं फिर भी हम इनसे दूर हैं, हम इस तरह के आरोपण करते हैं, क्रियाएँ करते हैं, बाहर की, संसार की। एक तरह का मोटा लेप चढा देते हैं।

भीतर की जो गंदगी है, उसके ऊपर हम अगरबत्ती जला देते हैं। ऊपर की अगरबत्ती को देखकर हम सुगन्ध का अनुभव करते हैं। इस तरह भीतर की गन्दगी का

कोई अनुभव नहीं हो पाता। बाहर में थोड़ा सा इत्र लगा कर महदोशी का अनुभव करते हैं। एक तरह से भीतर की गन्दगी को छुपाने का प्रयत्न करते हैं। यदि भीतर में झाँककर देखें स्वयं की स्थिति का आकलन करें तो निश्चित रूप से भीतर का रोंया-2 कांप उठेगा। भीतर के दर्द से छटपटा जायेंगे कि - चेतना तेरी क्या स्थिति हो गई है? हमें अपने भीतर में इस आकांक्षा का निर्माण करना है। ये सारे के सारे प्रवचन आपको पानी नहीं पिलाते पानी तो आपको ही पीना पड़ेगा।

ध्यान रहे साधु सन्तों के जो प्रवचन हैं प्यास बुझाने का प्रयत्न नहीं करते आपकी प्यास को जगाने का प्रयत्न करते हैं। यदि आपको अपनी प्यास का अनुभव हो जाय क्षुधा का अनुभव हो जाय प्यास यदि तीव्र रूप में उठ जाय तो निश्चित रूप से उसी पल आपके कदम सही-सम्यक गति को थाम लेंगे। 'भीतर में प्यास लगी हो कण्ठ सूख रहा हो दौड़े-2 आ रहे हो प्यास तीव्र हो एक बूंद भी पानी न मिले तो आपको ऐसा लगे कि प्राण निकल जायेंगे। गर्मी का मौसम पानी के लिए आकुल हो और ऐसे समय में आपको कोई रास्ते में व्यापारी मिल जाय। वह कहे कि भैया कहाँ जा रहे हो एक घंटा भर मुझे काम है जरा माल वगैरह दिखादो। व्यक्ति कहता है जरा ठहर जाओ। अभी मुझे पानी के घड़े तक पहुँचने दो प्यास बुझने दो। यदि प्यास तीव्र होगी तो अन्य तरह के आयोजन निष्फल हो जायेंगे अन्य तरह के आयोजन आपके मस्तिष्क तक नहीं पहुँच पायेंगे मन में एक ही गति रहेगी एक ही भावना रहेगी कि जल्दी से जल्दी प्यास को बुझाऊँ।

दोपहर के समय आप कहीं घूमने के लिए चले हो रोड पर जा रहे हो रास्ते में जंगल पड गया हो पास में पानी नहीं हो प्यास आपको आकंठ लगी हो ऐसे समय में आपको यदि कोई व्यक्ति मिल जाय तो बात करने की इच्छा नहीं होती। मालूम भी पड़ जाय कि इससे बात करने पर लाखों का नफा भी हो सकता है फिर भी बात करने की इच्छा नहीं होती बोलने की इच्छा नहीं होती और कोई काम करने की इच्छा नहीं होती। बस मन में एक ही इच्छा रहती है कि प्यास को कैसे बुझाऊँ।

ये सारे के सारे प्रवचन यह परमात्मा की वाणी प्यास को उत्तेजित करते हैं। यदि हमारी प्यास उग्र हो जाय हम खूब प्यासे बन जाय फिर हमें किसी तरह के निर्देशन की आवश्यकता नहीं किसी तरह की सूचना की आवश्यकता नहीं। फिर तो हम स्वयं कदमों को उसी दिशा में बढ़ा देंगे। हम प्यासे हैं पर प्यास के क्षेत्र अन्य बने हुए हैं प्यास के निमित्त अन्य बने हुए हैं। अभी तक हमारी प्यास का कारण धन है अभी तक हमारी प्यास का कारण सत्ता है वैभव है अन्य तरह के सांसारिक सुख हैं। अभी तक हमारी प्यास संसार की दिशा में गति कर रही है इसी कारण प्यास को बुझाने के लिए हम अन्य बातों को विस्मृत कर देते हैं। हमें शरीर और आत्मा को एक तुला पर रखकर तोलना है। स्वाभाविक रूप से हमारी जिस प्रकार की दृष्टि है उस दृष्टि के अनुसार अभी तक हम शरीर के पलड़े को ही भारी पायेंगे क्योंकि अभी तक हमारी प्यास उसी दिशा की ओर है उसी को पाने के लिए हमारा सारा पुरुषार्थ है। किन्तु परमात्मा का उपदेश है - तुम्हारा प्रयत्न जिस प्यास को बुझाने के लिए हो रहा है वह प्यास कभी बुझ नहीं सकती। तुम पानी पियोगे प्यास भड़क

उठेगी। हमारी प्यास तो ऐसी है कि हम जितना बुझाने का प्रयत्न करते हैं, उतनी ही ज्यादा भडक उठती है। संसार की प्यास ऐसी ही प्यास है। इस प्यास को मिटाकर के, भूलाकर के आत्मा की प्यास भीतर में उत्पन्न करनी है।

न मालूम कब हमारी दिशा परिवर्तित हो जाय, कब परमात्मा की वाणी भीतर में चोट कर जाय और हमारी प्यास बुझ जाय।

एक बार एक राजा को बड़ी परेशानी हुई, वह जरा भी आवाज सहन नहीं कर सकता था। जिसे दर्द होता है, उसे संगीत भी बुरा लगता है। जो संगीत निश्चित रूप से मन में आनंद का संचार करता है, यदि व्यक्ति दर्द से छटपटाता है, यदि व्यक्ति पीडित है, यदि रोगी है तो संगीत भी उसके लिए कान फोड़ने का काम करेगा, हृदय तोड़ने का काम करेगा, खुशियाँ समाप्त करने का काम करेगा और भीतर दर्द बढ़ जायेगा। जो संगीत खुशियों का निमित्त है, वह भी कभी कभी शोक का कारण बन जाता है।

राजा को शरीर में बैचेनी का अनुभव हो रहा था। वह अपनी बीमारी से बहुत दुःखी हो गया, किसी कार्य में मन नहीं लग रहा था। उधर उसकी रानियाँ उनके शरीर में ठंडक पहुँचाने के लिए, रोग को शान्त करने के लिए चन्दन घिस रही थी। हाथों में चूड़ियाँ पहनी हुई थी, उसकी आवाज राजा को सुनाई दे रही थी, एक दो मिन्ट तो आवाज सुनी, सहन भी किया लेकिन आखिर आवाज सहन न कर सका। उनके मन में विचार आया कि आवाज दर्द को और ज्यादा बढ़ा रही है। राजा ने सेवकों को आदेश दिया कि आवाज बंद की जाय। रानियों ने सोचा- आवाज कैसे बन्द हो? यदि आवाज नहीं करेंगे तो चन्दन घिसना बन्द हो जाएगा, लेकिन चन्दन घिसना तो जरूरी है। चन्दन के द्वारा ही उनकी बीमारी शान्त होगी। रानियों ने कहा- चूड़ियों के कारण आवाज हो रही है। राजा ने कहा - चूड़ियाँ हाथ से निकाल दी जाय। रानियों ने विचार कर एक-एक चूड़ी सुहाग की हाथ में रखी, शेष सभी उतार दी गई। अब चन्दन घिसने लगी, बिल्कुल आवाज नहीं हो रही थी।

राजा का ध्यान उस दिशा की ओर था। राजा ने पूछवाया कि पहले आवाज हो रही थी, अब क्यों नहीं? समाधान मिला कि अब तो हाथ में मात्र एक-एक चूडी हैं, अत आवाज नहीं हो रही है।

पहले अनेक थी तब आवाज थी। अब एक है इसलिए आवाज नहीं। यह प्रश्न का संक्षिप्त समाधान था। जो सेवकों के द्वारा दिया गया, रानियों के द्वारा दिया गया। यदि ऊपरी अर्थ देखें तो बिल्कुल सामान्य-सा अर्थ निकलता है। एक से ज्यादा थी चूड़ियाँ तब आवाज थी, एक है तब आवाज नहीं। जब ज्यादा होगी तभी टकराहट होगी, टकराहट होगी तभी आवाज होगी। राजा इन शब्दों को भीतर में उतार गया। राजा ने इन शब्दों को कान के माध्यम से झेला और भीतर में डुबकी लगा दी। ये ही शब्द उसके चिन्तन का आधार बन गये, ये ही शब्द उसके जीवन को परिवर्तित करने के निमित्त बन गये। उसने विचार किया- एक है तब आवाज नहीं, एक है तब दर्द नहीं। उसके कानों में जब खनक की आवाज नहीं आई तो दर्द भी उसे नहीं हुआ।

वह विचार करने लगा-पहले अनेक थी तो दर्द था बैचेनी थी तो आवाज थी टकराहट की गूंज थी। और जब एक शेष बची तो कोई आवाज नहीं। चिन्तन भीतर में उतर गया। मैं भी अनेक से घिरा हूँ इसलिए दर्द है छटपटाहट है। मैं संसार से घिरा हूँ, वैमत्त से घिरा हूँ, तेरे मेरे के घेरे से घिरा हूँ इसलिए तो यह सब आवाज है इसलिए तो यह बैचेनी है इसलिए तो यह दर्द है। मैं यदि एक बन जाऊँ एकत्व में मेरा प्रवेश हो जाय तो निश्चित्त रूप से सारा दर्द सारी बैचेनी सारी छटपटाहट पल भर में समाप्त हो जाय। और इन्हीं शब्दों के साथ परिवर्तन का संगीत बज उठा। निकल पड़ा एकत्व की साधना करने के लिए, परमात्मा की शरण में पहुँच गया।

एकत्व की साधना का अर्थ है- स्वयं की आत्मा की साधना करना। उस साधना से विपरीत उपाय जो करता है वह अनेक का उपाय करता है। अनेक के उपायों में अनेक के आयोजन में निश्चित रूप से दर्द है निश्चित रूप से पीड़ा है निश्चित्त रूप से छटपटाहट है। हमें एकत्व की साधना करनी है एकत्व की आराधना करनी है स्वयं की आत्मा की आराधना करनी है। यदि हमारे कदम भीतर की ओर बढ़ गये- हमारी प्यास भीतर में है लेकिन उसका अनुभव नहीं यदि प्यास का अनुभव हो जाय तो हमारे कदम उस दिशा की ओर बढ चलें। हमारी क्रियाओं की उधारी समाप्त हो जाय। हम अपने भीतर में अपनत्व के मालिक बन जाय।

अभी तक हमारा जीवन उधार जीवन है। चेतना को हमें कर्म से मुक्त करना है उसके लिए परम पुरुषार्थ करना पड़ेगा। वहाँ पर उधारी नहीं चलेगी। किसी तरह का बनावटीपन नहीं चलेगा किसी तरह की कृत्रिमता नहीं चलेगी। हमारा सारा जीवन कृत्रिमता से भरा है बनावटीपन से भरा है जब तक हम संसार में रहकर सांसारिक उपायों से जुड़े हुए हैं आत्मा से पृथक है तब तक सारा जीवन एक तरह का कृत्रिम जीवन है एक तरह का बनावटी जीवन है।

हमें स्वयं के लिए जीना है। यह सारा संसार एक तरह की बनावट है और हम स्वयं उसी में कृत्रिमता से जीते हैं। स्वयं को प्राप्त करके इस बनावटीपन को खत्म करना पड़ेगा। प्रबल पुरुषार्थ के द्वारा ही भीतर की जागति को भीतर की आवाज को प्राप्त करना होगा।

हमारी दशा बड़ी विचित्र है। एक बार मि जटा शंकर निरीक्षण करने के लिए स्कूल के भीतर पहुँच गया स्कूल का निरीक्षण करने कि यहाँ की पढ़ाई वगैरह कैसे चलती है। एक कक्षा में पहुँच गया। 8 वीं कक्षा में देखने लगा कि यहाँ कार्यक्रम- अध्ययनादि अच्छे हो रहे हैं या नहीं। मास्टर को जटा शंकर ने पूछा- बताओ जी! आज कितने बच्चे कक्षा में उपस्थित हैं। रजिस्टर खोलकर बताओ। मास्टर ने कहा- आज 35 बच्चे उपस्थित हैं। निरीक्षक ने गिनती लगानी प्रारम्भ की। देखा तो 34 बच्चे उपस्थित थे। जटा शंकर ने कहा- बच्चे तो 34 हैं आपने 35 की कैसे हाजरी लगाई? मास्टर ने देखा- कुछ गड़बड़ हो गई दिखती है। रजिस्टर हाथ में लेकर पुन हाजरी लगाना प्रारम्भ किया। देखा तो पाया कि 5 नम्बर का छात्र गायब था। हाजरी

लगी हुई थी लेकिन छात्र नहीं था। गुस्से में आकर बोला, 5 नम्बर के छात्र की हाजरी लगी हुई है, लेकिन छात्र गायब है, इसका मतलब है कि किसी ने उसके नाम की हाजरी बोल दी है। एक लड़का खड़ा हुआ और बोला- निरीक्षक महोदय, मुझे माफ करें। असल में बात यह थी कि पास में ही क्रिकेट का खेल चल रहा है उसे देखने चला गया। अत मैंने उसके एवज में हाजरी बोल दी। निरीक्षक महोदय को गुस्सा आया - उसने मास्टर के सामने गुस्से से भरी निगाहें डाली- अध्यापक बिचारा घबरा गया। अध्यापक के पसीने 2 छूट गये, हडबडा गया। उसने निरीक्षक जटा शंकर को कहा कि मैं असल में अध्यापक नहीं हूँ, मैं तो उसकी एवज में आया हूँ। असली अध्यापक तो क्रिकेट का खेल देखने के लिए गया हुआ है। उसने मुझे कह दिया था कि आज की हाजरी लगा देना - मैंने लगा दी।

निरीक्षक ने कहा- ऐसी अन्धेरगर्दी चलती है इस स्कूल में। ऐसे अध्यापकों को तो डिसमिस कर देना चाहिए। निरीक्षक जटा शंकर ने कहा- यह तो तुम्हारा भाग्य समझो, बच्चों के भाग्य समझो कि मैं भी असली निरीक्षक नहीं हूँ असली निरीक्षक तो क्रिकेट देखने गया हुआ है, मैं भी उसकी एवज में आया हुआ हूँ। अच्छा हुआ अन्यथा असली निरीक्षक आता तो पता नहीं तुम्हारा क्या हाल होता?

सारा का सारा नकलीपन, सारा का सारा बनावटीपन चलता है। भीतर की यथार्थता से जरा भी परिचय नहीं। यथार्थता से परिचित होने के लिए भीतर की ओर उतरना होगा, भीतर की ओर झांकना होगा। भीतर झांकने में बाधक जितने भी तत्व हैं, उन को तोड़ना होगा।

आचार्य हरिभद्र सूरि के ऐसे ही सूत्र हैं, जो बाहर से भीतर की ओर ले जाते हैं। अभी तक हम बाहर हैं। बाहर से भीतर की ओर ले जाने वाले ये सूत्र हैं। सपने से यथार्थ के वातावरण में ले जाने वाले ये सूत्र हैं। संसार में रहकर भी, गृहस्थ में रहकर भी आत्म आराधना कैसे की जाय, इसके लिये, आचार्य श्री सबसे पहले धन के विषय में प्रश्न उठाते हैं। धन गृहस्थ के पास कैसा हो? गृहस्थ संसार से जुड़ा है, कर्तव्यों से जुडा है इसलिए गृहस्थ को हर कार्य के लिए धन की आवश्यकता निश्चित रूप से होती है। गृहस्थ तो साधु है नहीं, यदि साधु हो तो धन की आवश्यकता नहीं होती। घर गये, धर्मलाभ दिया और आराम से भोजन लेकर आ गये। लेकिन गृहस्थ तो महाराज नहीं है। कहावत है- "कोई बाई पीसे कोई बाई पोवे, साधु जी तो सीधोई जोवे।" बाईयों को तो आटा गूँधना पड़ता है, रोटियाँ सेकनी होती हैं लेकिन साधु महाराज को कुछ नहीं करना पडता। साधु तो बिल्कुल पकी पकाई गोचरी लेते हैं, कच्ची रोटी तवे पर पड़ी हो तो महाराज साफ मना कर देते हैं। लेकिन गृहस्थ कर्तव्यों का पालन करते हुए भी आत्म आराधना कैसे करें? इसके लिए आचार्य श्री सबसे पहले सूत्र देते हैं कि धन कैसा हो? समाधान है- न्यायोपार्जित धन हो।

ध्यान रहे। धन-धन एक सरीखा नहीं होता। धन-धन में भी अन्तर हैं। नोट 2 एक सरीखे हो सकते हैं लेकिन नोटो के पीछे जो जुड़ी हुई दृष्टि है, जो भाव है, हमारा जो पुरूषार्थ है, वह बिल्कुल अलग-2 है। गृहस्थ कैसे धर्म की आराधना करें?

यहाँ सर्व प्रथम सूत्र देते हैं कि - न्याय से उपार्जित धन होना चाहिए। इसमें भी 'न्याय' के ऊपर विशेष जोर देते हैं कि व्यक्ति किस प्रकार न्याय से धन उपार्जित करें जिससे वह धन भी धर्म में सहायक बन जाय।

ध्यान रहे। धन एक प्रकार का जड साधन है चेतन साधन नहीं। जड साधन का उपयोग यदि व्यवस्थित रूप से किया जाय तो वह भी भीतर की यात्रा के लिए महत्वपूर्ण और प्रभावशाली हो सकता है। वह धन भी भीतर की यात्रा के लिए सीढी का काम कर सकता है। हम जरा सुबह ही सुबह उठकर इस गुण के विषय में चिन्तन करें कि यदि पहला गुण भी भीतर में नहीं आया पहला गुण भी भीतर में प्रविष्ट नहीं हुआ-- अभी तो सामान्य गृहस्थ की भूमिका की बात चल रही है श्रावकत्व की तो बात ही दूसरी श्रमणत्व की तो बात ही दूसरी। यदि पहला गुण भी भीतर में नहीं है तो भीतर की दिशा की ओर गति नहीं हो सकती।

हमारी जितनी प्रक्रियाएँ हो रही हमारा पुरुषार्थ हो रहा उसके पीछे न्याय का दर्शन है या नहीं उसके पीछे न्याय का दृष्टिकोण है या नहीं उसके पीछे न्याय की मर्यादा का कोई सवाल है या नहीं; यदि हमारा वित्त न्याय से उपार्जित है तो हम सामान्य गृहस्थ की भूमिका में प्रविष्ट होने के अधिकारी हो सकते हैं। हमें इस सूत्र पर चिन्तन करना है।

आज इतना ही।

7. मूर्च्छा

नंत उपकारी अरिहन्त परमात्मा ने केवल ज्ञान की सम्प्रभुता को प्राप्त करने के पश्चात् करूणा से भरकर देशना दी । देशना के द्वारा जगत् की समस्त चेतना के लिये चेतना की प्राप्ति का, अपने भीतर में जाने का मार्ग प्रशस्त किया ।

किस प्रकार उस देशना के द्वारा, उस वाणी के आधार पर, वाणी को आचरण का रूप देकर हम अपने भीतर में उतरें । परमात्मा की देशना हमारा आचरण वन जाय । और उस आचरण की प्रक्रिया के द्वारा, आचरण के संशोधन की प्रक्रिया के द्वारा हमारी आत्मा का संशोधन हो जाय, हमारी आत्मा के कर्मो का संशोधन हो जाय और कर्मो का निरोध करके आत्मा का दर्शन कर सकें । इसी हेतु से परमात्मा ने देशना दी ।

हमारे जीवन का भी एकमात्र यही लक्ष्य है । जैन कहलाने का अधिकारी वही है—शास्त्र फरमाते हैं—आचार्य भगवन्त फरमाते हैं, परमात्मा की देशना कहती है । वही व्यक्ति जैन कहलाने का अधिकारी है जो व्यक्ति अपने मन में, अपने हृदय में, अपने मस्तिष्क में एकमात्र मुक्ति के लक्ष्य की कामना करता है । वह चाहे दुकान पर बैठा हो, चाहे मकान में, चाहे परमात्मा के दरबार में उपस्थित हो, और चाहे वह उपाश्रय में प्रवचन श्रवण कर रहा हो। उसके मस्तिष्क में तो नित्य निरंतर एकमात्र यही भावना रहती है कि किस प्रकार अपनी आत्मा को मुक्ति पद में पहुंचाऊं,किस प्रकार आत्मा को कर्मों से मुक्त कर के निर्जरा के द्वारा कर्म रहित होकर मैं शुद्ध आत्मा के दर्शन कर सकूं । यही एकमात्र हेतु, यही एक मात्र उद्देश्य, यही एकमात्र विचार व्यक्ति का रहता है, वही व्यक्ति जैन कहलाने का अधिकारी है ।

परमात्मा के दरबार में हम पहुंचे, वहां जाने के बाद भी हमारी भाषा में संसार की लिप्सा टपक रही हो, उस समय भी हमारे मन में, हमारे मस्तिष्क में संसार की वासनाएं भरी हुई हों । हमारी स्थिति बड़ी विचित्र हो जाती है । ऐसे ही जैसे एक भिखारी एक अरबपति के पास पहुंच जाय । उसके पास जाने के बाद वह अरबपति व्यक्ति उस भिखारी

को पूछे कि तुम्हें क्या चाहिए ? तुम्हें जो चाहिए ले सकते हो माग सकते हो और मैं तुम्हें वह चाबी भी दे सकता हू, जिस चाबी के द्वारा तुम स्वय करोडपति बन सको तुम स्वय अमीर बन सको, कोष के मालिक बन सको । वह व्यक्ति कहता है—भाई साहब! मुझे स्वय को अमीर नहीं बनना । मुझे करोडपति नहीं होना । आप तो मुझे 50-100 रुपये भीख में दे दो । वह भिखारी थोडे से रुपयों को पाकर परम आनन्दित हो जाता है ।

हमारी दशा भी ऐसी ही है । परमात्मा के सामने उपस्थित हो जाने के बाद भी हमारे भीतर में ससार की तुच्छ भावनाएं हों, हृदय के भीतर में तुच्छ कामनाए हों इन भावनाओं को लेकर के हम यदि वहा पर पहुचे तो निश्चित रूप से हमारी स्थिति—हमारी दशा भी वैसी ही हो जाएगी । जबकि परमात्मा के आगम कहते हैं, परमात्मा की देशना कहती है कि यदि तुम स्वय के भीतर में उतरने का प्रयास करोगे तो उस प्रकार के आचरण के द्वारा स्वय के सशोधन के उपाय करो तो निश्चित रूप से तुम मेरी स्थिति को उपलब्ध हो सकते हो । तुम मेरी दशा को प्राप्त हो सकते हो । लेकिन हम तो वहा जाने के बाद भी थोडे से सासारिक सुखों की ही माग करते हैं और कहते हैं कि हमें तो इतना ही चाहिए ज्यादा नहीं । हमें तो इतना ही चाहिए कि हमारा बगला बन जाय । हम इन्हीं बातों को मागकर/पाकर निश्चित हो जाते हैं आ जाते हैं ।

यदि व्यक्ति चाहे, पुरुषार्थ करें तो वह व्यक्ति स्वय अमीर बन सकता है । ऐसी चाबी उसे मिल सकती है जो अमीर होने का ताला खोल दे । यदि हम पुरुषार्थ करें, प्रयत्न करें अपने भीतर में उतरने की चेष्टा करें, सारी अनुकूलताए हमारा साथ देती हैं । सारी प्रकृति हमारा सहयोग करती हैं । यदि हम भीतर में उतरने का प्रयास करें स्वय उसी अवस्था को प्राप्त कर सकते हैं । उन्हीं गुणों को आत्मा के उन्हीं सद्गुणों को हम अपने भीतर में उतार सकते हैं । स्वय की अक्षय स्थिति को उपलब्ध हो सकते हैं । लेकिन हमारा मन तो केवल बाहर रहता है जबकि जैन दर्शन स्पष्ट रूप से कहता है कि व्यक्ति श्रावक कहलाने का अधिकारी वही है जो कारणवश परिस्थितिवश कर्मवश, कर्म की विचित्रता के कारण, हो सकता है कि वह उस प्रकार का पुरुषार्थ न कर सके । लेकिन उसके मन में तो यही मनोरथ रहना चाहिए उसके मन में तो प्रतिपल यही विचार रहना चाहिए कि किस प्रकार आत्मा को मुक्त करूं कर्मों की जजीरों से, जजीरों को काट कर किस प्रकार आत्मा को अनन्त सुख के आकाश में विचरण करा सकू । यही हृदय के भीतर में एकमात्र भावना रहनी चाहिए ।

जैन दर्शन तो केवल इसी बात को महत्व देता है और किसी बात को महत्व नहीं देता । बडी मार्मिक बात आती है — कल्पसूत्र हम प्रति वर्ष सुनते हैं, उसमें एक आचार्य भगवन्त की एक बड़ी मार्मिक कथा आती है । किस प्रकार स्वय की आत्मा के सशोधन

के लिए बाकी सारी बातों का त्याग कर देते है । अन्तर केवल इतना है उनमें और हमारे में । थोड़े से स्वार्थ के लिए, थोड़े से संसार के लिए, थोड़े से साधनों की प्राप्ति के लिए हम अपने भीतर के सुख को छोड़ देते हैं । उसे हम तिलांजलि दे देते हैं । जबकि वे आत्म अवाप्ति के लिये सारी स्वार्थ सनी भूमिकाओं का त्याग कर देते हैं । त्याग तो दोनो ही करते हैं, मात्र नजरिये का, आधार का अन्तर है ।

एक आचार्य भगवन्त के शिष्य कहीं गोचरी इत्यादि के लिए गमन कर रहे थे । एक स्थान पर देखा कि वाद-विवाद हो रहा था । सामने कोई पण्डित मिला, विद्वान व्यक्ति मिला । मुनिराज उधर से जा रहे थे । पंडित ने शास्त्रार्थ के लिए ललकार दिया । शास्त्रार्थ के लिए पक्ष को उपस्थित करो । मैं तुम्हें हरा दूंगा । उस जैन मुनि ने विचार किया कि ये तो मेरे सत्य के ऊपर ही चोट कर रहा है । मेरी शास्त्रार्थ की शक्ति पर, मेरी प्रज्ञा की शक्ति पर चोट कर रहा है । राजी हो गये, वहीं वाद-विवाद करने के लिए। वाद-विवाद चला । एक ने अपना पक्ष प्रस्तुत किया एवं दूसरे ने अपना पक्ष प्रस्तुत किया। उस पंडित ने अपना पक्ष प्रस्तुत करते हुए कहा कि तत्व दो हैं—एक जीव है और दूसरा अजीव ।

उस मुनि ने विचार किया कि यही तो मेरा पक्ष है । मैं भी इसी पक्ष को प्रस्तुत करुंगा तो सारे लोग, आस-पास खड़े व्यक्ति समझ जाएंगे कि यह तो इसी की नकल कर रहा है और मैं हार जाऊंगा । उन्होंने अपना पक्ष विशेष रूप से प्रस्तुत किया, स्वयं बड़े तर्कवादी थे, बुद्धिजीवी थे, भीतर में तर्क की बड़ी गहरी चिन्तना थी । और इसी कारण उन्होंने अपना वाद प्रस्तुत करते हुए कहा कि पण्डित जी ! आप गलत कह रहे हैं, तत्व दो नहीं, तीन हैं । तीन तत्व कौन से ? उन्होंने कह दिया (1) जीव (2) अजीव (3) नोजीव। उस पण्डित ने कहा—जरा लक्षण उपस्थित कीजिए । जीव का लक्षण क्या ? अजीव का लक्षण क्या ? और नोजीव का लक्षण क्या ? उन्होंने सारे लक्षण उपस्थित कर दिये । जो चलता हो, फिरता हो, वह जीव । और अजीव वह है जो जड़ पदार्थ है, जो न चलता है, न फिर सकता है, न देख सकता है, वह अजीव है और नोजीव के लक्षण क्या हैं? नोजीव की परिभाषा देते हुए उन्होंने कहा कि नोजीव का अर्थ है कि जो अजीव होने पर भी हिल भी सकता है, चल भी सकता है, उसे नोजीव कहते हैं । उदाहरण उन्होंने मांगा । मुनि महाराज की तर्क शक्ति तो बड़ी गजब की थी । उन्होंने उसी समय एक रस्सी को लपेटा, खूब उसमें बंल डाले और बल डालकर छोड़ दिया । छोड़ते ही रस्सी के जो सल पड़े हुए थे वो अपने आप घूमने लगे । उदाहरण दे दिया कि यह अजीव होने पर भी हिल रहा है, चल रहा है, यह नोजीव ही है, सारे लोग बड़े चमत्कृत हुए । लोगों ने वड़ी प्रशंसा की, बड़ी महिमा गाई । उनका पुण्योदय था कि सारे लोगों ने उन मुनि की बड़ी जय-जयकार की और कहा कि इन मुनि ने शास्त्रार्थ में इस पण्डित को जीत

लिया । मुनि महाराज बडे प्रसन्नचित हुए । आनंदित हुए कि आज मैंने वाद-विवाद जीत लिया लेकिन मन में तो वह जानते थे कि वास्तव में तत्व तो दो ही हैं—एक जीव और एक अजीव । नोजीव की तो मेरी व्यर्थ की कल्पना है । मैंने पण्डित को हराने के लिए इस प्रकार की कल्पना की है तर्क शक्ति के आधार पर । मुनि महाराज आगे बढे । पीछे-पीछे हजारों व्यक्ति उनके साथ में थे । उन्होंने विचार किया कि जुलूस के रूप में मुनि महाराज को उनके उपाश्रय तक पहुचाया जाय । उनके गुरू महाराज तक पहुचाया जाय । मुनि को लेकर लोग सारा जुलूस चला और उपाश्रय तक पहुचा । उस स्थान तक पहुचा, जहा उनके गुरू महाराज विराजमान थे । गुरू महाराज ने सारी बातें सुन ली थीं । वाद-विवाद के सारे समाचार सुन लिये थे और उनके पक्ष को भी सुन लिया था कि तीन तत्वों की प्ररुपणा की है निरुपणा की है । ज्योंहि यह बात सुनी उनका मन म्लान हो गया उनका हृदय उदास हो गया उनकी आखों से आसू टपक पडे । कि इसने उत्सूत्र प्ररुपणा की है । यह निश्चित है कि वह विजयी बना है । लेकिन विजयी होना ये तो क्षणिक खुशी है क्षणिक स्वार्थ की बातें हैं, ऊपर-ऊपर की बातें हैं ससार की बातें हैं बाहरी विश्व की बातें हैं लेकिन भीतर में तो इसने अनुपयुक्त प्ररुपणा करके अनन्त ससार का उपार्जन कर लिया । वो मुनि पास में आये । मुनिराज ने विचार किया था कि जब मेरे गुरू महाराज सुनेंगे कि मै आज विजयी बना हू । शास्त्रार्थ में विजयी बना हू । पण्डित को हरा करके मैं जीत का डका बजा कर आ रहा हू । जैन दर्शन की और जैन मुनियों की बाजार में बडी प्रशसा हो रही है । मैं यहा पर उपस्थित हो रहा हू, उसने विचार किया था कि गुरु महाराज मेरा अभिनदन करेंगे । मेरे सामने आकर के मेरी पीठ थपथपायेंगे । मुझे बडा आर्शीवाद देंगे । उनकी आखों में मेरे लिए वात्सल्य की वर्षा होगी । उनके चेहरे पर मेरे लिए हर्ष का अपार वैभव उपस्थित होगा । ऐसी ही कल्पनाओं को साथ में लेकर के वह चल रहा था उपस्थित हो रहा था मन में अपार हर्ष था । मन में हर्ष इसलिए था कि वह स्वय विजयी बना था । बाहरी दशा के कारण अपने हृदय में उसने हर्ष को आमत्रण दिया था ।

जरा हम चिन्तन करें हमारी सारी दशा इसी प्रकार की है । हमारे हर्ष और शोक का कारण भी ससार होता है । बाहरी परिस्थितिया हमारे भीतर में हर्ष का वातावरण उपस्थित करती हैं और बाहर की परिस्थितिया ही हमारे भीतर में शोक को जन्म देती हैं । थोडा-सा हमें धन मिल जाय हमारी कल्पना थी कि हम सौ रुपये कमायेंगे लेकिन हमारी कल्पना के पार यदि हम हजार रुपये कमा लें तो निश्चित रुप से हमारे भीतर में प्रसन्नता के लड्डू फूटने प्रारम हो जाते हैं । हमारे चेहरे पर खुशी नहीं समाती । हमारी कल्पनाओं को और ज्यादा विशाल आकाश मिला, हम अपने भीतर में खुशिया ही खुशिया मनाते हैं ।

इस वजह से वे मुनि भी परम आनंदित हो रहे थे, अब उनके मन में कोई दर्द नहीं था, कोई शोक नहीं था । थोड़ी देर पहले मन में दर्द था, थोड़ी देर पहले जब विजय श्री प्राप्त की ही थी तो मन में विचार था कि मैंने गलत बात की है, तत्व दो ही हैं लेकिन मैंने तीन की प्ररुपणा की है । लेकिन जब लोगों ने जय-जयकार करना प्रारंभ किया तो उस जय-जयकार के उद्‌घोष में स्वयं का दर्द समाप्त हो गया । भीतर का शोक समाप्त हो गया । बाहर की जय-जयकार व्यक्ति को और ज्यादा भीतर के गर्त में, खाई मे धकेल देती है । मुनि का दर्द भी समाप्त हो गया और विचार करने लगे कि मैंने जो कहा-बिल्कुल वही बात सत्य मानी गई । जो मैंने अपने मुंह से कह दिया, उसी पर मुझे विजय प्राप्त हो गई । लोगों की इतनी जय-जयकार सुन उसे पचा नहीं सके । अपने भीतर में लोगों की इतनी जय-जयकार सुन उसे पचा नहीं सके । अपने भीतर में अपार हर्ष को लेकर के गुरू महाराज के चरणों में उपस्थित हुिए, सारे लोग साथ में थे । लोगों ने बड़ी महिमा गाई और कहा कि गुरू महाराज ! आज आपके शिष्य ने जैन दर्शन का डंका बजा दिया। आज आपके शिष्य ने सारे नगर में जैन मुनियों की वाह-वाही फैला दी । सारे नगर में सारे लोग एक ही स्वर में एक ही बात करते हैं । आपके मुनि की बड़ी प्रशसा हो रही लेकिन गुरू महाराज का चेहरा उदास था । उनके मन में रुदन हो रहा था । भीतर मे बड़ी उदासी थी । गुरू महाराज ने शिष्य को पास में बुलाया, सारे लोग वहां खडे थे लेकिन गुरु महाराज को लोगों की चिन्ता नहीं थी । उनके जय जयकार की चिन्ता नहीं थी । लोगों के हर्ष की चिन्ता नहीं थी । उनके हृदय में चिन्ता थी तो अपने शिष्य की कि उत्सूत्र प्ररुपणा करके इसने अनंत संसार का उपार्जन कर लिया । यही एकमात्र चिन्ता थी—किस प्रकार यह आत्मा मुक्त हो सकेगा । उनके हृदय में यही दर्द था और उन्होंने इसी दर्द को व्यक्त करते हुए कहा कि तुमने वाद-विवाद किया और उसमें तुमने तीन तत्वों की प्ररुपणा की, तुमने तीन तत्वों की बात की । उस मुनि ने मन में विचार किया कि इतने सारे लोग खड़े हैं, इन लोगों के बीच में, जो आज ही मेरे भक्त बने हैं, जो मेरे एक इशारे पर कुछ भी कर सकते हैं, उन्हीं के सामने ये गुरू महाराज मुझसे यह सारी बातें पूछ रहे हैं । पूछना ही होता तो एकान्त में पूछते । जहां कोई व्यक्ति न होता ।

लेकिन गुरू महाराज बाहर की स्थिति को नहीं देखते, वे भीतर की स्थिति को देख रहे थे । उसकी आत्मा की स्थिति को देख रहे थे । आत्मा के ऊपर मान-अपमान की जो पर्त जमी हुई थी, उस पर्त को वे देख रहे थे । उस पर्त के कारण उसकी आत्मा पर जो कालिमा चढ़ रही, उस दशा को देख रहे थे । इस स्थिति को देख रहे थे । इसी कारण कहा—तुमने तीन तत्वों की प्ररुपणा की । उस मुनि ने कहा कि हां, मैंने की । गुरु महाराज ने कहा—पहले उस उत्सूत्र प्ररुपणा के लिए प्रायश्चित करो, उसके लिए मिच्छामि दुक्कडम् दो । प्रायश्चित लेने के बाद ही मैं तुम्हें आशीर्वाद दूंगा । इसके बाद ही मैं तुम्हें

आशीर्वाद दे सकता हू । तुमने विजय प्राप्त की मेरी दृष्टि में इसका कोई महत्व नहीं है । ये तो केवल वाहर की बात है ससार की बातें हैं । मेरी दृष्टि में इसका कोई मूल्य नहीं लेकिन तुमने उत्सूत्र प्ररपणा की । मेरे हृदय में इसका बडा दर्द है, शोक है, उस दर्द को मिटाने के लिए तुम्हें प्रायश्चित करना होगा ।

इतने लोगों के बीच में जब शिष्य ने ये सारी बातें सुनी तो मुनि महाराज तो वहीं भडक उठे । इतने लोगों के बीच में खुद की निन्दा की बातें और वो भी गुरू महाराज के द्वारा । उसका विचार था उसकी कल्पना थी कि गुरू महाराज मुझे आशीर्वाद देने के लिए मेरे सामने आएँगे गुरू महाराज मेरे लिए वात्सल्य की वर्षा करेंगे और इधर मैं यह क्या देख रहा हू ? मैं सोच रहा था कि मुझे आशीर्वाद मिलेगा और यहा तो मुझे शब्दों के डण्डे मिल रहे हैं ?मैं सोच रहा था कि मेरे लिये हर्ष के आसू बहेंगे और यहा तो दर्द की अभिव्यक्ति देख रहा हू । बडी विचित्र बात देख रहा हू । उसकी कल्पना को बडा आघात पहुचा । इतने लोगों के बीच में वह ये बातें सुन नहीं सका । मुनिराज आगे आये और कहा कि नहीं गुरू महाराज । तीन ही तत्व हैं । मुनि ने अपनी गलत प्ररुपणा को और अधिक मजबूत किया अपनी प्ररुपणा पर एक ढाल लगाते हुए केवल अपने लोगों के लिए लोगों को रिझाने के लिए केवल उनको अपना भक्त बनाये रखने के लिए उनके सामने अपनी प्ररुपणा को और अधिक मजबूत करते हुए कहा कि तीन ही तत्व होते हैं। गुरू महाराज ने इस बात को स्वीकार नहीं किया ।

जरा चिन्तन करें । गुरू महाराज ने बाहर की जय जयकार को नहीं देखा । यही तो जैन दर्शन की मूल दृष्टि है, मूल भूमिका है हम केवल बाहर को देखते हैं बाहर की जयकार को देखते हैं, बाहर की प्राप्ति को देखते हैं और भीतर कितना नुकसान होता है उसे हम बिल्कुल भूल जाते हैं, बिल्कुल विस्मृत कर जाते हैं जबकि जैन दर्शन का मूल लक्षण है । बाहर मत देखो अपने भीतर की ओर झाकने का प्रयास करो कि हमारे भीतर में आत्मा का, आत्मा के गुणों का कितना ह्रास हो रहा है । हमारी अपनी ही क्रियाओं के द्वारा हमारी अपनी ही प्रक्रियाओं के द्वारा ।

गुरू महाराज चाहते तो उसका जय जयकार कर सकते थे । स्वय साथ दे सकते थे । लेकिन ये जैन दर्शन के बिल्कुल विपरीत होता । बाहर का थोडा सा सुख प्राप्त कर लिया, बाहर की जय जयकार प्राप्त कर ली और भीतर को भूल गये । हमारी दशा बिल्कुल उस मुनि की तरह है । जरा सा बाहर का सांसारिक सुख प्राप्त कर लिया चार साधन प्राप्त कर लिए वैभव प्राप्त कर लिया और स्वयं के भीतर को विस्मृत कर बैठे। स्वयं के भीतर की स्थिति को भूल गये । आत्मा के ऊपर और अधिक हम लेप चढ़ाते चले गए ।

आचार्य हरिभद्र सूरीश्वर जी महाराज धर्म विन्दु ग्रन्थ के द्वारा अपने भीतर को टटोलने के लिए एक-एक सूत्र देते है । एक-एक सूत्र के द्वारा वे भीतर में जाने का उपाय फरमाते है । एक-एक सूत्र की गहराई में ले जाते हैं । आचार्य भगवन्त धन के विषय में बात कर रहे हैं । पहला सूत्र चल रहा है और उसके भीतर में हम अभी तक पहुंचे नहीं है। आचार्य भगवन्त अपने शिष्य का समाधान करते हुए मूर्च्छा के विषय में बात करते हैं । मूर्च्छा कभी समाप्त नहीं होती । ऐसी ही बात है जैसे एक राजा ने घोषणा की । घोषणा में उसने कहा कि जो मुझे लम्बी कहानी सुनाएगा, जिस कहानी को सुनकर मैं संतुष्ट हो जाऊंगा कि ये कहानी बहुत लम्बी है, बहुत बड़ी है, मैं ऊब जाऊंगा, उस व्यक्ति को इनाम दिया जाएगा । और जिस व्यक्ति की कहानी को सुन कर मैं थका नहीं, उसे कारागार में डाल दिया जायेगा । बहुत से कथा वाचक वहां उपस्थित हुए लेकिन वह राजा भी पहुंचा हुआ साधक था । बैठ गया सुनने के लिए, 12-12 घंटा वो कहानी चली लेकिन फिर भी वो राजा बिल्कुल नहीं थका । मि. जटा शंकर को पता चला कि राजा ने ऐसी घोषणा की है तो वह भी उसके पास पहुंच गया और कहा कि मैं ऐसी कहानी सुनाऊंगा। वह इतनी लम्बी होगी कि आप तुरंत ऊब जाएंगे और आपको ही मना करना होगा कि बस मैं थक गया......अब अपनी कहानी को बंद करो । राजा ने कहा—ऐसी कैसी कहानी है, भई तुम्हारी, शुरू करो । जटा शंकर ने कहानी सुनानी शुरू की ।

एक बहुत बड़ा बगीचा है और उस बगीचे में 1000 पेड़ हैं । एक-एक पेड़ में 500-500 डालियां हैं, एक-एक डाली में 500-500 टहनियां हैं । कल्पित कहानी थी। अब सत्य से क्या लेना देना, यों ही बोलता चला गया । एक-एक टहनी में 500-500 पत्तियां हैं और एक-एक पत्ती पर एक-एक कबूतर बैठा हुआ है । न मालूम कितने कबूतर थे । इतने में एक व्यक्ति वहां आया और उसने कुछ दाने बगीचे में डाले । ज्योंही दाने बगीचे में उछले, एक कबूतर उड़ा और उड़कर के उसने एक दाना खाया । उसके बाद दूसरा कबूतर उड़ा और दाना खाया, तीसरा कबूतर उड़ा और उसने दाना खाया । राजा ने कहा कि दूसरा-तीसरा सबने खा लिया अब आगे क्या हुआ ? यह बताओ । जटाशंकर बोला—राजन्‌ । ऐसे कैसे मैं बात दूं, कहानी तो अपने हिसाब से चलेगी । कबूतर एक-एक करके उड़ा, चौथा उड़ा और फिर उसने दाना खाया । अरे ! उसके बाद क्या हुआ वो बताओ । उसने कहा—मेरी कहानी तो ऐसे ही चलेगी, मैं कैसे बता दूं अभी तो लाखों कबूतर उस पेड़ पर बैठे हुए हैं । जब तक वो लाखों कबूतर दाना नहीं खा लेंगे, एक-एक करके दाना नहीं खा लेंगे, तब तक मैं कहानी को आगे नहीं बढ़ा सकता । राजा समझ गया कि ये कहानी तो कभी समाप्त नहीं होने वाली । ये कहानी चलती चली जाएगी, कभी समाप्त नहीं होगी । एक लाख कबूतर मान लो दाना खा भी लेंगे तो आगे भी क्या कहेगा ? ये आगे कहेगा कि लाख कबूतर वापस उड़े और वापस वहीं जाकर बैठ

गए फिर वापस दाना डाला फिर खा कर उडे और इस तरह से ये चक्कर चलता ही रहेगा ।

मूर्च्छा भी इसी तरह की है उसका कभी अन्त नहीं होता, उसका कभी समापन नहीं होता । यह उस कहानी की तरह है जिसका कभी अन्त नहीं होता कि कबूतर फुर्र से उडा, दाना खाया फिर बैठ गया । हमारी मूर्च्छा भी ऐसे ही उडती चली जाती है । हमारे भीतर एक आकाक्षा समाप्त होती है और तुरत दूसरी आकाक्षा का जन्म होता है । पूरी होते-होते तीसरी आकाक्षा का जन्म होता जाता है । आचार्य भगवन्त कहते हैं कि व्यक्ति का सम्यक् चिन्तन ही व्यक्ति को उस मूर्च्छा से बचा सकता है । जो उसे अन्याय की प्रेरणा देता है ।

हम जरा चिन्तन करें कि हमारा ससार हमारा जीवन, हमारे जीवन की शैली किस प्रकार की है ? हम केवल बाहर के धन को प्राप्त करने में अपने समस्त जीवन को न्यौछावर कर देते हैं लेकिन भीतर में जानने की जाने की कोई आकाक्षा हमारे भीतर में जन्म नहीं लेती । आचार्य भगवन्त उसी आकाक्षा को हमारे भीतर में उपस्थित करना चाहते हैं, आकाक्षा का आधार बदल देना चाहते हैं जब आकाक्षा का आधार बदल जाएगा तो धन के स्थान पर धर्म हमारा आधार बन जाएगा । आगे जाकर धन की आकाक्षा भी समाप्त हो जाएगी और वहीं मुक्ति रूप परिणाम हमारे समक्ष उपस्थित हो जाएगा । व्यक्ति केवल धन को प्राप्त करने के लिए न मालूम कितनी-कितनी क्रियायें करता है । बडी विचित्र बात हो गई—प्राचीन समय में और वर्तमान समय में । धन पहले भी था और धन आज भी है । धन की मूर्च्छा पहले भी थी और धन की मूर्च्छा आज भी है लेकिन वर्तमान की स्थिति बदल गई । वर्तमान का चिन्तन बदल गया । वर्तमान की विचारधारा परिवर्तित हो गई। वर्तमान मे व्यक्ति सोचता है कि इज्जत रहे या न रहे लेकिन पैसा अपने पास में होना चाहिए क्योंकि पैसा धन में इतनी ताकत है कि इससे हर चीज खरीदी जा सकती है । आचरण का कोई मूल्य नहीं है स्वय की प्रतिष्ठा का कोई मूल्य नहीं स्वय के स्वाभिमान का कोई मूल्य नहीं, मूल्य केवल वैभव का है । आचरण कैसा भी हो, कोई चिन्ता नहीं, यदि हमारे पास पैसा है तो हमारा आचरण भले निकृष्ट हो हम अखबारों में अपना फोटो छपवा सकते हैं । अपनी प्रतिष्ठा को अर्जित कर सकते हैं । सारे लोगों मे हमारा नाम फैल सकता है । आधार बदल गया चिन्तन का । पुराने समय का चिन्तन था कि पैसा रहे या न रहे परतु स्वाभिमान इज्जत मान सुरक्षित रहना चाहिए । पैसा कोई चीज नहीं है । आज है, कल नहीं रहेगा । आज नहीं है, कल आ जाएगा । वापस कमा लेंगे पुण्य और पुरुषार्थ के बल पर । लेकिन मान-सम्मान, इज्जत, प्रतिष्ठा आचरण सुरक्षित रहना चाहिये । वर्तमान की स्थिति बडी विचित्र बन गई ।

मि. घटा शंकर ने जब तीर्थ यात्रा पर जाने का निर्णय किया तो उसने अपने बेटे को बुलाया । बड़ा कंजूस आदमी था । बेटे को बुला कर कहा भई ! अपन बाप-बेटे सारा परिवार तीर्थ यात्रा के लिए चल रहे हैं । हो सकता है, चार-पांच महीने यात्रा में लग जाय, इतना सारा अपने पास में जो सोना वगैरह है, हीरे जवाहरात है, उनका क्या किया जाय ? उन्होंने विचार किया कि अपन निकल जायें, पीछे घर पर ताला हो, कोई चोर आ जाये और हमारा सारा संचित वैभव उड़ा करके ले जाये । बड़ी विचित्र स्थिति उपस्थित हो जायेगी । उसने विचार किया कि कहीं घर के अन्दर डाल दे, घर के अन्दर छिपा दे, बैंक के अन्दर तो रख नहीं सकते क्योंकि नम्बर-2 का माल, बैंक के अन्दर तो कैसे रखें ? घर के अन्दर छिपा दे, विचार किया कि आजकल चोरों का भी भरोसा नहीं, उन्हें तुरंत पता चल जाता है और सूना घर । यहां दिनों तक रहकर वे आराम से सारा घर साफ कर सकेंगे । झाड़ू निकाल देंगे सारे घर का । विचार करके उसने निर्णय किया कि ऐसा करें, अपन दोनों चलते हैं और शमशान घाट के पास में जाकर के वहां पर खड्डा खोद कर के धन को गाड़ देते हैं, किसी को पता भी नहीं चलेगा । बाहर किसी को क्या पता चलेगा ? शमशान घाट में जाने के लिये व्यक्ति को यों ही डर लगता है । कोई जाने की चेष्टा ही नहीं करेगा । वहां कौन जाकर के खड्डा खोदेगा ? और अपन खड्डा इस तरह से खोदेंगे और वापस इस तरह से पूरा कर देंगे । केवल हमको पता रहेगा और किसी को पता नहीं चलेगा । रात्रि के समय में जाने का विचार किया । रात्रि के 12 बजे धन का पोटला लिया, वैभव का पिटारा लिया और दोनों जने चले, अपने मकान से बाहर निकले । उन्होंने आस-पास देखा, कोई व्यक्ति दिखाई नहीं दे रहा था । सारे व्यक्ति निद्रा की आराधना में मग्न थे । चलते हुए बाहर आये लेकिन मि. जटा शंकर बाजू में खड़ा था, एक पेड़ की आड़ में । रात्रि का समय था । वो गरीब आदमी था, विपन्न आदमी था । यों ही वो समय पास कर रहा था कि अचानक उसने सेठ साहब मि. घटा शंकर को जाते हुए देखा । उसने देखा कि उनका पुत्र भी साथ में था और पुत्र के पास एक बड़ा-सा पोटला था । मन में शंका उपस्थित हो गई कि रात्रि के समय यह सेठ कहां जा रहा है ? और जिज्ञासा भी जागृत हो गई कि देखूं तो सही, यह कहां जाता है ? घटा शंकर और पुत्र आगे बढ़ने लगे । आस-पास देखते जा रहे थे । उनके देखने का ढंग ऐसा था कि मि. जटा शंकर को मन में शंका हो गई कि जरूर कोई न कोई राज है, कोई रहस्य है । जब व्यक्ति स्वयं अपने आपको छिपाने की चेष्टा करता है, आस-पास चोर नजरों से देखता है तो दूसरे समझ जाते हैं कि जरूर कोई न कोई गड़बड़ है, दाल में काला है । वो आगे बढ़ते जा रहे थे और पीछे-पीछे छिपते-छिपाते मि. जटा शंकर भी आगे बढ़ रहा था । शमशान घाट तक पहुंच गये । वहां जाने के बाद में खड्डा वगैरह खोदने लगे । घटा शंकर ने बेटे से कहा कि तुम आस-पास जरा एक

चक्कर लगा करके आ जाओ कि कहीं आस-पास कोई व्यक्ति छुपा हुआ तो नहीं है। कहीं ऐसा न हो कि कोई व्यक्ति देख रहा हो धन गाडते हुए,इधर हम तो जाये तीर्थ यात्रा करने और उधर हमारा धन भी तीर्थयात्रा के लिए निकल पडे । ऐसा न हो कि कोई व्यक्ति आये और उसे निकाल ले जाय । जार अच्छी तरह से देख लो । मि. घटा शकर का बेटा गया आस-पास देखने के लिए । मि. जटा शकर पास ही के पेड से छिप कर देख रहा था । उसने विचार किया ये तो गजब हो गया । अब उसका बेटा आयेगा और मुझे देख लेगा । मैं भाग भी नहीं सकता । यदि मैं भाग जाऊगा तो इन्हें पता चल जाएगा । मैंने इनकी बातें सुन ली है और बातों में मैंने ये सुन लिया है कि इनके पास में धन है और ये धन गाडने के लिए आये हैं । मन में पक्का निश्चय कर लिया कि ये धन तो मुझे लेकर ही जाना है लेकिन धन मैं लेकर कैसे जाऊ । उसका बेटा आएगा, मुझे देख लेगा, अब क्या करें, क्या न करें ? बडी विचित्र स्थिति हो गई । भागने की कोई स्थिति नहीं बची । छुपने की वहा कोई जगह नहीं थी । उसने विचार किया बडा बुद्धिमान आदमी था तुरत वहीं पर लेट गया और इस तरह से लेटा जैसे कोई मुर्दा पडा हो । उसने विचार किया कि वो जैसे ही पास में आएगा, मैं अपनी सास रोक लूगा । घटा शकर का बेटा घूमते-घूमते, देखते-देखते उसी पेड के पास में आया । देखा एक व्यक्ति पडा हुआ है हिला-डुला कर देखा कि कहीं यह जिन्दा तो नहीं है । खूब हिलाया-डुलाया मगर यू ही पडा था। नाक के पास में हाथ ले गया श्वास बद थी । वह आ गया निश्चित होकर के आ गया । कहा' पिताजी कोई नहीं है आप व्यर्थ में चिन्ता करते हैं । रात को 12 बजे 1 बजे शमशान का कितना भयकर माहौल, कौन व्यक्ति आएगा। डरने की कोई आवश्यकता नहीं केवल एक मुर्दा पडा हुआ है । 'मुर्दा पडा है' घटा शकर के कान खडे हो गये । विचार किया कि यहा मुर्दा ऐसे ही किसने छोड दिया । अरे मुर्दा होता तो जल गया होता, आधा जला होता, मगर यों का यों पडा है । हो सकता है कि वह व्यक्ति जिन्दा हो । मुर्दा होने की ऐक्टिग कर रहा हो । तुम जरा अच्छी तरह से देखो, कुछ सोच कर कहा-एक काम करो, यों पता नहीं चलेगा । ये मोटा-सा डण्डा पास में पडा है, ये ले जाओ और एक डडा खींचकर खोपडी पर लगाना यदि वो मुर्दा होगा तो यों ही रहेगा । मालूम हो जाएगा कि वो वास्तव में जीवित है या मुर्दा। बेटा गया- डडा ले लिया हाथ में । डर तो था नहीं, विचार किया कि पिताजी भी शक्की आदमी हैं । अरे वो मुर्दा पडा है और व्यर्थ में डण्डा मारने को कहते हैं । मेरा क्या-एक डडा मार दूगा । मि जटा शकर ये सारी बात सुन रहा था । वो डर गया मन ही मन में कि अब ये डडा लेकर आएगा और अब डडा सिर पर पडने ही वाला है । कैसे मैं चुप रहूं ? कैसे मैं अपनी चीख न निकलने दूं ? विचार किया मन को मजबूत किया कि डडा खाना भी मजूर है लेकिन अब तो मै इसका पिटारा लेकर ही जाऊंगा। यों

मैं जाने वाला नहीं । उसका बेटा पास में पहुंचा डंडा घुमाता हुआ । और एक जोरदार डंडा उसकी खोपड़ी पर खींच मारा । तारे दिखाई देने लग गए, बड़ी मुश्किल से अपनी चीख को रोका, खून बहना शुरू हो गया । डंडा मारा, शरीर को हिलाया । वो तो मुर्दे की तरह पड़ा रहा, कोई हरकत नहीं हुई और बेटा बड़े आराम से डंडा घूमाता हुआ पिताजी के पास आ गया और कहा कि पिताजी डंडा मार दिया लेकिन कोई हलचल नहीं हुई । लेकिन फिर भी उनके मन को विश्वास नहीं हुआ । उसने विचार किया कि ऐसा हो सकता है कि मार सहन भी कर लें । तुम एक काम करो । अभी तक मुझे पूरा विश्वास नहीं हो रहा कि वो वास्तव में मुर्दा है । मैं जैसा कहता हूं—करो फिर बिल्कुल पक्का पता चल जाएगा । ये चाकू पास में पड़ा है । ये चाकू ले जाओ, उसकी नाक काटकर के ले आओ । अब अगर वो जीवित होगा तो अपने आप चिल्लायेगा और मुर्दा होगा तो कोई बात नहीं । पुत्र ने विचार किया कि चलो ऐसा ही करता हूं । मुर्दे की नाक काटनी है, मुझे क्या परेशानी है । मि. जटा शंकर के तोते गये , भीतर से कांप गया, सारा मन भयभीत हो गया । नाक भी जाएगी, डंडा मैंने खाया । ये नाक भी जाने वाली है, अब मैं क्या करूं । यहां से अगर मैं भाग जाऊं तो ये पिटारा लेकर के चला जाएगा । कहीं और चला जाएगा । धन अब यहां गाड़ेगा नहीं, उसके मन में शंका उपस्थित हो जाएगी और अब अगर मैं बैठा रहता हूं तो मेरी नाक चली जाएगी । मैं क्या करूँ और क्या न करूं ? उसने विचार कर निर्णय किया कि अब तो मेरी नाक चली जाए, कोई चिन्ता नहीं लेकिन धन का पिटारा तो लेकर ही जाऊंगा । वो चाकू हाथ में लेकर के पहुंच गया और चाकू लेकर नाक को हाथ में लेकर सरर से नाक काट डाली । खून बह चला । बेचारा जटा शंकर दर्द के कारण बिलबिला गया । मन में बहुत व्यग्र हुआ, नाक भी गई । बेटा नाक काट करके अपने पिता के पास पहुंचा । पिता ने कहा कि हां, अब ये बात बिल्कुल ठीक है, अब सिद्ध हो गया कि ये मुर्दा है । धन को गाड़ा और वहां से रवाना हो गये । मि. जटा शंकर जल्दी से उठा । आस-पास कोई औषधि वगैरह थी, उसको लगाई नाक़ पर खून बहना बंद हुआ । खड्डे को खोदा और धन का पिटारा लेकर के रवाना हो गया । चार-पांच महीनों के बाद में मि. घटा शंकर वापस आया । खड्डा खोद कर देखा तो माल गायब। वहां तो पिटारा था ही नहीं । घटा शंकर ने मन के अन्दर विचार कर लिया कि उसी व्यक्ति ने लिया है जिस व्यक्ति को डण्डा मारा था, जिस व्यक्ति की नाक काटी थी । इसके सिवा दूसरा कोई हो नहीं सकता । उस व्यक्ति को खूब ढूंढा गया, खोजा गया, मिल गया क्योंकि नाक कटा व्यक्ति कहीं छाना नहीं रहता । उस व्यक्ति को दरबार में कोर्ट में उपस्थित किया गया और पूछा गया कि तुम इसका सारा धन ले गये । उस व्यक्ति ने जबाव दिया-महानुभाव ! मैंने कोई धन मुफ्त में नहीं लिया है, उसके बदले में अपनी नाक दी है तब कहीं जाकर के धन का पिटारा लिया है । मैंने कोई मुफ्त

में नहीं लिया है यदि धन वापस लेना है तो मेरी नाक मुझे वापस दी जाय धन मैं वापस कर दूगा ।

व्यक्ति धन को प्राप्त करने के लिए, वैभव को प्राप्त करने के लिए कितने पापड वेलता है । डण्डा भी खाता है अपनी नाक भी गवाता है । जरा स्वय के भीतर में उतरने का प्रयास करें तो आचार्य भगवन्त का सूत्र समझ में आ जाएगा । व्यक्ति अपनी इज्जत को महत्व नहीं देता । व्यक्ति वैभव को महत्व देता है क्योंकि वर्तमान का समय ही इस तरह का है । व्यक्ति विचार करता है कि यदि मेरे पास धन है, वैभव है तो इज्जत अपने आप मिल जाएगी । यदि मेरे पास वैभव है तो मुझे अपने आप मच के ऊपर भाषण देने को स्थान मिल जाएगा । यदि मेरे पास वैभव है तो अपने आप प्रतिष्ठित व्यक्ति मेरे गले में फूल मालाए पहना देगे । यहा पर आचार्य भगवन्त धन के विषय में बडी रहस्यमरी वात फरमा रहे हैं । जब शिष्य ने पूछा कि भगवन्त ! व्यक्ति किस कारण से मूर्च्छा करता है ? व्यक्ति किस कारण से आसक्ति रखता है ? आचार्य भगवन्त उसे समाधान देते हैं। सम्यक् चिन्तन यदि व्यक्ति का हो जाय तो अपने आप मूर्च्छा समाप्त हो जाए अपने आप आसक्ति समाप्त हो जाय, हमारा चिन्तन अभी दूसरा है ।

सूत्र के भीतर में हम उतरने का प्रयास करें तो हमारी सारी शकायें दूर हो जायें हमें सारे समाधान मिल जायें और अपने भीतर में चलने के लिए राजमार्ग हमारे सामने उपस्थित हो जाय । आचार्य महाराज कहते हैं—सम्यक् चिन्तन । और हमारा चिन्तन विल्कुल दूसरा है । व्यक्ति जिस व्यक्ति के साथ में अन्याय की चाल चलता है । उस व्यक्ति के स्थान पर स्वय को खडा कर के देखें तो निश्चित रूप से व्यक्ति का चिन्तन बदल जाएगा और वह कभी भी अन्याय नहीं कर पायेगा । महाभारत में यही बात कही आत्मन प्रति-कूलानि, परेषा न समाचरेत् ।

यह विचार नहीं करता व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के साथ मे अन्याय करते हुए कि आज मैं इस व्यक्ति के साथ में अन्याय करता हु, इसे पता चलेगा तव कितना दर्द होगा और यदि कोई व्यक्ति मेरे साथ अन्याय करेगा तो मुझे कितना दर्द होगा ? यदि इस दृष्टिकोण से विचार करें इस दृष्टिकोण से चिन्तन करें तो सारी समस्याए अपने आप निरस्त हो जाए । मगर हमारा चिन्तन इस बारे में विपरीत है । दूसरों के साथ में अन्याय करते हैं तो अपने मन में फूले नहीं समाते कि क्या मेरी बुद्धि है ? किस प्रकार का मेरा बुद्धि वैभव है ? मैंने उसे ठग लिया लेकिन जब स्वय ठगा जाता है तो उस समय मे आखों में से आसू बहाते हैं इस ससार को गालिया देते हैं व्यक्तियों को गालिया देते हैं कि ये समाज किस प्रकार का है ? न्याय का कोई सूत्र ही उपस्थित। न रहा, न्याय का जमाना ही शेष न रहा व्यक्ति आक्रोश व्यक्त करने लग जाता है ।

मि जटा शकर का एक बार चेहरा उतरा हुआ था । मित्र पास में बैठे थे । मित्रों

ने कहा कि भाई साहब । आज आपका चेहरा उदास क्यों लग रहा है ? जटा शंकर ने कहा कि अब मैं तुम्हें क्या बताऊं ? कहने की बात नहीं रही । अरे जमाना कितना खराब आ गया । दुनिया कितनी बदल गई । सारी दुनिया से ईश्वर का नाम ही उठ गया । सत्य का जमाना ही समाप्त हो गया । 'ये क्या बात हो गई, आज आप अचानक समाज को, दुनिया को, संसार को गालियां दे रहे हैं । क्या बात हो गई ?' अरे मैं क्या बताऊं ? आज मैं ट्रेन से यात्रा कर रहा था । जब मैं उतरने लगा तो देखा, मेरा छाता कोई उठा कर ले गया । मेरा नया का नया छाता कोई व्यक्ति चुरा करके ले गया । जिन्होंने सुना, मन में बड़ा दर्द हुआ । इसका नया छाता चोरी चला गया । उसने कहा–भलाई का कोई जमाना है । चारों ओर बुराई ही बुराई व्याप्त हो गई । मेरा नया का नया छाता ही चुरा कर ले गया । ये कैसा जमाना आ गया । लेकिन मित्रों के मन में एक शंका आ गई । मित्रों ने कहा कि भाई साहब आपके पास नया छाता कहां से आया। हमने कभी देखा नहीं, आपके पास में एक नया छाता । कब खरीदा आपने ? कितने में खरीदा ? किस दुकान से खरीदा, किस शहर से खरीदा ? जटा शंकर ने कहा कि भाई साहब । अब मै आपको क्या बताऊं । अरे मैंने छाता तो कभी खरीदा ही नहीं था । अरे ! अभी 15 रोज पहले ट्रेन से यात्रा कर रहा था । मेरे पास में फटा पुराना छाता था । मेरे सामने एक भाई साहब बैठे हुए थे । बिल्कुल नया छाता था उनके पास में। जब मै ट्रेन से उतरने लगा तो मैंने अपना फटा पुराना छाता तो छोड़ दिया और उनका नया छाता ले लिया । बस नया छाता मेरे पास मे आ गया । लेकिन जमाना कितना बदल गया । कितना बुरा आ गया । मेरा नया का नया छाता चला गया । व्यक्ति बात करते हुए यह नहीं सोचता कि जब वो स्वयं नया छाता दूसरों का चुरा लाया था, उठा लाया था, तब जमाना बड़ा अच्छा था, तब दुनिया बड़ी अच्छी थी क्योंकि स्वयं ठग बना हुआ था । स्वयं ने दूसरों को ठगा था, तब तो सारी दुनिया उसके लिए स्वर्ग के समान थी । लेकिन जब स्वयं की चीज चली जाय तब व्यक्ति के भीतर में दर्द हो जाता है । व्यक्ति अन्याय इसीलिए करता है कि वो स्वयं अपनी स्थिति को उस व्यक्ति के स्थान पर रखकर नहीं देखता । यदि स्वयं को उस व्यक्ति के माहौल में रखकर चिन्तन करके देखें कि आज मैं अन्याय करता हूं, कल कोई मेरे साथ में अन्याय करेगा । यदि इस प्रकार का सम्यक् चिन्तन हो जाये तो परिणाम बदल जाये । यहां पर आचार्य भगवन्त शिष्य की शंका समाधान करते हुए कहते है कि चिन्तन किस प्रकार का होना चाहिए । "आत्मन· प्रतिकूलानि, परेषा न समाचरेत्" अर्थात् वह काम तुम कभी न करो जो काम कोई दूसरा व्यक्ति तुम्हारे साथ में करे तो तुम्हें पीड़ा हो, तुम्हें दर्द हो । तुम जिसके साथ ऐसा व्यवहार करोगे उन्हें दर्द होगा । उसे भी तो उतनी ही पीड़ा होगी, यदि यह चिन्तन हमारे भीतर में उतर जाये तो हमारा सारा व्यापार सुधर जाये, हमारी दुकानों के ऊपर परमात्मा की

तस्वीरों का लगना सार्थक हो जाये । हमारा सारा जीवन न्यायपूर्ण बन जाये । इस चिन्तन को हमें स्वय के भीतर में उतारना है । आचार्य भगवन्त सबसे पहले कहते हैं कि न्याय से उपार्जित द्रव्य होना चाहिये । जब शिष्य पूछता है कि व्यक्ति अन्याय किस कारण से करता है । आचार्य भगवन्त समाधान देते हैं–मूर्च्छा के कारण आकाक्षा के कारण आसक्ति के कारण । जब शिष्य वापस ये सवाल पूछता है कि मूर्च्छा कैसे टूटे ? आचार्य भगवन्त कहते हैं–सम्यक् चिन्तन से । शिष्य वापस सवाल पूछता है कि सम्यक् चिन्तन किस प्रकार का हो । यहा पर आचार्य भगवन्त कहते हैं वैसा कार्य कभी दूसरों के साथ न करो जो कार्य स्वय के साथ किसी अन्य व्यक्ति के द्वारा होने पर पीडा होती हो । यदि यह सम्यक् चिन्तन हमारा बन जाये तो निश्चित रूप से हमारा प्रवेश श्रावकत्व के जीवन में हो जाये श्रावकत्व की भूमिका हमारे भीतर में उपस्थित हो जाये ।

आज इतना ही ।

8. प्रभुजी ! मन मंदिर मे आवो

अनंत उपकारी जिनेश्वर परमात्मा ने केवल ज्ञान की सम्पदा को प्राप्त करने के पश्चात् करूणा भाव से भरकर देशना दी।

किस प्रकार व्यक्ति परमात्मा के आमंत्रण को स्वीकार कर सके? हमे स्वीकृति की भूमिका का निर्माण करना है। परमात्मा का आगमन, अपूर्व ज्ञान का आगमन, अपूर्व प्रकाश का आगमन, ह्दय की अन्तरात्मा मे हो जाय। लेकिन अभी तक हमारा दृष्टिकोण परमात्मा की ओर उन्मुख नहीं बना।

तीन तरह की आत्माएँ हैं- अन्तरात्मा, बहिरात्मा और परमात्मा। अभी तक हम बहिरात्मा में भटके हुए हैं। अन्तरात्मा एक ओर परमात्मा को देखती है और एक ओर बहिरात्मा को देखती है, बिल्कुल दो दिशाओ मे है। एक दिशा मे बहिरात्मा स्थित है और दूसरी ओर परमात्मा का प्रकाश। हमारी अन्तरात्मा जब तक बहिरात्मा की ओर दृष्टिपात करेगी, जब तक बहिरात्मा के साथ जुडाव है तब, तक परमात्मा के साथ संगम नहीं हो सकता। उस दृष्टि से, उस ओर से मन को हटाकर परमात्मा के चिन्तन मे, हमारा मन हो तो हमारी अन्तरात्मा में परमात्म भाव का आविर्भाव हो जाय।

लेकिन उसके लिए परमात्मा के साथ अपने भावो को, अपने परिणामो को जोडना होगा। जब तक हमारी दृष्टि बहिरात्मा की ओर रहेगी, तब तक आत्म दशा का, निजदशा का कोई भाव उपस्थित नहीं हो सकता। स्वभाव दशा में जाने के लिए विभाव दशा से छुटकारा पाना होगा। विभाव दशा से स्वयं को मुक्त करना होगा। तभी हम स्वयं के भीतर में पहुँच पायेंगे। उपस्थित हो पायेंगे।

अपने भीतर में जाने के लिए, परमात्म तत्व को प्राप्त करने के लिए गुणों का प्रवेश अपने भीतर में करना होगा। एक बच्चे ने--- उसके सामने बहुत सारे बच्चे खडे थे, उनसे सवाल पूछा- कि तुम ऐसे प्राणी का नाम बता सकते हो, कोई आत्मा का, कोई व्यक्ति का जो शेर की गुफा में चला जाय, भीतर बब्बर शेर बैठा हो- ऐसी गुफा

में चला जाए और फिर भी वह अपने जीवन को बचाकर वापस लौट आये निर्भय होकर लौट आये है कोई ऐसा प्राणी!

एक बच्चे ने बड़ा सुन्दर जवाब दिया। उस बच्चे ने जवाब दिया- मैं जानता हूँ कि एक प्राणी ऐसा है जो शेर की गुफा में आराम से जा सकता है। उस बच्चे ने पूछा- ऐसा कौन सा प्राणी है बताओ? बच्चे ने कहा- शेर। शेर स्वयं अपनी गुफा में आराम से जा सकता है और निर्भय होकर के वापस लौट सकता है वहाँ पर अन्य कोई व्यक्ति प्रवेश नहीं कर सकता। शेर की गुफा में शेर ही प्रवेश कर सकता है।

उसी प्रकार परमात्मा की गुफा में प्रवेश करना है तो स्वयं को भीतर में उतारना होगा। हल्की आत्मा ही वहाँ पर प्रवेश कर सकती है जो व्यक्ति बहिरात्मा से जुड़ा है जो व्यक्ति विभावदशा से युक्त बना बैठा है जिस व्यक्ति के हृदय में संसार की वासनाएँ भरी हुई हैं उस व्यक्ति का प्रवेश शेर की गुफा में नहीं हो सकता। परमात्मा की गुफा में नही हो सकता। परमात्मा की गुफा में प्रवेश करने के लिए, आत्म दशा की गुफा में प्रवेश करने के लिए स्वयं को जानना होता है। स्वभाव दशा से युक्त होना होता है।

परमात्मा की सारी देशना स्वभाव दशा को जानने के लिए ही है।

गणधर गौतम ने परमात्मा से पूछा- परमात्मन्! जीवन का उद्देश्य क्या? जीवन को किन कार्यों में लगायें जीवन के क्षणों का कैसे उपयोग करें? परमात्मा ने बड़ा सुन्दर जवाब दिया- हम हमेशा सुनते हैं।

परमात्मा ने फरमाया- 'सच्चं समभिजाणाहि' परमात्मन् कहते हैं कि जीवन का उपयोग सत्य जानने में करो आत्म दशा को जानने के लिए करो। क्योंकि वही हमारा परम सत्य है बाकी सारी व्यर्थ की भ्रमणाएँ हैं व्यर्थ की कल्पनाएं हैं केवल सत्य को जानना यही वास्तविक स्थिति है।

परमात्मा ने इस शरीर का उपयोग इस जीवन का उपयोग सत्य को जानने के लिए करने का उपदेश दिया। हम स्वयं की ओर निगाहें डालकर देखें कि हम किस तरह से स्वयं की बुद्धि का स्वयं के वैभव का और स्वयं के जीवन का उपयोग करते हैं? अपने स्वभाव को जानने के लिए जरा भी हम बुद्धि का उपयोग नहीं करते। बुद्धि विलास का टोटल उपयोग केवल संसार के लिए करते हैं। बाहर के लिए करते हैं।

ये सारे भ्रमजाल ये सारा बुद्धि वैभव काल्पनिक है। केवल कल्पनाओं से हमें राजी रखता है पुष्ट करता है और हम भीतर में उतरने के लिए जरा भी पुरुषार्थ नहीं करते। जरा इस तर्क जाल को देखें बुद्धि वैभव को देखें।

मि. जटा शंकर एक बार कपड़े की दुकान पर पहुँच गया। कपड़े की दुकान पर जाकर उसने उस सैल्समैन को आदेश दिया कि भाईसाहब! आप मुझे तीन सौ रूपये की एक साड़ी दिखाए। साड़ी उसे दी बड़ी अच्छी लगी। तीन सौ रूपये की साड़ी को

वडी देर तक देखता रहा, टटोलता रहा, देखने के बाद जटा शंकर ने उस दुकानदार को फिर अपने पास में बुलवाया और कहा- भाई, तीन सौ रूपये की साड़ी तो वापस ले लो और मुझे ड़ेढ सौ रूपये की दो साडियाँ दे दो।

दुकानदार ने कहा- जैसी आपकी अच्छा। तीन सौ वाली साड़ी को भीतर में रख दी और डेढ सौ की दो साड़ियाँ उसे पकडा दी। जटा शंकर दोनों साडियाँ लेकर रवाना होने लगा। दुकानदार ने आवाज दी और कहा- मि जटा शंकर जी! रूपये तो देकर जाइये। साडियाँ तो तुम लेकर जा रहे हो, मगर इसका विल तो चुकाकर जाओ।

जटा शंकर ने कहा- किस वात के पैसे? किन साडियों के पैसे? दुकानदार बड़ा विचार में पडा, दिन दहाडे ये क्या- भई साडियाँ मेरी दुकान से ले जा रहा, ऊपर से यह पूछ रहा है कि किस वात के पैसे? कहा- यह तुम जो दो साडियाँ ले जा रहे हो, इनके पैसे दो। जटा शंकर ने कहा- मैं जो कहता हूँ, इसे ध्यान पूर्वक सुनो। मैं यह कहता हूँ कि मैंने ये दो साड़ियाँ डेढ सौ रूपये की ली हैं, ये साड़ियाँ उस 3 सौ रूपये की साडी के वदले में ली हैं।

दुकानदार ने कहा- भाई! उस साडी के बदले में इन साड़ियों को लिया है तो उसी साडी के पैसे दे दो भाई! जटा शंकर ने कहा- वह तीन सौ रूपये वाली साडी मैंने खरीदी ही नहीं तो पैसे किस वात के दूँ? दुकानदार वड़ा परेशान हुआ, इस तर्क को सुनकर।

न मालुम यह कैसी बात कर रहा। बेचारा दुकानदार वहीं खड़ा रहा गया। व्यक्ति का बुद्धि वैभव किस तरह से प्रश्न खडे करता है, किस तरह से बुद्धि का उपयोग संसार के लिए करता है? यदि इसी प्रकार बुद्धि का उपयोग स्वयं की आत्मा के लिए करने लग जाय तो, स्वयं की स्वभावदशा में उपस्थित होने के लिए बुद्धि वैभव का उपयोग कर ले तो निश्चित रूप से परमात्मा के आमंत्रण को पाने की भूमिका का निर्माण हो जायेगा।

जरा चिन्तन करें, जरा विचार करें, प्रातकाल उठकर के। हम परमात्मा के मन्दिर में जाते हैं, परमात्मा के गुणों की व्याख्या करते हैं, वहाँ पर हम भीतर के भावों को शब्दों के द्वारा, गीतों के द्वारा अभिव्यक्त करते हैं और परमात्मन् से कहते हैं कि वह पल कब आएगा, जब आपका निवास मेने भीतर में हो जाएगा। परमात्मन्! मेरे हृदय में आपकी प्रतिष्ठा हो जाय, मेरे सिंहासन पर आप विराजमान हो जाय।

आप जरा चिन्तन करें कि हम परमात्मा की प्रार्थना तो कर लेते हैं लेकिन कभी चिन्तन किया कि परमात्मा को हम बुला रहे हैं किन्तु अभी तक परमात्मा के लिए सिहासन का निर्माण किया या नहीं।

यदि सामान्य व्यक्ति को अपने घर पर बुलाया हो, जवाई वगैरह को घर पर बुलाना हो तो घर का वातावरण बिल्कुल विशुद्ध बन जाता है और खाने पीने की सामग्री में भी परिवर्तन आ जाता है, कोई बड़ा व्यक्ति आने वाला है, कोई सत्ताधीश

व्यक्ति पहुँचने वाला है अपनी नजरों से जिसे हम बडा व्यक्ति कहते हैं मन में सम्मान की दृष्टि रखते हैं यदि उस व्यक्ति को अपने घर पर बुलाना हो तो सारा घर साफ हो जाता है। मकान की सारी गन्दगी साफ हो जाती है.

चिन्तन करें। हम सामान्य व्यक्ति के लिए इतनी तैयारियाँ करते हैं। हम परमात्मा को आमंत्रण देते हैं भीतर में बिठाना चाहते हैं लेकिन कभी सोचा कि इसके लिए तैयारियाँ कितनी होनी चाहिए? हमारे भीतर में न मालूम कितने काँटे कंकर भरे पडे हैं राग और द्वेष का कचरा भरा पड़ा है सबसे पहले उसे तो साफ करें, उसे तो निकालें।

परमात्मा तो हमारे दरवाजे पर प्रतिपल दस्तक दे रहा है। प्रतिपल सामने खडा है केवल ज्ञान की भूमिका चारों ओर लहरा रही है लेकिन हमें अपनी भूमि की सफाई करनी होगी तो उसी पल हमारे भीतर में परमात्मा का आगमन हो जायेगा भीतर में ज्ञान प्रकट हो जायेगा।

बाहुबली ने इतनी तपस्या की इस प्रकार से खडे हो गये जैसे कोई ठूठ खडा हो जैसे कोई वृक्ष खड़ा हो लताओं ने उन्हें वृक्ष समझकर चारों ओर से घेर लिया कई चिड़ियाओं ने घोंसले बना लिये उनके ऊपर, ऐसे बाहुबलि राजर्षि मुनि महाराज खडे थे लेकिन ज्ञान का प्रकाश भीतर में फिर भी नहीं हुआ इतनी तपस्या कर लेने पर भी थोड़ा सा कचरा शेष बच गया था थोडे से कचरे के कारण ही परमात्मा का आगमन नहीं हो सका थोड़े से कचरे के कारण ही ज्ञान प्रकट नहीं हो सका।

ध्यान रहे। भीतर को जानने के लिए स्वभाव दशा को उपलब्ध करने के लिए प्रतिशत की बात नहीं चलती वहाँ पर बहुमत की भी बात नहीं चलती वहाँ पर तो सर्वमत की बात चलती है। यदि थोड़ा सा भी कचरा शेष है तो वह दीवार का काम करेगा।

हल्के से कचरे को भी समाप्त करना है ।

कितनी उन्होंने तपश्चर्या की कितनी उन्होंने आराधना की ऐसा होने पर भी थोडा सा कचरा ज्ञान में बाधक बन गया।

हम चिन्तन करें। हमारे भीतर में न जाने कितना कचरा भरा पड़ा है- दुर्गुणों का वासनाओं का कषायों का राग और द्वेष का न मालूम किना कूडा करकट भीतर ही भीतर सड़ रहा है जमा हुआ है। उसे निकाले बिना परमात्मा का आगमन हमारे भीतर में नहीं हो सकता।

जब व्यक्ति स्वभाव दशा का चिन्तन करने लगता है तो निश्चित रूप से वह चिन्तन फावडे का काम करता है वह चिन्तन भीतर में रहे सारे कूडे करकट को बाहर निकालकर फैंक देता है। बाहुबली को ज्योंही बहिनों के द्वारा उद्बोधन मिला भीतर का कचरा साफ हुआ ज्योंहि कूड़े करकट को बाहर निकालने के लिये कदम बढ़ाए उसी

पल केवल ज्ञान प्रकट हो गया। वह तो आस-पास में ही था, भीतर ही था और प्रकट हो गया।

हमें भी भीतर के कूडे करकट को साफ करने की आवश्यकता है, उसे ही जीवन का लक्ष्य बनाना है। परमात्मन कहते हैं- सत्य को जानने के लिए जीवन का उपयोग करें। हमें जितनी भी अनुकूलताऐं उपलब्ध हुई, उनका आत्मदशा के अनुभव के लिए हम सारा प्रयत्न करें तो निश्चित रूप से हमारा प्रवेश भीतर में हो सकेगा। स्वभाव दशा में हमारा प्रवेश हो सकेगा। तभी हम शेर की गुफा में जाने के अधिकारी बन जायेंगे। यदि शेर जितना बल हमारे पास मे हो तो ही व्यक्ति जहाँ पर जिन्दा शेर बैठा है, उस गुफा मे जाने का अधिकारी बन सकता है।

हमें भीतर में उन्हीं गुणों का प्रवेश कराना है ताकि परमात्मा की गुफा में, परमात्मा के दिव्य महल में, स्वयं की आत्मा के आलोक में हमारा प्रवेश हो सके। सत्य में हमे रमण करना है, यही हमारे जीवन का उद्देश्य है।

आचार्य हरिभद्र सूरि इसी लक्ष्य को केन्द्र में रखकर एक एक गुण फरमा रहे हैं। इन गुणों के द्वारा व्यक्ति यदि जीवन का निर्माण करे, इस गुणों का भीतर में उपयोग करे तो वह व्यक्ति अपने अन्तिम लक्ष्य को उपलब्ध कर सकता है।

आचार्य भगवंत ने सबसे पहले धन के विषय में बात कही। उसके बाद में विवाह के विषय में बात कही। विवाह सांसारिक जीवन की मूल नींव है, यदि उसके ऊपर ध्यान न दिया जाय तो निश्चित रूप से व्यक्ति की गाडी भटक सकती है, अटक सकती है, वह गाडी धर्म के मार्ग पर आगे नहीं बढ सकती।

भगवती सूत्र में कई स्थानों पर कहा है-- जहाँ पर भी पति पत्नी की बात चली, पत्नी को बहुत बडा विशेषण दिया और कहा- किस तरह वह धर्म की सहायिका बन जाये, यदि हम कुल और शील की ओर ध्यान न दें। यदि हम आचार और खानदान की ओर ध्यान न रखे तो निश्चित रूप से सारा जीवन गडबडा जाय। सारा जीवन हार जाय।

जीवन के जीतने में और जीवन के हारने में सबसे बडी भूमिका उस दीवार की रहती है जो हमारे चारों ओर रहती है। जिस प्रकार का परिवार होगा, जिस प्रकार का वातावरण होगा, उसी प्रकार व्यक्ति का चिन्तन होगा।

पात्र का चुनाव शील और कुल को देखकर न किया जाय, कुल शील में भी शील की ओर ज्यादा ध्यान नहीं दिया जाय तो निश्चित रूप से वह अशान्ति- अशान्ति में ही जीवन को हार बैठेगा।

समान आचार होना चाहिए। समान कुल होना चाहिए। व्यक्ति केवल रूप को महत्व देता है, केवल वैभव को महत्व देता है। उस वक्त में चिन्तन नहीं करता, वह

चाहता है जो कन्या आए, लड़की आए, वह 8-10 लाख रूपये लेकर के आये सौफा सेट फ्रिज टीवी वगैरह लेकर के आये सारे साधन साथ लेकर आये।

स्वयं की स्थिति भले ही कमजोर हो लेकिन चाहते हैं कि सामने वाला पात्र आये तब साथ में खूब सारे साधन लेकर आये। जब इस तरह की विसंगति जीवन में पैदा होती है तो फिर हमारा जीवन कैसा होगा? आने वाला पात्र अधिकार रखकर रहेगा। फिर आने वाला पात्र प्रतिफल मन में अहं के भाव रखकर रहेगा उस का चिन्तन उसी प्रकार का होगा फिर सासू जी चाहें कि बहु आये खूब सारा पैसा लेकर आये और मेरी खूब सेवा करे, ऐसा कभी संभव नहीं। वह सेवा करेगी नहीं बल्कि सेवा करायेगी। मगर सासु के मन में ये ही कल्पनायें दौड़ती है कि वह आयेगी खूब धन सम्पदा साथ लेकर आयेगी। फिर भले ही बाद में डंडों से सेवा करे, लातों से सेवा करे। बाद में उस तरह की विसंगति पैदा हो जाती है। यहाँ आचार्य श्री समान कुलशील की बात करते हैं यदि समान कुलशील हो तो इस प्रकार की विसंगतियाँ पैदा नहीं होती।

विसंगतियों के ही ये परिणाम होते हैं कि व्यक्ति के जीवन में अशान्ति रहती है।

मि॰ जटाशंकर का विवाह हुआ। उसके जीवन में ऐसी विसंगति आई कि विवाह तो हो गया लेकिन बहु का स्वभाव बड़ा विचित्र था। उसके मन में एक ही बात थी– माँ ने पहले ही कह दिया था- बेटी तुम जा तो रही हो लेकिन पहले ही क्षण में तुम्हारा जैसा व्यवहार होगा, वैसा ही तुम्हारा जीवन होगा। तुम ऐसा प्रभाव जमाना– अंग्रेजी में कहावत है- "फस्ट इम्प्रेशन इज द लास्ट इम्प्रेशन' तुम जा रही हो ससुराल लेकिन ऐसी मत होना कि सासु तुम पर हावी हो जाये तुम्हें सासू पर हावी होना है पति की नस को पकड़ कर रखना है सभी को अपने वश में करके रखना है इस तरह का व्यवहार करना इस तरह की वर्तना करना । विचारों का एटमबॉब माँ से प्राप्त कर ससुराल की दहलीज पर अपना कदम रखा।

कुछ दिनों तक तो नई बहू थी इसलिए कुछ भी काम नहीं करवाया गया। जब 10-15 दिन बीत गये। बहु ने सोचा- अब सासुजी मुझसे काम करवाना चाहती है अब इस प्रकार की योजना मुझे बनानी है कि मैं सब पर हावी हो जाऊँ और मुझे कभी काम करना न पड़े।

एक दिन सुबह ही सुबह उसने योजना बनाई। इधर मि॰ जटा शंकर तो आफिस चला गया था। सासु जी ने देखा- आज बहु जी बाहर नहीं आई क्या बात है? वह बहु के कमरे में गई। देखा तो बहु की हालत बड़ी विचित्र हो रही थी। बाल बिखरे हुए थे सिर भी हिला रही थी बड़ी देर से और धीरे-धीरे आँखें खोलकर देखती भी जा रही थी। जब देखा कि सासु जी आ गये है तो सोचा कि अब तो मुझे वास्तविक अभिनय करना है। सासु ने बहु को देखा तो उसने पूछा कि आपकी तबीयत कैसी है? बहु ने तुरंत आवाज को बदला और कहा कि मैं यहाँ से जाने वाली नहीं। सासू ने तो पूछा था कि तबीयत कैसी? मगर बहु ने कहा- मैं यहाँ से जाने वाली नहीं। ज्योंही जवाब में शब्दों में कर्कश आवाज निकली त्योंही वह सास समझ गई कि लगता

है, बहु के ऊपर कोई भूत सवार हो गया है। भूतनी-प्रेतनी आ गई है, सासु पुराने विचारों की सीधी सादी ग्रामीण महिला थी।

डर कर सासु जी तुरंत दीपक, धूप वगैरह लेकर आई। दीपक सामने रखा, हाथ जोडे और कहा- मेरी बहु को छोड दो। बहु ने कहा- मैं इसे छोडने वाली नहीं, मैं तो इसके साथ ही रहूँगी। कई रोज तक इसी प्रकार का नाटक चलता रहा। रोज भूतनी प्रवेश कर जाती। बिल्कुल व्यर्थ की भूतनी! 5-7 रोज तो इसी तरह से गुजरे। माँ ने बेटे से कहा- बहु की खबर वगैरह लो। कोई तांत्रिक, मांत्रिक को बुलाओ, बहु को दिखाओ। इसका शरीर सूखकर कांटा हो गया है।

जटा शंकर का इन बातों में विश्वास वगैरह नहीं था। उसने सोचा- ये सब तो ऐसे होते रहेंगे। वह वापस चला गया आफिस। इधर एक रोज बहु ने विचार किया- सासुजी पर मेरा प्रभाव जर्बदस्त हो गया लेकिन अब ऐसा अभिनय करना है कि सासुजी मेरे सामने सिर भी न उठा सके।

एक दिन ऐसा ही अभिनय किया। शाम के पाँच बज रहे थे, बाल वगैरह बिखेर दिये, सिर हिलाने लगी। सासु जी धूप दीपक लेकर पहुँची।

ज्योंही सासुजी ने कहा कि मेरी बहु को छोड दो, त्योंही उसने कहा- मैं यहाँ से जा सकती हूँ लेकिन मेरी एक शर्त आपको माननी होगी तो मैं सदा सदा के लिए इसे छोड जाऊँगी। मेरी शर्त है कि इसकी सासु काला मुँह करे, सिर मुंडाये, काले कपडे पहने, गधे की सवारी करके सारे नगर में फिर कर मेरे सामने मस्तक झुकाये तो मैं सदा सदा के लिए यहाँ से जा सकती हूँ। ऐसी बात है तो सासु ने ऐसा करने के लिए हाँ भर दी। मेरे ऐसा करने से यदि मेरी बहु का यह भयंकर कष्ट सदा के लिए समाप्त हो जाता है तो मुझे कोई एतराज नहीं।

शाम का सम्य था 6 बजे बेटा घर आया। माँ ने बेटे से सारी बात कही और कहा- आज बहु के रोग के निवारण का शानदार उपाय मिल गया। जल्दी से नाई को बुलाओ, बाल कटवा लूँ, मेरे बाल तो फिर आ जायेंगे बहु का रोग सदा सदा के लिए नष्ट हो जायेगा, चला जाएगा। सासु बडी भोली थी।

बेटे ने जब सारी बात सुनी तो समझ गया। मि· जटा शंकर बडा उस्ताद था, उस ने कई वर्ष जयपुर का पानी पीया था। उसने विचार किया- ये सब माया जाल है। मेरा नाम जटा शंकर है। देखें, अब मैं इसकी जाल में फंसता हूँ या मैं इसे अपनी जाल में फंसाता हूँ। जटा शंकर ने कहा- माँ! आप आराम से बैठो। मैंने इनकी शर्त समझ ली है, सारा उपाय अभी करता हूँ, रात्रि के अन्दर वह दौड़ता हुआ ससुराल गया। पास में ही था, ज्यादा दूर नहीं था।

सासु ने जवाँई से पूछा- बेटे तुम अभी रात्रि में कैसे आये हो? बेटी तो सकुशल है न। जटा शंकर ने कहा- सासुजी! मैं क्या बताऊँ आपकी बेटी की तबीयत दिनों दिन खराब होती जा रही है। खूब सारे उपाय किये, मगर आज भूतनी ने एक शर्त बता दी कि मैं चली तो जाऊँगी लेकिन वह शर्त पूरी होनी चाहिए।

मुझे यह शर्त बताते शर्म आ रही है। सासु ने कहा- बतानी ही पड़ेगी। तब जटा शंकर ने कहा- उसने बताया है कि मैं जिस लड़की पर हावी होकर बैठी हूँ, उसकी माँ काला मुँह करके काले ही कपड़े पहने गधे पर बैठ कर सारे नगर नें घूमकर मेरे चरणों में गिरे तो मैं चली जाऊँगी।

जटा शंकर की सासु ने विचार किया- ऐसा करने से मेरी बेटी का दर्द सदा के लिए समाप्त हो जाता है तो ऐसा करने में क्या परेशानी है? उसने कहा- बेटा! मैं ऐसा करने को तैयार हूँ।

सुबह ही सुबह माथा मुंडवा दिया गया सारी प्रक्रियाऐं यथोक्त की गई बेटी की माँ बेटी के पास पहुँच गई पहले से ही कह दिया था कि घूँघट निकाले रखना। जटा शंकर ने माँ को भी कह दिया कि आप थोड़ी देर कमरे में ही आराम करना बाहर मत आना।

इधर बहु सोच रही थी सुबह ही सुबह आज सासु जी जी मेरे चरणों में गिरेगी। कैसी विचित्र दशा होगी उसकी? मन में हर्ष का अम्बार फैल रहा था।

थोड़ी देर बाद गधे से उतर कर माँ आई चरणों में गिरी और कहा- मेरी बेटी को छोड़ दो। बहु ने तो ऐसा ही सोचा कि सासु जी चरणों में गिर पड़ी है अब उससे रहा नहीं गया उसने जोर से कहा 'देख बन्दी का चाला सिर मुँडा मुँह काला"।

उसने कहा- जरा देखें तो किस तरह का जाल मैंने रचा? कैसा अभिनय किया? जटा शंकर भी पास में खड़ा था। उसने कहा "देख बन्दे की फेरी अम्मा तेरी के मेरी" ।

यदि इस तरह का विवाह हो जाय तो जीवन में बड़ी विसंगति हो जाय। यहाँ आचार्य भगवंत कहते हैं कि व्यक्ति का सम्पूर्ण जीवन किस प्रकार धार्मिक बने। धर्म के क्षेत्र में हमारी जीवन गाड़ी का प्रवेश हो सके इसलिए आचार्य श्री इस सांसारिक बात पर जोर देते हैं। ये बातें बड़ी ऊपरी ऊपरी हैं फिर भी आचार्य म. जोर देते हैं क्योंकि आपका जीवन संसार के लिए नहीं है आप संसार की खाईयों में ही उतरना चाहते हैं लेकिन आचार्य श्री आपको आत्म-लक्ष्य तक पहुँचाना चाहते हैं इन सूत्रों के द्वारा।

समान कुल और समान शील है तो निश्चित रूप से ऐसी गाडी संसार के क्षेत्र से हट जाएगी और अपने भीतर में प्रवेश कर जाएगी। आत्मा के क्षेत्र में उस गाड़ी का प्रवेश हो जाएगा। वही मुख्य लक्ष्य है। इसी मुख्य लक्ष्य को अपने मस्तिष्क में धारण करना है। विभाव दशा में अनन्त भव गवाँ दिये अब अपने आपको उससे हटाये और स्वयं की चिन्तना को स्वभाव दशा में रमण करायें।

आज इतना ही।

9 प्रतिकूलता मे अनुकूलता

अनंत उपकारी जिनेश्वर परमात्मा ने केवल ज्ञान की सम्पदा को उपलब्ध करने के पश्चात् करूणा भाव से भर कर देशना दी और देशना के द्वारा किस प्रकार अपनी चेतना को प्राप्त करें? चेतना के भाव से परिचित हो जाये अपनी निजता से परिचित हो जाये अपने आन्तरिक कोष से परिचित हो जाय इसी विशुद्ध हेतु से आत्म तत्व का विश्लेषण किया बोधि मार्ग उपस्थित किया।

देशना के द्वारा अपने भीतर की करूणा को प्रवाहित किया। हम किम प्रकार उस करूणा को झेल सके किस प्रकार पात्रता को उपलब्ध कर सकें। यदि पात्रता उपलब्ध हो जाय परमात्मा के साथ अपने हृदय को जोडने की कला आ जाय परमात्मा के विज्ञान के साथ स्वयं की संगति बिठा दी जाय हमारे भीतर भी वही संगीत गूंज उठेगा। हमारे भीतर भी उसी सुगंध का फैलाव हो जाएगा। हमारे भीतर भी वही दिव्य आलोक प्रस्फुटित हो जाएगा। अपने विवेक को सम्यग् दिशा में मोडना है अपनी विचारधारा के प्रवाह को परमात्मा की दिशा में गंगोत्री की दिशा में मूल स्रोत की दिशा में हमें मोड़ना है घुमाना है और तो ही हम निजता से परिचित हो सकते हैं परमात्म तत्व से परिचित हो सकते हैं अपने भीतर की सम्पदा को उपलब्ध कर सकते हैं। परमात्मा तक हम अपना संदेश पहुँचाना चाहते हैं अपने भीतर की प्यास को परमात्मा के वाणी की जलधारा से बुझाना चाहते हैं।

किस प्रकार हम परमात्मा के पास अपना संदेश पहुँचाए, किस प्रकार भीतर की प्यास को परमात्मा के चरणों में निवेदित करें? यदि भीतर में समर्पण का आत्म साधना का आत्म लक्ष्य का संगीत बज उठे तो पल भर में हमारा सम्बन्ध परमात्मा से हो जाय परमात्मा के ज्ञान से हो जाय अभी तक उस दिशा में कोई पुरूषार्थ नहीं किया कोई प्रयास नहीं किया।

अध्यात्म योगी देवचन्द्र जी म फरमाते हैं— वे एक बार परमात्मा के चरणों में उपस्थित थे परमात्मा के दरबार में बैठे थे और समर्पण युक्त भक्तिभाव का झरणा उनके हृदय में फूट रहा था। परमात्मा के पास बैठ कर भीतर की दशा का अवलोकन हो रहा था और उस समय वे स्तवन फरमा रहे थे। वो चाहते थे कि परमात्मा के

साथ मैं अपने आपको जोड दूं। परमात्मा के चरणों में अपने आपको/अपनी निष्ठा को समर्पित कर दूँ, चरणों में उपस्थित हो कर के परमात्मा के साथ संवाद स्थापित करूँ।

"कागल पण पहुँचे नहीं, नहीं पहुँचे हो तिहाँ को परधान" मैं चाहूँ, तब भी कोई पत्र आप तक नहीं पहुँच सकता, मैं चाहूं तव भी दूत के जरिये मैं अपना संदेश नहीं पहुँचा सकता, क्योंकि वहाँ पर तो कोई पहुँच नहीं सकता, किसी का प्रवेश नहीं है।

"जे पहुँचे ते तुम समो"

अर्थात् परमात्म सम्पदा को वही व्यक्ति उपलब्ध कर सकता है। जिस व्यक्ति ने परमात्म गुणों को उपलब्ध कर लिया। परमात्मा के समकक्ष होकर ही परमात्मा के चरणों में पहुँचा जा सकता है।

परमात्मा के सामने हम अपनी झोली फैलाये खडे हैं लेकिन उस झोली में संसार की प्यास न हो, हम भूखे खडे हैं लेकिन उस भूख में संसार का संबंध न हो, हम प्यासे खडे हैं, हमारी प्यास संसार की वासनाओं से सम्बन्धित न हो।

परमात्मा के पास जाने के लिए तो परमात्मा के समान बनना पड़ता है, पृथक्त्व नहीं रहना चाहिए। पृथक्त्व भावना को समाप्त करने के बाद ही परमात्मा के चरणों में पहुँचा जा सक्ता है। वही हमारा लक्ष्य बने, वही हमारा उद्देश्य बने तो परमात्मा का अमृत हमारे भीतर को छू सकेगा और अपने भीतर में, अपने हृदय में अपूर्व शान्ति का आनन्द जाग उठेगा लेकिन हमारी क्रियाएँ, हमारा चिन्तन बिल्कुल सांसारिक बना रहता है। संसार की ओर, संसार की दिशा में हमारी गाड़ी के चक्के घूमते रहते हैं। संसार की धारा में हमारी नैया डोल रही है।

किस प्रकार दिशा में परिवर्तन आ जाय, चिन्तन धारा में परिवर्तन आ जाय, उपक्रमों में परिवर्तन आ जाय, हमारा सारा ज्ञान यथार्थता की ओर मुड़े। सारा ज्ञान बनावटीपन की ओर है, संसार की कल्पनाओं की ओर हमारा ख्याल है और उसी के लिए समस्त जीवन को, समस्त क्रिया कलापों को गंवा देते हैं। जरा चिन्तन करें। हमारी क्रियाएं किस प्रकार की हैं, हमारा ध्यान किस ओर है?

मि० जटा शंकर एक बार एक होटल के अन्दर पहुँचा। शाम का समय था, उसे उस होटल में रात बितानी थी, होटल के सारे कमरे भरे हुए थे। मैनेजर ने कहा- भाई साहब! आप किसी अन्य होटल में जाइए। वहाँ पर ठहरिये, यहाँ पर कोई कमरा खाली नहीं है। जटा शंकर ने कहा - मैं इतनी बार जयपुर आया, लेकिन इसी होटल में रूका। आज तक मैंने किसी अन्य होटल के दरवाजे नहीं खटखटाये। अब रात्रि का समय है और मुझे धक्का दे रहे हो। मैं पुराना जाना पहचाना तुम्हारा ग्राहक हूँ। मैनेजर उसे जानता था, मैनेजर ने बहुत मना भी किया लेकिन जटा शंकर ने कहा-मुझे तो सिर्फ रात बितानी है, कहीं किसी कोटडी में मुझे जगह दे दो, कहीं किसी स्थान पर बिस्तर लगवा दो। मैनेजर ने कहा - एक बात मुझे याद आई, एक कमरा ऊपर की मंजिल में खाली पड़ा है, वह कमरा मैंने किसी को नहीं दिया और दे भी ‌। सकता। तुम मेरे जाने पहचाने ग्राहक हो अत दे देता हूँ लेकिन तुम्हें बहुत

सावधान रहना होगा उस कमरे में कारण यह है कि उस कमरे के नीचे वाले कमरे में एक बड़े साहब ठहरे हुए हैं। साहब बहुत गुस्सेदार है क्रोध में भरे हैं लबालब। उस व्यक्ति ने न केवल अपने कमरे का किराया चुकाया है बल्कि उसके ऊपर जो खाली कमरा है उसका भी किराया चुकाया है।

और साफ-साफ कहा है - मेरे ऊपर वाले कमरे में कोई न रुके कोई न ठहरे। जरा भी आवाज हुई कि वो साहब तिलमिला जायेंगे। मैं तुम्हें वो कमरा दे तो सकता हूँ क्योंकि तुम मेरे बहुत पुराने ग्राहक हो कमरा दे तो सकता हूँ लेकिन चुपचाप तुम कमरे में जाकर सो जाना। जरा भी खटर पटर की आवाज मत करना। पैर वगैरह मत बजाना। दरवाजा बन्द करो तब भी बड़ी सावधानी से बन्द करना। नीचे वाले को जरा भी पता न चले नहीं तो बड़ा उपद्रव खड़ा हो जायेगा। बड़ी परेशानी हो जाएगी। जटा शंकर ने कहा - कोई बात नहीं मैं आराम से रह जाऊँगा। मैं जरा भी आवाज नहीं करूँगा। कमरे की चाबी उसे दे दी गई। जटा शंकर प्रसन्न होता हुआ मन में कोई गीत गुनगुनाता हुआ सीढ़ियों को पार कर कमरे के पास पहुँचा और दरवाजा खोला।

कमरे का दरवाजा खोल रहा था मन में अनेक विचार आ रहे थे मैनेजर की चेतावनी को वह भूल चुका था मैनेजर ने जो चेतावनी दी थी कि याद रखना कि कोई आवाज न हो उस बात को वह बिल्कुल विस्मृत कर गया था। कमरे को धड़ाम से खोला। उसकी आदत थी होटल का कमरा था घर का दरवाजा तो था नहीं जो टूटने-फूटने की जरा भी मन में चिंता हो।

होटल का पुराना दरवाजा था धड़ाम से खोला और अन्दर गया दरवाजे की बड़ी तेज आवाज हुई।उसने अपना एक जूता खोला और खोलकर एक तरफ धड़ाम से फैंका जोर से आवाज हुई। इधर जूते की आवाज हुई आवाज कान में पड़ी और याद आया कि मैनेजर ने चेतावनी दी थी कि इस प्रकार से रहना कि कोई आवाज न हो उसने तुरंत ध्यान दिया और दूसरा जूता बड़ी सावधानी से रखा। आराम से जाकर सो गया।

दो मिनट बीते होंगे कि किसी ने दरवाजा खटखटाया दरवाजा उसने खोला। सामने एक साहब खड़े थे। वह चेहरे से समझ गया कि आवाज नीचे पहुँच गई और नीचे वाला आदमी ऊपर आ गया। पता नहीं अब क्या उपद्रव खड़ा करेगा मारेगा पीटेगा या अन्य कुछ करेगा। उस व्यक्ति ने आते ही कहा - गुस्सा तो था नहीं उसने कहा - भाई साहब! क्या आप लंगड़े हैं? क्या आपके एक ही टांग है। जटा शंकर बड़ा परेशान हुआ। सोचा ये किस तरह की बात कर रहे हैं। मैं लंगड़ा नहीं हूँ। मेरे दोनों पांव सही सलामत हैं। सेठ साहब ने कहा- दूसरा जूता कहाँ है? जटा शंकर ने कहा- ये रहे दोनों जूते। सेठ साहब ने कहा - मैं नीचे के कमरे में ही ठहरा हुआ हूँ। एक जूते की आवाज सुनी किन्तु दूसरे की आवाज नहीं आई तो मैंने सोचा कि तुम लंगड़े हो या कुछ अन्य बात है यही देखने के लिए मैं आया हूँ।

हम दूसरे जूते की परवाह करते हैं, दूसरा लंगड़ा है या बहरा है दूसरा जूता खोला या नहीं इसकी हम चिन्ता करते हैं। हम अपनी जरा भी चिन्ता नहीं करते।

सभा का हर व्यक्ति मन मे इसी तरह की वात सोच रहा था। महामंत्री से पूछा गया, उसने भी कहा - आपके वस्त्र वडे शानदार दिखाई दे रहे हैं। इन सारी वातों को सुनकर राजा ने विचार किया, चलो मुझे ही ये वस्त्र दिखाई नहीं दे रहे। सबको तो दिखाई दे ही रहे हैं। हर व्यक्ति मन में यही सोच रहा था कि मुझे भले ही दिखाई नहीं देता है लेकिन सभी को तो दिख ही रहा है। सभी लोगों ने कहा- महाराज! आपने इतने सुन्दर वस्त्रों को धारण किया है तो हमारी इच्छा है कि सारे गाँव में आपकी शोभायात्रा निकाली जाये हाथी पर विराजमान करके।

सारे लोग भी देखे कि खुदा की वनाई हुई यह जोड़ी कितनी शानदार दिखाई दे रही है! राजा को विठाया गया हाथी के होदे पर। सभी लोगों के मुँह में ताले लगे हुए थे। सभी विचार कर रहे थे कि राजा का दिमाग पागल हो गया क्या? इन्हें पागल खाने पहुँचा दिया जाना चाहिए। लेकिन सभी ने यही कहा- क्या शानदार फव रहा है राजा इन खुदाई वस्त्रों मे? ऐसी सवारी तो हमने आज दिन तक नहीं देखी।

राजा की सवारी आगे बढी जा रही थी। एक स्थान पर ऐसा हुआ कि 8 वर्ष का लडका पास में खडा था। उसने कहा- पिताजी पिताजी! वो देखो, आज राजा नंगा बैठा है।राजा के कानों में ये शब्द पडे तो वह चमक गया कि वास्तव में उस दर्जी ने मुझे धोखा दिया है। वास्तव में वस्त्र वगैरह कुछ नहीं, मात्र कल्पनाओं के ये वस्त्र है। तुरंत राजा अपने महल में गया, वस्त्रादि धारण किए। दर्जी को बुलाया गया लेकिन दर्जी तो पहले ही भाग चुका था।

कल्पनाओं के वस्त्र धारण करते हैं और सोचते हैं कि कितने सुन्दर ये वस्त्र है? कल्पनाओं के वस्त्र धारण करके व्यक्ति प्रसन्न चित्त होता है।

केवल कल्पनाओं के, आशाओं, बनावटीपन के वैभव को प्राप्त कर के भीतर में बडे प्रसन्न होते हैं। परमात्मा की जो वाणी है, जितने भी साधु सन्त हैं, वे सभी उस 8 वर्ष के मासूम बच्चो की तरह हैं जो विल्कुल जैसा है, वैसा कह देते हैं, उसे जरा भी डर नहीं था कि मैं ऐसा कहूंगा तो राजा मुझे प्रताडित करेगा, मुझे दण्ड देगा। बस जैसा था, वैसा कह दिया। जैसा देखा, वैसा कह दिया। ये सारे ऋषि मुनि, सारे सन्त बच्चे का काम करते हैं। आपको सावधान करते हैं।

यदि सावधान हो जाय उस राजा की तरह। तो तुरंत भीतर की आँख खुल जाय, हमारा जीवन वदल जाय, हमारी दिशा बदल जाय। हमारा जीवन जो संसार की ओर भटक रहा, घूम रहा, परिवर्तित हो जाय, स्रोत की ओर, स्वयं के आत्मा की गंगोत्री की ओर हमारे कदम बढ़ जाय लेकिन अभी तक हमारा कोई लक्ष्य नहीं बना।

आचार्य हरिभद्र सूरिम इस ग्रन्थ के द्वारा इसी लक्ष्य को उजागर करना चाहते हैं। आचार्यम सूत्र देते हैं। किस प्रकार व्यक्ति इन सूत्रों को पकड़कर अपने गृहस्थ जीवन का निर्वाह कर सकेगा और साथ में अपने भीतर की यात्रा कर सकें। आचार्य भगवंत संसार को सुखी बनाने का काम कर रहे हैं। आचार्य भगवंत फरमाते हैं- "समान

कुलशील' बड़ी सुन्दर बात कही आचार सुशील होना चाहिए, जीवन पवित्र होना चाहिए।

यदि आचार कुशील हो तो जीवन में कुसंगतियाँ आ जाती हैं। सम्यक् चिन्तन हो तो विसंगति को भी हम अनुकूल बना सकते हैं। लेकिन मूल में तो विसंगति अशान्ति का कारण बनती ही है।

यदि आचार सम्यक है तो उसकी गाडी संसार की गाडी जो बड़ी टेढी है फिर भी उस गाडी का चक्का धर्म की ओर मुड सकता है। संसार की गाडी भीतर की दशा में सहायक बन जाती है कुल और शील समान होना चाहिए।

आप रोज सुनते हैं विजय सेठ और सेठानी की बात। जरा देखें-किस प्रकार प्रतिज्ञा का निर्वाह किया? कैसी कठिन प्रतिज्ञा? संसार में रहकर भी साधुत्व की आराधना। संसार में रहकर भी श्रमणत्व की साधना। मूल बात यही थी कि आचार में विसंगति नहीं थी। दोनों परमात्मा के आराधक थे। दोनों के भीतर में तत्त्वों को जानने की जिज्ञासा थी और इसी कारण दोनों की कठोर प्रतिज्ञा का निर्वाह हो गया।

बच्चे थे तब नियम ले लिया गुरू महाराज के पास में कृष्ण पक्ष में शील का पालन करूंगा। श्राविका गई साध्वी जी म के पास में और शुक्ल पक्ष में ब्रह्मचर्य के पालन का नियम ले लिया। और संयोग ऐसा बना कि दोनों का विवाह हो गया। पहली रात्रि में ही विजय सेठ ने कह दिया। अभी कृष्ण पक्ष के 3 दिन शेष हैं ब्रह्मचर्य व्रत लिया हुआ है 3 दिन के बाद संसार का प्रारम्भ होगा। ज्योंहि यह बात सेठानी ने सुनी तो कहा- प्राणनाथ यह तो बडी विचित्र बात हो गई। मैं शुक्ल पक्ष का नियम ले चुकी हूँ। कोई चिन्ता की बात नहीं। सेठानी ने तुरन्त कहा- आप दूसरा विवाह कर लीजिए। विजय सेठ ने विचार किया- जब प्रकृति ने दोनों का संयोग ऐसा कर दिया है तो सम्पूर्ण जीवन ब्रह्मचर्य में ही व्यतीत करेंगे।

गिरने के संसार में जाने के उपद्रव तो होते ही हैं तनाव के रास्ते तो मिलते ही है लेकिन यहाँ तो प्रकृति ने ऊचाईयों की ओर जाने के लिए सीढियाँ उपलब्ध करा दी है तो क्यों न इन सीढ़ियों का उपयोग कर लें।

उनका चिन्तन किस प्रकार का था? जरा ध्यान दें। दोनों ने एक साथ जीवन बिताया। किस प्रकार की परिपक्वता होगी? पुरूषार्थ कितना मजबूत होगा? मन की दृढ़ता मन के अन्दर की मजबूती कितनी दृढ होगी? उसका मूल कारण यदि खोजा जाय तो समान कुलशीलादि' । आचार समान होना चाहिए। वे आचारवान् थे तो गृहस्थ की गाड़ी में बैठ भी गये तो तुरंत श्रमणत्व की ऊचाईयों की ओर बढ़ चले — उड़ चले।

विजय सेठ व विजया सेठानी को जो अनुकूलता मिली उसका पूरा-पूरा उपयोग किया। संयोग का स्वागत किया।

हम जरा अपने भीतर का चिन्तन करें कि हमारी दशा कैसी है? हम केवल बाह्य कल्पनाओं को महत्व देते हैं, जगत की सारी चिन्ताऐं अपने मस्तिष्क में रखते हैं, अपने मस्तिष्क को बाह्य जगत की चिन्ताओं का पिटारा बनाकर रखते हैं, लेकिन स्वयं के भीतर में, स्वयं के चिन्तन में, अपने हित गुणों के विषय में जरा भी चिन्तन नहीं करते।

बाह्य जगत का सारा चिन्तन अपने मस्तिष्क में ऊँडेलते रहते है और प्रसन्नचित्त होते रहते हैं। दुनिया भर का कूड़ा कचरा मस्तिष्क में संजोये रखते हैं लेकिन अपने गुणो को प्राप्त करने के लिए जरा भी चिन्तन नहीं करते। व्यर्थ की कल्पनाओं में हम सारा जीवन व्यर्थ गंवा देते हैं। बडी विचित्र हमारी दशा है।

यदि चिन्तन की गहराईयों में डुबकी लगाई जाय तो हम पायेंगे कि हम जो कुछ भी कर रहे हैं, हमारे हाथ कुछ भी आने वाला नहीं। हमारे हाथ से तो ये सारी चीजें बिछुडने वाली है, छूटने वाली है। हाथ में कुछ भी रहने वाला नहीं। यदि चिन्तन की गहराईयों में जाकर चिन्तन करेंगे तो पायेंगे कि लाख पुरूषार्थ करें, लाख मेहनत करें, लाख प्रयास करें, लेकिन हाथ में कुछ भी रहने वाला नहीं।

जैसे मान लो - एक दर्पण है, उसके आगे से हजारों व्यक्ति निकल जाय, दर्पण में चेहरा दिखाई देगा, पल भर के लिए भले ही चेहरा दिख जाये, लेकिन दर्पण तो वैसा का वैसा ही रहेगा।

हम जरा चिन्तन करें। ये संसार की कल्पनाएं किस तरह की है? हम इन्हीं कल्पनाओं में, इन्हीं भ्रमजालों में जीवन को गंवाते हैं लेकिन हाथ में कुछ आने वाला नहीं।

एक राजा के पास में मि. जटा शंकर पहुँचा और निवेदन किया- राजसभा में। सभा भरी हुई थी। बड़े-बडे लोग बैठे हुए थे। जटा शंकर ने निवेदन किया - राजन्! मैं पहुँचा हुआ एक बहुत बड़ा दर्जी हूँ। पास के राज्य से आया हूँ। मेरे जैसा दर्जी पूरे भारत में कोई नहीं। अपने वस्त्रों की व अपने सिलाई की बड़ी महिमा गाई। राजा भी बड़ा मुग्ध हुआ और सोचा- एक जोड़ी मैं भी सिलवा लूँ। व्यक्तियों की बडी विचित्र दशा होती है, नये नये वस्त्र देखने को मिले तो सहज इच्छा होती है कि इसे खरीद लूँ। घर में भले ही कितनी साड़ियाँ हो, कितने ही वस्त्र हों लेकिन ज्यों ही नई डिजाईन देखी और मन ललक जाता है, तुरन्त हमारी इच्छाऐं बाहर निकल पड़ती है।

राजा ने कहा - "एक जोड़ी मेरी भी सिल दो। उस व्यक्ति ने कहा कि कपड़े इतने शानदार होंगे, इतने मुलायम होंगे, इतने बारीक होंगे कि एक जोड़ी के पांच लाख रूपये लगेंगे। मुझे एक जोड़ी सिलने में कम से कम 6 महिने लगेंगे। राजा ने विचार किया- यह तो बड़ी विचित्र बात है, 6 महिने भी चाहिए और पांच लाख रूपये भी चाहिए। राजा के मन में भी कुतूहल जगा, पैसा बहुत था, लुटा दिया गया।

उसे एडवांस में दे दिया गया। छः महिने तक उसने बहुत से रूपये घर भेज दिये और भी कई कार्य किये। 6 महिने के बाद जब पूरी राज सभा भरी हुई थी, तब

वह एक पिटारा लेकर वहाँ पहुँचा। पिटारा सामने रखा खोला। सभी लोग आश्चर्य कर रहे थे कि आज हम ऐसी ड्रेस देखेंगे जिसके निर्माण में 6 महिने लगे हैं और 5 लाख रूपये भी कितनी शानदार ड्रेस होगी?

दर्जी ने कहा- मैं कोई सामान्य कलाकार नहीं हूँ, खुदा की मर्जी पल प्रतिपल मेरे साथ रहती है और यह वस्त्र भी खुदा की देन है। पेटी खोलने के पहले ही उसने राजा से कह दिया - मेरे वस्त्र इतने अजीबो गरीब है कि ये वस्त्र किसी को दिखाई नहीं देंगे। राजा ने कहा - किसी को भी दिखाई नहीं देंगे। दर्जी ने कहा - सिर्फ उसी व्यक्ति को दिखाई देंगे जिन्होंने आज तक असत्य भाषण नहीं किया। जिस व्यक्ति का चरित्र गिरा हुआ हो नैतिकता का पतन हो गया हो उस व्यक्ति को ये वस्त्र कदापि दिखाई नहीं देंगे। ऐसा कहकर पेटी खोली। वास्तव में तो कोई कपड़ा था नहीं वह पहुँचा हुआ ठग था। लेकिन बनावट इस प्रकार की थी बातें इस प्रकार की थी -- हाथ को फैलाकर कपड़े दिखाए और कहा-कितने शानदार कपड़े हैं?

राजा आखें फाड़फाड़ कर देखने लगा। सारी सभा आँख फाड़कर देखने लगी लेकिन कोई कपड़ा हो तो नजर आए। उसने कहा- राजना ये कपड़े कितने शानदार हैं। राजा ने सोचा- यदि कहता हूँ कि मुझे ये कपड़े दिखाई नहीं देते तो इसका अर्थ स्पष्ट हो जाएगा कि मैं चरित्र भ्रष्ट व्यक्ति हूँ और वस्त्र दिखाई नहीं देते फिर कैसे कहूँ कि मुझे दिखाई दे रहे हैं इतनी बड़ी राज सभा भरी हुई। उस दर्जी ने अपने हाथों को राज सभा की ओर घुमाया और कहा - कहो सभा सदों - यह वस्त्र कितना शानदार दिखाई दे रहा है? सारे सभा सद् बड़े विचार में पड़े चेहरा उदास हो गया। वस्त्र कीमती लेकिन दिखाई नहीं देता और यह कह दे कि नहीं दिखाई देता तो सारी जनता को मालूम हो जाएगा कि हम भ्रष्ट हैं पापी हैं।

राजा को झूठ बोलते हुए कहना पड़ा - यह कपड़ा शानदार है इज्जत रखने के लिए कहना पड़ा सारे लोगों से पूछा गया। सभी ने कहा वाह! कपड़े तो बड़े शानदार हैं। दर्जी ने कहा- अभी फिटिंग करेंगे तब पता चलेगा कि और भी कितने सुन्दर लगते हैं।

दर्जी ने कुर्ता पायजामा आदि हाथ में लिया और राजा के पास गया। आप इन कपड़ों को धारण कीजिए, आपके वस्त्र उतारिये। राजा एक एक करके कपड़े उतारने लगा दर्जी ने इस तरह पहनाना शुरू किया अगुलियाँ इस तरह चल रही थी कि कोई वास्तव में ड्रेस पहना रहा हो। असल में शर्ट नाम की कोई चीज नहीं थी हवा में ही दीप जला रहा था। शर्ट पायजामा पहनाया और हाथ को झटक कर कहा कि वाह क्या शानदार यह शर्ट और पायजामा लग रहा है राजा ने विचार किया। मुझे तो कोई शर्ट दिखता नहीं। ऐसा लगता है कि मैं नग्न बैठा हूँ। मगर ऐसा कहता हूँ तो मारा जाता हूँ, राजा ने अपने विचार को मन में ही रखा और सोचा - हो सकता है मैं भ्रष्ट हूँ ,इसलिए मुझे दिखाई नहीं दे रहा है। लेकिन सारे व्यक्तियों को तो यह दिखाई दे ही रहा है।

हमारे जीवन की विसंगति यही है कि हमें कभी-कभी ऐसी अनुकूलताऐं मिल भी जाये तो भीतर मे रोष पैदा होता है, भीतर में मन को मजबूत नहीं रख पाते, संकल्पवद्ध नहीं रख पाते, उस समय ऐसा नहीं सोचते कि अच्छा हुआ, जो ऐसा संयोग उपस्थित हुआ। ऐसी ही धर्माराधना रोज होती रहे, उस संयोग को धन्यवाद देना चाहिए। उन अनुकूलताओं का स्वागत करना चाहिए।

सुकरात की शादी हुई। उसकी पत्नी बडी झगडालू थी। एक दिन बड़े-बड़े लोग उनके घर में आये, उसकी पत्नी की क्रियाऐं, प्रक्रियाएं बड़ी विचित्र थी। कूडा करकट, सारे घर की गन्दगी इकट्ठी की, एक टोकरी में भरा और तुरन्त सारे लोगों के सामने उस कूडे करकट को सुकरात के शरीर के ऊपर डाल दिया। लोगों ने ऐसा देखा तो सुकरात के प्रति बडी करूणा आई। देखा! कैसा इस व्यक्ति का चिन्तन और इसे कैसी फूहड़ पत्नी मिली। लोगों ने कहा- सुकरात! हमें बड़ा दर्द है। आप इसके व्यवहार को कैसे सहन करते होंगे?

सुकरात ने उत्तर दिया- यह तो बडा अच्छा हुआ कि पत्नी ऐसी मिली, अन्यथा मेरी कसौटी कैसे होती? मेरे क्षमा की कसौटी का पता कैसे चलता। हमेशा विपरीत परिस्थितियों में ही क्षमा की परीक्षा होती है, व्यक्ति के गुणों की परीक्षा होती है, यदि सामने वाला व्यक्ति मीठा मीठा बोले तो सामने वाला मीठा बोलेगा ही। सुकरात ने अपने जीवन के दृष्टिकोण को बदल दिया था! अपने संकल्प शक्ति से बदल दिया था और तभी तो उसके चिंतन का यह परिणाम था।

विवाह का अर्थ है- व्यक्ति संसार के कर्तव्यों का निर्वाह करते हुए लक्ष्य को अपने ध्यान में रख के ऐसे पात्रों का योग रखे ताकि दोनों परस्पर एक दूसरे को धर्म की दिशा में ले जाने में सहायक बन जाय।

आचार्य भगवन्त इसी गुण की व्याख्या कर रहे। इस बात को अपने भीतर में नोट कर लें, हम केवल रूप और यौवन इस तरह की बातों को देखते हैं, ऊपरी चमक दमक को देखते हैं लेकिन भीतर में कितने गुण है, किस प्रकार का आचरण है, इन बातों की ओर ध्यान नहीं देते।

आचार्य भगवन्त समान कुलशीलादि की बात करते हैं। श्रावकत्व के अनुरूप यदि आचरण होता है तो निश्चित रूप से गाड़ी धर्म की दिशा में चल पड़ती है। श्रीमती का जीवन हमेशा सुनते है, विधर्मी के साथ विवाह हो गया। यह तो श्रीमती का प्रभाव था कि बाद में वह सर्प पुष्पमाला बन गया और सारा घर, सारा परिवार, धर्मानुयायी बन गया। सुभद्रा का जीवन सुनते हैं सुभद्रा का विवाह भी किसी परधर्मी के साथ हो गया। सारे घर के लोग विचार करने लगे कि कोई "वीक पोईन्ट" नजर आ जाय तो उसे प्रताड़ित करके घर से बाहर निकाल दें। एक बार ऐसा हुआ कि एक अभिग्रह धारी मुनि कहीं जा रहे थे। उनका अभिग्रह था कि आज कैसा भी संकट आ जाय तब भी मैं शरीर की सुरक्षा नहीं करूंगा। हुआ ऐसा ही, जोर से आंधी आयी, एक तिनका

आख में घुस गया। मुनि ध्यान में लीन हो गये यह बात सुभद्रा ने देखी उसे मुनि महाराज के प्रति करूणा आ गई और अन्य तरह के कोई भाव नहीं थे।

वह पास में गई और अपनी जीभ से आँखों में पड़े तिनके को निकाला लेकिन उसके मस्तिष्क पर जो बिन्दी लगी हुई थी वह मुनि के मस्तिष्क पर लग गई। यह सारी घटना घर वालों ने ज्यों ही देखी त्यों ही सुभद्रा को लांछित करना सुभद्रा के चरित्र पर कलंक लगाना प्रारम्भ कर दिया। वह तो स्थिर रही। यही तो सुभद्रा की विशेषता थी। उसके हृदय में परमात्मा के प्रति जो प्रबल आस्था थी व अपने आचार और चरित्र के प्रति जो श्रद्धा थी इसी कारण वह तुरंत निर्दोष प्रमाणित हो गई। सारे परिवार के अन्दर धर्म की गंगा प्रवाहित हो गई। समान कुल शील की बात आचार्य भगवन्त इसलिए कहते हैं।

मूल लक्ष्य संसार की साधना नहीं मूल लक्ष्य संसार को छोड़कर श्रमणत्व की आराधना है।

यदि शील समान हो कुल आचार, समान हो तो बाद में संसार की गाढी में किसी तरह की विसंगति न आए इस गुण को अपने जीवन में धारण करें, मन में लक्ष्य की प्रतिष्ठा करें।

आज इतना ही।

10. जे तोड़े ते जोड़े एह

अनंत उपकारी जिनेश्वर परमात्मा ने केवल ज्ञान की सम्पदा को उपलब्ध करने के पश्चात् करूणा भाव से भर कर देशना दी। जगत् के समस्त जीव किस प्रकार कल्पनाओं से मुक्त होकर, बाहरी संसार की आसक्ति से मुक्त होकर, अन्तर मन् में झांक सकें। भीतर की दुनिया में अपने मन को टिका सके, भीतर के उन्मुक्त वातावरण में व्यक्ति का प्रवेश हो सके, व्यक्ति चेतना के द्वारा, अपनी आत्मा के अवलोकन के द्वारा, परमात्म तत्व को प्राप्त कर सकें, इसी हेतु से परमात्मा ने देशना दी। हमारे जीवन का भी यही एक मात्र लक्ष्य है, यही एक मात्र उद्देश्य है, किस प्रकार हम स्वयं के भीतर में उतर सकें? किस प्रकार हम भीतर की गहराईयों को छू सकें? किस प्रकार अपने भीतर में डूब कर भीतर छिपे अनंत कोष को प्राप्त कर सकें? इसी लक्ष्य से जीवन को जीना है। इसी लक्ष्य से जीवन की गति को बढाना है। इसी दिशा मे जीवन की गाडी के पहियों को धकेलना है ताकि हमारा जीवन वास्तविक जीवन बन सके, व्यर्थ की कल्पनाओं से मुक्त हो सके। जिन क्रियाओं का कोई प्रतिफल हमें लाभ नहीं पहुंचाने वाला, उन क्रियाओं में स्वयं के जीवन को नहीं गुजारे और अपने भीतर की ओर उतरने के लिए हम पुरूषार्थ कर सकें, प्रयत्न कर सकें, जीवन में इसी उद्देश्य की प्रतिष्ठा करनी है, जीवन की हर क्रिया में, न केवल चिन्तन में वल्कि आचरण में भी इसी उद्देश्य को प्रतिष्ठापित करना है। अपना आचरण चिन्तन के आधार पर, परमात्मा की देशना के आधार पर बन जाये तो उन क्रियाओं के द्वारा, उस आचरण के द्वारा हम अपने भीतर में उतर सकते हैं, स्वयं को जान सकते हैं लेकिन हमारी सारी क्रियायें केवल बाहर से सम्बन्धित है। हमारे सारे भाव, हमारे मन के भाव, मन की विचारधारा, विचार-तन्तु बाहर की दुनिया में भटकते हैं, वहीं दौड़ते हैं।

बाहर की गाड़ी में बैठे हैं और भीतर की यात्रा करने का चिंतन कर रहे हैं। किस प्रकार से यह संभव हो सकेगा? संसार की गाड़ी में बैठ करके मोक्ष की यात्रा का प्रारंभ किस प्रकार किया जा सकेगा। संसार की क्रियाओं में रात और दिन हमारा पूरा मन डूबा है और फिर भी यदि हम परमात्म प्राप्ति का चिन्तन करें, फिर भी यदि हम आत्म गुणों को उपलब्ध करने का विचार करें, किस प्रकार से संभव हो सकेगा?

परमात्म तत्व को उपलब्ध करने के लिए हमें उसी गाडी में बैठना होगा उसी दिशा में प्रयाण करना होगा उन्हीं क्रियाओं में अपने पुरुषार्थ को प्रकट करना होगा तभी अपने भीतर में उतर सकते हैं।

हमारी दशा बडी विचित्र है। हम चाहते हैं अपने भीतर को प्राप्त करना चाहते हैं अपने भीतर के साम्राज्य को प्राप्त करना। लेकिन गति हमारी अन्य दिशा की ओर हो रही हमारे कदम अन्य दिशा की ओर चल रहे। हम किस प्रकार इस गति में इस दिशा में और अपने इस लक्ष्य में तालमेल बिठायें। दोनों में आपस में सामंजस्य बिठाना होगा तालमेल बिठाना होगा। दिशा और लक्ष्य इन दोनों में एकरूपता करनी होगी तभी हम इस दिशा में अपने कदमों को बढा सकेंगे और अपने लक्ष्य को उपलब्ध कर सकेंगे। अभी तक हमारी दिशा परिवर्तित नहीं हुई लक्ष्य की ओर अभी तक हमने अपने कदम् नहीं बढाये एक बार यदि हमारी दिशा बदल जाय अपने भीतर की ओर उतरने का पुरुषार्थ प्रारंभ कर दें तो अपने भीतर का साम्राज्य हमारे सामने उपस्थित हो जाय। अभी तक हमने अपने जीवन में अपने क्रिया-कलापों में जीवन के उपक्रमों में कोई, परिवर्तन नहीं किया जीवन के सारे उपक्रम संसार से सम्बन्धित हैं सारे उपक्रम बाहर से संबंधित है बाहरी सुख-सुविधाओं से संबंधित है अपने भीतर में झांकनें का अभी तक हमने कोई पुरुषार्थ नहीं किया और हम दिशा विहीन से लक्ष्य विहीन से एक दिशा से दूसरी दिशा में इधर से उधर व्यर्थ में भटक रहे हैं।

एक बारह वर्ष का बालक दोपहर के समय में दोपहर के दो या तीन बजे होंगे अपने घर के आंगन में खेल रहा। एक दिशा से दूसरी दिशा की ओर भाग रहा। बडी देर से वह खेल रहा। किसी एक चीज को पाने के पुरुषार्थ में एक चीज को पाने की इच्छा को लेकर वह इधर-उधर दौड़ रहा। माँ ने पूछा कि तुम्हें क्या चाहिये? तुम क्यों इधर से उधर दौड रहे हो तुम्हें क्या चाहिये कौन-सी वस्तु चाहिये? बडी देर से मैं देख रही हूँ, तुम कभी इधर दौड़ते हो कभी उधर दौड़ते हो बडे बेचैन हो तुम्हारा चेहरा पसीने से भीग गया तुम स्वयं साँसें फूलने के कारण इतने थक गये मालूम पड़ते हो। तुम्हें क्या चाहिये वो मुझे बता दो। मैं तुम्हें वह चीज उपलब्ध कर के दूंगी। बच्चे ने कहा- माता जी मुझे और कुछ नहीं चाहिये। वो बच्चा 15 वर्ष का था और उसकी चोटी बड़ी लम्बी थी और दोपहर के तीन बजे उस धूप में उसके आंगन में पड़ रही धूप में अपनी छाया को देख रहा छाया में अपने प्रतिबिम्ब को देख रहा और उस प्रति बिम्ब में अपनी छाया उसे दिख रही उसमें उसकी चोटी दिख रही। उसने कहा- माँ! मुझे यह चोटी पकड़नी है। मैं चाहता हूँ कि ये चोटी मेरे हाथ में आ जाय और इसी को पकड़ने के लिए मैं इधर से उधर दौड़ता हूँ लेकिन वह चोटी मेरे हाथ में नहीं आती। मुझे लगता है कि चोटी मुझसे 3 फुट दूर है और ज्योंही मैं उस दिशा में अपने कदम बढ़ाता हूँ, चोटी और ज्यादा आगे बढ जाती है। मैं उस चोटी को पकड़ लेना चाहता हूँ, कैसे उस चोटी को पकडूँ? माँ भी बड़ी परेशान हुई हैरान हुई खिली धूप में पड रही छाया और उस छाया में दिखाई पड़ रही उसकी चोटी उसको वो कैसे पकड़े? माँ ने कहा कि तुम जरा इस छोर से इस दिशा में भागो मगर फिर भी वो उस चोटी को नहीं पकड़ सका। अब छाया की चोटी को

कोई कैसे पकडेगा? क्योंकि छाया कोई अलग वस्तु नहीं, स्वयं की ही प्रतिच्छाया है। स्वयं चलेगा, छाया चलेगी। स्वयं दौडेगा, छाया दौडेगी। उस छाया में आई हुई चोटी को कैसे पकडे, किस प्रकार पकड़े, बडा परेशान हुआ मगर उसने निश्चय किया कि इस चोटी को तो मुझे पकडना ही है। "येन केन प्रकारेण" जब तक चोटी हाथ में न आ जाय, मैं अपने मन में एक प्रकार का हीनभाव अनुभव करूंगा कि मैंने इसे पकड़ने का लक्ष्य निर्धारित किया लेकिन अभी तक मैं पकड नहीं सका। मैं अपने मन में अपने आपको हारा हुआ महसूस करूंगा। माँ को कहा- जब तक मैं चोटी को नहीं पकडूँगा, तब तक खाना नहीं खाऊंगा। मुझे चोटी येन केन प्रकारेण किसी तरह पकडनी ही है। बडा परेशान हुआ। घंटा दो घंटा घूमता ही रहा, परेशान होता रहा। उसके पीछे-पीछे दौडता रहा लेकिन दौडते रहने से भी वह चोटी उसके हाथ में न आ सकी। थोडी देर बाद एक व्यक्ति का आगमन हुआ, उस व्यक्ति ने पूछा- उस बच्चे से कि मैं भी बडी देर से बाहर से देख रहा हूँ कि तुम इधर से उधर घूम रहे हो, क्या परेशानी है? किस वजह से तुम इतने परेशान हुए जा रहे हो, क्या कारण है? तुम मुझे बताओ। उस बच्चे ने कहा- चाचाजी और कोई बात नहीं, मुझे ये चोटी पकडनी है। चोटी पकडने के लिए मै इतनी देर से पुरूषार्थ कर रहा हूँ लेकिन वह मेरी पकड में नहीं आती। मुझे आप कोई उपाय बता दीजिये। उस चाचा ने कहा कि ये कौन सी बडी बात है। तुम्हें चोटी पकडनी है न, वह छाया वाली चोटी तुम्हें पकडनी है न। चाचा ने उस बच्चे का हाथ अपने हाथ में लिया और उस बच्चे के हाथ को खींच कर उसकी चोटी तक ले गया। स्वयं की चोटी उसके हाथ में पकड़ा दी और कहा कि देख ले बच्चे- उस छाया में चोटी पकड में आ गई कि नहीं। स्वयं ने चोटी पकड ली, उसी की छाया वहाँ पर पड़ रही थी, खुद की चोटी पकड़ ली तो छाया की चोटी भी उसके हाथ में आ गई। बच्चा राजी हो गया, खुश हो गया।

याद रहे कि हम केवल छाया की चोटी पकडने के लिए उसके पीछे दौड़ते हैं, उसके पीछे कितना भी हम दौडलें, घंटों दौड लें, महीनों दौड़लें, वर्षों दौड़लें, पुरूषार्थ हम करेंगे, हम थक जाएंगे, परेशान हो जाएंगे, हमारी शक्ति बेकार हो जाएगी। हमारी ऊर्जा समाप्त हो जाएगी लेकिन उस चोटी को नहीं पकड पायेंगे। छाया की चोटी को पकडने के लिए हम कितना भी पुरूषार्थ करें, हमारा सारा पुरूषार्थ व्यर्थ चला जाएगा, उसे पकडने के लिए हमें अपनी चोटी को पकडना होगा। अपनी चोटी यदि हमारे हाथ में आ जाय तो छाया की चोटी अपने आप हमारे हाथ में आ जाएगी। अपने भीतर का मन यदि हमारी पकड में आ जाए तो प्रकाश का विस्फोट हो जाय। अपने भीतर में उतरने का प्रयास करें। हम केवल बाहर जो छाया है, बाहर संसार की जो छाया है, कल्पित छाया है, जाली छाया है बस उसे पकड़ने के लिए सारा पुरूषार्थ करते हैं, सारा जीवन बिता देते हैं, सारा जीवन गवाँ देते हैं, लेकिन खुद को पकडने के लिए पुरूषार्थ नहीं करते। यदि उस दिशा में हमारा पुरूषार्थ प्रारम्भ हो जाय तो निश्चित रूप से अपने ऊपर अपनी पकड स्थापित हो जाए, हम अपने मालिक बन जाय, हम अपने सम्राट् बन जायें, हम अपने भीतर के, अपने अन्तर गुणों के मालिक बन जाए, हम बाहर के जो हमारे नहीं है, जो सम्पत्ति हमारी नहीं, जो सम्पदा हमारी नहीं, केवल उसके मालिक होने के लिए दौडते हैं, हम पर के मालिक होने के लिए दौड़ते हैं और

इसी कारण इतनी सारी आपा धापी है इसी कारण हृदय में अशांति है इतनी बैचेनी है।

हम अपनी चीज को छोडकर के अपने भीतर की चमक को छोड कर के पराई चीजों की ओर ललचाई नजरों से देखते हैं पराई चीजों को प्राप्त करने के लिए पुरूषार्थ करते हैं। लेकिन मैंने प्रारम्भ में कहा- संसार की गाडी में बैठकर के कभी भी मोक्ष की यात्रा नहीं की जा सकती उसके लिए उसी प्रकार की गाडी में उसी दिशा की ओर जा रही गाडी में हमें अपने आप को बिठाना होगा।

देवचन्द्र जी महाराज ने बड़ी सुन्दर बात कही-

'प्रीति अनंती पर थकी जे तोडे हो ते जोडे एह'

प्रेम का आधार बदल जाय चिन्तन का आधार बदल जाय। प्रेम का आधार हमने संसार को बना कर रखा है प्रेम का आधार हमने पर द्रव्यों को बना कर के रखा है हमारी आसक्ति परद्रव्यों के प्रति है पर पदार्थों के प्रति है वह मिट जाय वह हट जाय प्रेम का आधार पर पदार्थ बने हुए है आसक्ति का आधार, हमारे दृष्टिकोण का आधार, हमारे चिन्तन का आधार जो पर पदार्थ बने हुए है वहाँ से यदि हमारी दिशा मुड़ जाय घूम जाय और हमारा मन शरीर और हमारी विचारधारा का आधार अगर परमात्मन् बन जाए अपनी आत्मा बन जाए तो निश्चित रूप से अपने भीतर के तत्व को उपलब्ध कर सकते हैं और वही व्यक्ति परमात्मा के साथ अपने आप को जोड सकता है वही व्यक्ति अपने भीतर में प्रवेश कर सकता है। लेकिन हमारी दशा तो बड़ी विचित्र है हम केवल कल्पनाओं के पीछे भागते हैं ये सारे पर पदार्थ हमारे अपने नहीं निजी नहीं मात्र कल्पना है। हम मानते हैं कि ये हमारे हैं लेकिन हम निश्चित रूप से जाने कि वो हमारे नहीं है। वो कल्पित है लेकिन हम कल्पनाओं की समस्याओं के बारे में ही चिन्तन करते हैं। कभी अपनी समस्याओं के बारे में नहीं सोचते। सुबह ही सुबह उठते हैं ब्रह्ममुहूर्त में जागते हैं और उसी समय विचारधारा हमारे मस्तिष्क में प्रवाहित होने लगती है। जागते ही जागने के साथ ही आँखें खुलने के साथ ही हमारे भीतर में विचार आने शुरू हो जाते हैं जरा हम विचारों का संशोधन करें, कभी उन विचारों के ऊपर जरा नजर डाल कर के देखें कि वे विचार किन समस्याओं पर आधारित हैं। आज दिन में हमें क्या-क्या करना है, आज दुकान पर बैठ कर क्या-क्या करना है आज किन पार्टीयों के साथ में किस प्रकार का व्यवहार करना है लेन-देन करनी है चैक कहाँ-कहाँ भेजने हैं? इन सारी बातों के विचार हम अपने दिमाग में उपस्थित करते हैं इन समस्याओं के बारे में चिन्तन करते हैं कभी अपनी आत्मा के विषय में चिन्तन किया कि आत्मा के लेन-देन की व्यवस्था क्या है? आत्मा के भीतर में किस प्रकार की हानि बढ़ती चली जा रही? आत्मा के गुणों की हानि हमारी अपनी क्रियाओं के द्वारा होती चली जा रही। सुबह ही सुबह ब्रह्ममुहूर्त में उठ कर के हम हर समस्या के बारे में चिन्तन करते हैं व्यर्थ की समस्याओं के विषय में विचार करते हैं संसार के बारे में विचार करते हैं लेकिन कभी

सुबह ही सुबह उठ कर के अपनी आत्मा के बारे में विचार किया? यथार्थ समस्या के बारे में विचार किया? मात्र कल्पनाओं की समस्याओं के बारे में चिन्तन करते हैं।

एक बार मि॰ जटा शंकर और मि॰ घटाशंकर रेल के अन्दर बैठे हुए थे। थर्ड क्लास डिब्बे के अन्दर सवार थे। जा रहे थे एक गाँव से दूसरे गाँव की ओर। सुबह ही सुबह दस बजे के लगभग का समय था पर खिडकी के पास में दोनों की सीटें थी, वहीं बैठे हुए थे। उस रेलगाडी में खिडकी तो थी। सिर्फ लकडी का फ्रेम लगा हुआ था, उसमें से काँच गायब था। काँच वहाँ पर था ही नहीं, लकड़ी का केवल फ्रेम था। मि॰ जटा शंकर ने तुरंत उस फ्रेम को बन्द कर दिया। खिड़की बन्द कर दी। घटा शंकर ने कहा कि भाई साहब, आपने खिडकी बन्द क्यों की। उसने कहा कि मुझे बडी सर्दी लग रही है, हवा आ रही है, खिड़की जरा बंद कर दी जाय तो हवा आनी बन्द हो जाएगी। आस पास के लोग सुन रहे वो बड़े विचार में पड़े कि इसकी समस्या भी बडी गजब की है। अब खिड़की केवल फ्रेम की बनी हुई हे, काँच बिल्कुल नहीं हैं वो बन्द हो या खुली हो, हवा तो वैसी ही आएगी।, हवा आनी तो जरा भी बन्द नहीं हो सकती। जटा शंकर ने जवाब दिया, मुझे बड़ी सर्दी लग रही है इसलिए मैं खिड़की को बन्द कर देना चाहता हूँ। खिडकी बन्द हो जाय, हवा आनी बन्द हो जाएगी। इतने में मि॰ घटा शंकर उठे, आस-पास के लोग इनकी बातों का बड़ा आनन्द लिए जा-रहे, घटा शंकर ने कहा कि नहीं-नहीं मुझे बड़ी गर्मी लग रही है, मैं खिड़की खोल करके रखूंगा, मुझे इतनी गर्मी लग रही।, पसीना-पसीना हो रहा हूँ। उसने आगे बढ़कर खिडकी खोल दी। मि॰ जटा शंकर को ताव आ गया, उसने कहा कि रेल तुम्हारे घर की नहीं है। मैं भी बराबर का मालिक हूँ, बराबर का हकदार हूँ, मुझे सर्दी लग रही है, यह कह कर उसने वापस खिड़की बंद कर दी। दोनों में रस्सा-कसी प्रारंभ हो गई। उन्होंने इस बात को आत्म सम्मान का प्रश्न बना लिया, प्रेस्टिज पोइन्ट बना लिया। एक खिडकी बन्द करे, दूसरा खिडकी खोले और तर्क उनका बडा विचित्र। एक कहता है कि मुझे बडी सर्दी लग रही है इसलिए मैं खिड़की को बंद रखूँगा। दूसरा कहता है कि मुझे सख्त गर्मी लग रही है, मैं खिडकी को खोलकर रखूंगा। वहाँ पर टी॰टी॰ साहब का आगमन हुआ, उसने जब इस तरह की बात देखी, खिड़की एक बंद कर रहा एक खोल रहा। उस टीटी ने कहा कि भाई साहब। बात क्या है, क्या अपना गुस्सा इस रेल्वे की सम्पत्ति के ऊपर उतार रहे हो, क्या बात है? किस प्रकार की समस्या है तुम्हारी? मि॰ जटा शंकर ने कहा कि टी॰टी॰ साहब, यह मानता ही नहीं, मुझे बडी सर्दी लग रही है और मैं चाहता हूँ कि ये खिड़की बंद हो जाय और इसलिए मैं बंद करता हूँ मगर यह खोल देता है। घटा शंकर ने कहा कि मुझे गर्मी लग रही है और इस कारण मैं खिडकी खोलता हूँ। टी॰टी॰ ने ज्यों ही खिडकी की ओर नजर डाली तो बडा परेशान हो गया। टीटी॰ ने कहा कि अब ये खिडकी बंद हो या खुली हो, इससे क्या फर्क पडने वाला है। केवल लकड़ी की फ्रेम है, भीतर से काँच तो नदारद है, तुम लाख बंद कर लो, हवा तो वैसी ही आएगी और बन्द रह भी जाये तो भी हवा तो वैसी ही आएगी।

कल्पनाओं की समस्या है। उन्होंने यह नहीं समझा कि ये मात्र लकड़ी की फ्रेम है बन्द करे या न करे, इससे उसमें कोई अन्तर आने वाला नहीं कोई परिवर्तन होने वाला नहीं लेकिन उसी चीज को उन्होंने अपने मान और सम्मान का प्रश्न बना लिया व्यर्थ की समस्या से अपने को जोड़ लिया। हमारी दशा इसी तरह की है। हम जानते हैं कि कुछ भी इससे लाभ होने वाला नहीं कोई परिवर्तन आने वाला नहीं फिर भी उन्हीं चीजों के लिए, उन्हीं वस्तुओं के लिए, उन्हीं समस्याओं के लिए हम अपने जीवन को खपा देते हैं गवाँ देते हैं मिटा देते है।

कभी हमने ब्रह्म मुहूर्त में उठकर 'अपनी दशा किस तरह की है' का चिन्तन किया। हम केवल पर-समस्याओं के बारे में चिन्तन करते हैं केवल बाहर संसार के विषय में चिन्तन करते हैं यदि थोड़ा सा समय भी थोड़ा-सा पुरुषार्थ भी हम अपनी समस्याओं के लिए चिन्तन करने में लगाए अपनी आत्मा के विषय में आत्मा के गुणों के विषय में जरा सा भी चिन्तन कर लें तो हमारा परिवर्तन हो जाय हमारे जीवन में बदलाव आ जाय हमारा जीवन पल भर के अन्दर परिवर्तित हो जाय। लेकिन हमारा मन हमारी विचारधारा हमारा ध्यान हमारा जीवन केवल बाहर की ओर रहता है बाहर की समस्याओं में रहता है भीतर की समस्याओं के समाधान के लिए हम कोई पुरुषार्थ नहीं करते। कोई प्रयास नहीं करते और जब तक हम अपने भीतर में नहीं उतरेंगे तब तक हम अपने मालिक नहीं बन सकते।

परमात्मा के साथ स्वयं को जोड़ना है। परमात्मा के साथ प्रेम संबंध स्थापित करना है। परमात्मा के साथ में अपना संगीत बजाना है परमात्मा के साथ हमें अपने तार जोड़ देने है। उसकी एक मात्र शर्त है "जे तोड़े हो ते जोड़े एह" अर्थात् पर पदार्थों के प्रति जो आसक्ति है। जो उसे तोड देता है उसे मिटा देता है निश्चित रूप से उसके भीतर परमात्म तत्व का अभ्युदय हो जाता है। उसके भीतर में परमात्म तत्व का ज्ञान अपने आप उपस्थित हो जाता है।

आचार्य हरिभद्र सूरीश्वर जी महाराज धर्म बिन्दु ग्रंथ के द्वारा ऐसे सूत्र दे रहे हैं- हम जीवन का निर्वाह करते हुए भी दूसरों के साथ हमारा जो प्रेम सम्बन्ध है पर पदार्थों के प्रति हमारी जो आसक्ति है उसे तोड़ सके उसे मिटा सके। यदि ये सूत्र हम अपने जीवन में धारण कर लें उतार लें तो निश्चित रूप से हम अपनी सम्पदा को उपलब्ध कर जायेंगी। यहाँ पर आचार्य भगवन्त ने पहला निर्देशन दिया "न्याय सम्पन्न वैभव" अर्थात् व्यक्ति के पास में जो भी द्रव्य हो जो धन हो वह न्याय मूलक हो क्योंकि सात्विक धन सात्विक जीवन की नींव है। सात्विक धन के ऊपर ही सात्विक जीवन का महल खड़ा होता है। नींव अगर कमजोर हो नींव के अन्दर यदि खोखलापन हो तो उसके ऊपर का महल कभी व्यवस्थित नहीं होगा ऐसा महल कभी भी स्थायी नहीं बन पायेगा। वह महल कभी भी तूफानों को सहन नहीं कर पायेगा। सात्विक धन सात्विक जीवन की नींव है और इस कारण आचार्य भगवन्त ने सबसे पहले नींव की बात की। कोई भी व्यक्ति जब महल बनाना प्रारम्भ करेगा मकान बनाना प्रारंभ करेगा तो सबसे पहले नींव की खुदाई करेगा। भले वह नींव दिखाई न

दे, भले नींव के पत्थर हमें पता न चले लेकिन फिर भी नींव की सबसे ज्यादा अहमियत है मकान बनाने में, मकान को स्थिर रखने में, मकान की उम्र बढ़ाने में। नींव जितनी मजबूत होगी, मकान भी उतना ही मजबूत होगा। उसी दृष्टिकोण से आचार्य भगवन्त ने नींव की बात की है। सात्विक धन ऐसी नींव है, जिसके ऊपर सात्विक जीवन का महल खडा किया जा सकता है, फिर हमारा चिन्तन भी उसी प्रकार का बनेगा, हमारा जीवन भी उसी प्रकार का बनेगा। आचार्य भगवन्त अब दूसरा गुण यहाँ पर फरमा रहे हैं। व्यक्ति संसार में रहता है, संसार में रहकर व्यक्ति किस प्रकार अपने जीवन का निर्वाह करे, किस प्रकार अपने कर्तव्यों का निर्वाह करते हुए अपने जीवन को मोक्ष की दिशा मे प्रस्थित करें, इसीलिए आचार्य भगवन्त यहा पर सूत्र फरमाते हैं। पहला सूत्र धन के विषय में था। दूसरा गुण है विवाह के विषय में। विचार पैदा हो सकता है कि आचार्य भगवन्त तो बिल्कुल संसार की बात कर रहे हैं। विवाह संसार का नाटक है। संसार का निर्माण उसी के द्वारा होता है। यहाँ पर आचार्य भगवन्त- ध्यान रहे आचार्य भगवन्त का लक्ष्य है, मुनि पद तक पहुँचा देना आत्मा को। आचार्य भगवन्त क्रमिक विकास की बात कर रहे हैं, जो व्यक्ति मुनि पद तक नहीं पहुँच सकता, जो व्यक्ति छठे गुण स्थान तक नहीं पहुँच सकता, कमजोर है, अभी तक संसार के प्रति आसक्ति है, उस व्यक्ति के लिए सामान्य गृहस्थ की भूमिका को उपलब्ध करने के सूत्र आचार्य भगवन्त फरमा रहे हैं जो व्यक्ति मुनि पद को प्राप्त न कर सके न धारण कर सकें, कमजोर हो, व्यक्ति के भीतर में इतनी आचार निष्ठा नहीं हो, उस व्यक्ति के लिए आचार्य भगवन्त यहाँ पर विवाह की बात करते हैं कि व्यक्ति विवाह किसके साथ में करे, किस प्रकार से उसका निर्धारण हो। बडी महत्वपूर्ण बात है।

उदयपुर में जब हमारा चातुर्मास था, आचार्य भगवन्त की निश्रा में। उस समय में एक प्रेस कान्फ्रेंस हुई थी। उस प्रेस कान्फ्रेंस में बडे विचित्र- विचित्र प्रश्न पूछे गये। पत्रकार तो अनेक प्रकार के सवाल खडे करते हैं। कई तरह के नजरियों से सवाल पूछा करते हैं।

कई तरह के सवाल पूछे गये। एक पत्रकार ने बड़ा विचित्र सवाल किया। मेरे सामने सवाल किया कि अन्तर्जातीय विवाह के संबंध में आपकी क्या मान्यता है? क्या चिन्तन है? मैंने सोचा कि ये तो बड़ा विचित्र सवाल है। पलभर के लिए मैं बडा विचार में पड़ गया, सोच में पड गया कि मैं क्या जवाब दूं अन्तर्जातीय विवाह के बारे में। यदि मैं यह कहता हूं कि अन्तर्जातीय विवाह होना चाहिए तो ये जरा हमारे समाज के वातावरण के अनुकूल नहीं बैठता और यदि मैं यह कहता हूं कि विवाह नहीं होना चाहिये तो ये पत्रकार लोग कहेंगे कि महाराज तो बड़े रूढ़िवादी है, पन्द्रहवीं सदी में बीने वाले हैं, अपने आपको भगवान महावीर का अनुयायी कहते हैं। जो महावीर स्वामी स्वयं जातिवादी नहीं थे, जो स्वयं जातिवाद के घोर विरोधी थे? मैं बडा विचार में पड़ गया कि इसका जवाब क्या दूँ, किस प्रकार का जवाब दूँ? थोड़ी देर के बाद मैंने जवाब दिया कि भाई साहब, आपने गलत जगह सवाल पूछ लिया, यह उचित स्थान नहीं है। उचित व्यक्ति के साथ आपने उचित सवाल नहीं पूछा। मेरी मान्यता

अन्तर्जातीय विवाह के बारे में यदि जानना चाहते हैं तो हम तो इस राय के हैं- हम तो कहते हैं कि विवाह करो ही मत। अन्तर्जातीय तो क्या स्वजातीय विवाह भी मत करो। हम तो कहते हैं कि सब ब्रह्मचारी बनें। हमारा तो यही उपदेश है कि सब साधु-साध्वी बनें हम सब अपने आत्म चिन्तन में लग जाय यही मेरा उपदेश है और यही मेरी मान्यता है।

यहाँ पर आचार्य भगवन्त विवाह के विषय में बडी महत्त्वपूर्ण बात कर रहे हैं। गहस्थ जीवन का मुख्य आधार व्यक्ति का विवाह है आपस का संबंध है पति और पत्नी का आपसी व्यवहार है आपसी संबंध है और इसी कारण आचार्य भगवन्त इस मर्म स्थान की व्याख्या करते हैं बडा महत्वपूर्ण स्थान है व्यक्ति के जीवन में विवाह का जो व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन को बदल देता है व्यक्ति के जीवन में आमूल चूल परिवर्तन कर देता है। आचार्य भगवन्त कहते हैं- विवाह किस के साथ किया जाय? 'समान कुल शील'' दो बातों पर बल दिया एक कुल के ऊपर, एक शील के ऊपर। दोनों बड़े महत्वपूर्ण तथ्य हैं एक बाहर से सम्बन्धित है एक भीतर से सम्बन्धित है। दोनों में बडा शानदार तालमेल बैठाया। आचार्य भगवन्त कहते हैं कि समान कुल और समान शील अर्थात् जिसका कुल भी समान हो और जिसका शील अर्थात् आचरण-आचार भी समान हो। आचार की भी प्रतिष्ठा हो और कुल की भी प्रतिष्ठा हो उनके साथ विवाह संबंध होना चाहिए। गहस्थ जीवन की रीढ है विवाह। पत्नी स्वयं खानदानी हो जैन दर्शन के अनुरूप जिसका आचार हो जिसने जिन- आचार को अपने जीवन में महत्वपूर्ण स्थान दिया हो ऐसा पात्र अपने जीवन में आता है घर में आता है तो सारे घर को बदल देता है। आने वाली पीढियों तक को बदल देता है। बस इसी कारण आचार्य भगवन्त विवाह की इन दष्टियों पर जोर दे रहे हैं। हमारा आचरण बिल्कुल दूसरा हो और आने वाले पात्र का आचरण बिल्कुल दूसरा हो तो निश्चित रूप से उनमें खटपट होगी। अपने जीवन को व्यवस्थित चलाने के लिए अपने जीवन को आचार की दिशा में नैतिकता की दिशा में ले जाने के लिए पात्र भी सहयोगी होने चाहियें ताकि सहयोग दे सके और इसी कारण परमात्मन् भगवन्त महावीर स्वामी ने पत्नी के लिए एक बडी शानदार उपमा प्रस्तुत की। परमात्मन् कहते हैं धम्म सहायां'। पत्नी को उन्होंने बडा सुन्दर विशेषण दिया- धर्म की सहायिका जो पति को भी धर्म की दिशा में मोड़ सके धर्म की दिशा में ले जा सके। इस तरह का विवाह यदि हो तो उनका गहस्थ जीवन धर्ममय बन जाय उनका गहस्थ जीवन केवल भोग के अन्दर लिपट कर न रह जाय। उनका गहस्थ जीवन मात्र सांसारिक न रह जाय बल्कि उनका जीवन धर्ममय बन जाय। आध्यात्ममय बन जाय। हम जरा चिन्तन करें। हम जरा इसे व्यवहारिक दष्टिकोण से देखें। आचार्य भगवन्त कहते हैं समान कुल शील'। कुल का अर्थ है उसका खानदान उसका गोत्र क्या है? उसका कुल क्या है? जाति क्या है? ये सारी चीजें बाहर से सम्बंधित हैं। और दूसरे विशेषण का उपयोग किया- शील। शील शब्द का अर्थ होता है- आचार। आचरण यदि व्यवस्थित होगा तो हमारा जीवन भी व्यवस्थित बन जाएगा। हमारे जीवन में यदि ऐसा पात्र आएगा तो हमारे जीवन में भी परिवर्तन आ जाएगा और न केवल हमारा वरन् पूरे घर का बाल बच्चों का सारी पीढी का जीवन बदल जाएगा और सारी पीढी धर्ममय बन जाएगी।

आचार्य भगवन्त कहते हैं कुल और शील को देखो। हम कुल और शील को नहीं देखते। हम इनके स्थान पर दूसरी दो बातो को देखते हैं। हम रूप और धन को देखते है। आचार्य भगवन्त कुल शील को देखने की बात करते हैं और हम केवल रूप और वैभव को देखकर के सारी बातें तय करते हैं। केवल बाहर के रूप रंग को देखते है, भीतर मे गुण है या नहीं, उसको हम नजर अंदाज कर जाते हैं तो निश्चित रूप से बाद का जीवन अशांतिमय बन जाता है और जब घर में अशांति होगी तो हम कहीं पर भी चले जाय, चाहे मंदिर में जाए, चाहे उपाश्रय में जाय, वहाँ पर भी हमारा मन नहीं लगेगा। आचार्य भगवन्त की दृष्टि कितनी दूरगामी है। आचार्य भगवन्त विचार करते है कि व्यक्ति के जीवन मे शांति तभी आ सकती है-- मंदिर के अंदर पूजा कर रहा है, व्यक्ति का मन पूजा के अन्दर तभी लगेगा जब उसके घर में शांति होगी। व्यक्ति का मन प्रवचन श्रवण करने में तभी लगेगा, व्यक्ति का मन कायोत्सर्ग की अपूर्व अवस्था मे, समाधि अवस्था मे तभी पहुँच पायेगा, जब उसके जीवन में, घर में, घर के वातावरण में शांति होगी। शांति तभी मिलेगी जब गुणवान् पात्र का सहयोग होगा। आन्तरिक गुणो को हम महत्त्व नहीं देंगे तो घर के अन्दर अशांति आने ही वाली है।

वर्तमान की स्थिति तो बडी विचित्र है। जटा शंकर दूसरे गांव गया। अपने बेटे का विवाह उसे करना था। उसका जो लडका था, एक आँख से काना था। काने से कौन अपनी लडकी का विवाह करता? बडी समस्या हो गई और आस-पास गांवों में तो जानकारी थी ही कि इसका बेटा काना है। तो वह चला गया दूर दराज के गांव में और वहाँ एक घर में पहुँचा। विवाह की बात चलाई, खानदान वगैरह देखा गया। उस व्यक्ति ने कहा कि ठीक है तुम्हारा लडका हमें मंजूर है लेकिन हमारी लडकी भी देख लो। जटा शंकर ने विचार किया कि मै यदि देखूंगा, लडकी देखने के लिए भी मैं यदि कहूंगा तो फिर ये मेरा लडका देखने की बात करेंगे। मेरा लडका काना है, वो अगर देखेंगे तो बाद में निश्चित रूप से इन्कार हो जाएगा। इससे तो यही अच्छा है कि मैं लडकी देखूँ ही नहीं। मैं लडकी नहीं देखूँगा तो उनके मन में भी लडका देखने की बात नहीं आएगी। उसने कहा-क्या देखना है। आप तो जल्दी से जल्दी शादी का मुहूर्त निकलवाओ। शादी का मुहूर्त निकाला गया, दोनों ओर से बडी जल्दबाजी की गई। न तो इन्हें लड़का देखना था और न इन्हें अपनी लडकी दिखानी थी, बडी जल्दबाजी की गई। जिस समय में विवाह के लिए घोडे पर बैठ कर पहुँचा, बारात लेकर के ससुराल की देहरी तक पहुँचा। उस समय में साफा ऐसा बाधा था ताकि उसकी एक आँख ढ़ंक जाय, फूल वगैरह लटका दिये थे, कुछ मालायें वगैरह लटका दी थी ताकि पता न चले कि यह काना है। विवाह हो जाए फिर बाद में पता चले भी तो क्या चिन्ता? "बींध गया सो मोती है" फिर बाद में तो कोई परिवर्तन होने वाला नहीं। विवाह के लिए वहाँ पर उपस्थित किया गया। कन्या भी आ गई, बैठ गई। अब फेरे लगने का समय आ गया। विवाह का विधान प्रारम्भ हो गया। "ओम् स्वाहा" पंडित ने कहना प्रारम्भ कर दिया। उसके बाप के हृदय में हर्ष नहीं समा रहा। 'पहले मन में बड़ा डर था कि कहीं बात खुल न जाय, कहीं इसके काणत्व का पता न चल जाये, कोई विघ्न न आ जाय इसलिए मन में बडा डर था। ज्योंही विवाह की वेदी पर बैठे, मंत्रोच्चारण प्रारम्भ हो गया। हथलेवा भी हो गया तो मन के भीतर में अपार

खुशियों का साम्राज्य छा गया। विचार किया कि बस! अब तो कोई चिन्ता नहीं सारी चिन्ताएं मिट गई। अब तो विवाह हो गया और एक तरह से इतनी खुशी मन में आई कि वो तुरन्त बोल उठा खुशी को अपने भीतर में दबा कर नहीं रख सका खुशी को अभिव्यक्त करते हुए वह कहने लगा 'गढ़ जीत्यो रे बेटा कानिया।' बेटा कानिया तूंने तो गढ़ के ऊपर फतह प्राप्त कर ली विजय प्राप्त कर ली। लड़की का बाप भी वहीं पर बैठा हुआ था। उसने बात सुन ली समझ गया-जवांई काना है। लेकिन इसे अभी तक मेरी चालाकी का पता नहीं है उसने तुरंत जवाब दिया। 'खबर पड़सी उठाणियां' अरे! तुम्हारा बेटा तो काना है मगर मेरी बेटी तो बिल्कुल पांगली है लंगड़ी है जब वो उठेगी तो पता चलेगा।

इस तरह के विवाह अनमेल विवाह। पंडित जी ने सारी बातें सुनी। उधर काना था इधर लंगड़ी थी। दोनों ही बातें जानी तो तुरंत उसने मंत्र के अंदर अपनी बुद्धि का प्रयोग किया और प्रयोग करते हुए बोला दो घर बिगड़ता एक घर बिगड़्यो ओम् स्वाहा।'

यहाँ पर आचार्य भगवन्त सावधान करते हैं हम किस दृष्टि से गृहस्थ का जीवन जोड़े। आचार्य कहते है "समान कुल शील' कुल और शील के ऊपर विशेष जोर देते हैं क्योंकि यही तो सीढियाँ है जो हमारे जीवन को धर्म की ऊंचाईयों की ओर ले जायेगी। यही तो ऐसी सीढियाँ है जो भीतर की यात्रा में सहायक बनेगी। वर्तमान का समय ऐसा आ गया। हम न तो कुल को देखते हैं न शील को देखते हैं। हम केवल बाहर के रूप को देखते हैं और वैभव धन को देखते हैं। कि कहाँ से पाँच लाख आ रहा है? कहाँ से आठ लाख आ रहा है?

इन दोनों बातों की ओर जोर देते हैं। हमारे जीवन का दृष्टिकोण किस प्रकार का बने। शील और कुल के ऊपर जोर दिया जाय। हमें चिन्तन करना है ब्रह्म मुहूर्त में उठकर चिन्तन करना है। ये सारी बातें ऊपर से देखने पर आपको सांसारिक लगती है। चाहे धन की बात हो चाहे विवाह की बात हो। लेकिन ये ख्याल रखें कि संसार के द्वारा आचार्य भगवन्त धर्म की सीढ़ियों के ऊपर ले जाते हुए अंतिम छोर पर जो महल खड़ा है वहाँ पहुँचाना चाहते हैं। वहाँ तक कैसे पहुँचे। आचार्य भगवन्त इन तत्वों का इन सूत्रों का सहारा लेते हैं। हमारा हाथ पकड़ करके महल की दिशा में हमारा प्रयाण करवाते हैं। हमें इन दो बातों के ऊपर नजर रखनी है कुल और शील इन दोनों बातों के ऊपर चिन्तन करना है न कि रूप और धन के ऊपर। ताकि जीवन शांतिमय बने जीवन आराधनामय बने। जीवन में जो भी पात्र आये वो धर्म में सहायक बन जाय। धर्म की ऊँचाइयों की ओर ले जाने में हमारा आलम्बन बन जाय। इस तरह का उन्नत जीवन बने और इसी कारण आचार्य भगवन्त सामान्य गृहस्थ की भूमिका का दूसरा सूत्र देते हुए कहते हैं कि समान कुल शील' अर्थात् कुल समान होना चाहिये और शील अर्थात् आचार समान होना चाहिए। आचार परमात्मा की देशना के अनुसार होना चाहिये। परमात्मा की वाणी के द्वारा प्रतिष्ठित होना चाहिये। यदि ऐसे आचारवान् प्राणी/पात्र घर में आते हैं तो घर में खुशियों के दीये जल जाते हैं।

घर में शांतिमय धर्म की आराधना का मार्ग प्रशस्त हो जाता है। इस सूत्र का विश्लेषण करें और अपनी डायरी में इन दोनों सूत्रों को नोट करें।

आज इतना ही।

11 श्रावकत्व

अनंत उपकारी जिनेश्वर परमात्मा ने केवल ज्ञान की अतुल सम्पदा को उपलब्ध करके करूणा भाव से भर कर देशना दी। किस प्रकार चेतना को चेतना का भान हो जाय किस प्रकार जीव को जीव का बोध हो जाय किस प्रकार स्वयं की आत्मा को परमात्मा का ज्ञान हो जाय निज भावों में स्वयं की परिणति में विचर सकें भीतर की क्षमता को उजागर किया जा सके परमात्मा ने इसी हेतु से देशना दी और व्यक्ति को व्यक्ति का ज्ञान कराया। परमात्मा की जो देशना थी वह उसके मूल गुणों को उघाड़ने के लिये थी। व्यक्ति किस प्रकार अपने भावों में आ जाय किस प्रकार अपने भावों में रम जाय। परमात्मा ने देशना इस हेतु से नहीं दी कि व्यक्ति मेरी प्रशंसा करे, व्यक्ति मेरी प्रतिष्ठा बढ़ाये - परमात्मा के करूणा भाव को देखें।

उस करूणा भाव से आप्लावित होकर ही व्यक्ति अपने व्यक्तित्व से परिचित हो सकता है। व्यक्ति है व्यक्तित्व भी है लेकिन व्यक्ति अपने ही व्यक्तित्व से अपरिचित अपनी ही निजता से अपरिचित है। मन की बड़ी विचित्र स्थिति है बड़ी गहरी स्थिति है। मन कहीं न कहीं टिका रहना चाहता है मन का स्वभाव है कि वह किसी न किसी वस्तु पर स्वत्व करना चाहता है। वह चाहता है कि कोई स्थिति हो कोई भी वस्तु हो वैभव हो हर पदार्थ पर स्वत्व की छाप अंकित हो। यह मन का स्वभाव है।

जिस पल व्यक्ति के हृदय में अपनी चेतना का प्रवेश विवेक का प्रवेश स्वयं के भावों की ओर हो जाय स्वयं की परिणति की ओर हो जाय उस पल पदार्थों के ऊपर जो अपनेपन की छाप है अपने आप दूर हो जाएगी। अपने आप परत्व में परत्व का बोध हो जाएगा स्व में स्वत्व का बोध हो जायेगा।

व्यक्ति के पास में स्व भी है और पर भी। लेकिन दृष्टि दोनों अलग- 2 है। स्व में स्वत्व का बोध नहीं पर में परत्व का ज्ञान नहीं और इसी कारण व्यक्ति स्वत्व से भी दूर है और परत्व से भी दूर है। क्योंकि व्यक्ति स्व में पर को देखता

है और परत्व में स्वत्व को देखता है। यथार्थ स्थिति से, यथार्थ परिस्थिति से, यथार्थ वस्तु स्थिति से, व्यक्ति का मन, विवेक, बुद्धि और ज्यादा दूर चली जाती है।

परमात्मा की देशना यही है कि व्यक्ति को स्व में स्वत्व का बोध हो जाय और जो पर है उसको जान ले कि यह पर है, समझ लें कि यह दूसरी वस्तु है।

किस प्रकार हम अपना बोध कर सकें? किस प्रकार हम अपने आपको देख सकें? अपने हृदय की पावन स्वच्छता को देख सकें, उस पर किसी का आवरण, कोई छाया - प्रतिछाया न हो, बिल्कुल शुद्ध स्वरूप में हम उसका दर्शन कर सकें। इसी हेतु से परमात्मा की देशना का अमृतपान करना है।

परमात्मा की देशना रूप नाव पर हम सवार हुए या नहीं? अभी तक हमें सीढी नहीं मिली, अभी तक हमने लकड़ी नहीं पाई। अभी तक हमने नाव को उपलब्ध नहीं किया। परमात्मा की देशना स्वरूप नाव, परमात्मा की देशना रूप सीढियाँ, इस संसार में हर स्थान में हर जगह उपलब्ध है। केवल हमें हाथ बढ़ाने की देरी है। केवल हमें अंगुलियों से पुरूषार्थ करने की आवश्यकता है।

ज्यों ही हम हाथ आग बढ़ायेंगे, नाव हमारे हाथों के नीचे होगी, ज्यों ही हम अंगुलियाँ फैलायेंगे, सीढियाँ हमारी हथेलियों के नीचे होगी।

कभी आपने चिन्तन किया कि हमारा लक्ष्य क्या है? जैसा कि आज का विषय रखा गया ---- ये सारे विषय आत्मा से संबंधित है? "क्या मैं श्रावक हूँ" इसका कभी आपने सुबह ही सुबह उठकर चिंतन किया? प्रश्न किया अपने हृदय से!"

कभी आप गुरू महाराज के पास चले जाय और गुरू महाराज आपको सम्बोधन दे- पधारिए श्रावक जी। आप पत्र व्यवहार करें, उसमे मुनिवरों के द्वारा, साधुओं के द्वारा 'श्रावकवर्य' का सम्बोधन प्राप्त करते हैं लेकिन क्या आपने कभी चिन्तन किया कि मुनिराज जो "श्रावक जी" कहकर सम्बोधन देते हैं तो क्या आप जानते हैं कि श्रावक की भूमिका क्या है? और आपने श्रावक की गरिमा को कितना उपलब्ध किया है? यह सम्बोधन एक तरह से आपके चिन्तन के लिए है।

चिन्तर करें! मुझे ऐसा सम्बोधन मिला, मुझे ऐसा विशेषण मिला तो क्या मैं इस विशेषण को पूर्ण करने का सौभाग्यशाली बन सकता हूं? क्या मुझ में इतनी योग्यता है? श्रावक शब्द सुनकर क्या आप कभी चिन्तन करते हैं कि मैं श्रावक की भूमिका पर खडा हूँ या नहीं। श्रावक शब्द का अर्थ है श्रा = श्रद्धा, व = विवेक, क = क्रिया। तीनों बातें आपने सुनी होंगी। इनको गहराई से देखें कि श्रावक का कुल अर्थ तत्वार्थसूत्र का पहला सूत्र "सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्राणि ------" इसमें श्रावक का सम्पूर्ण अर्थ निहित है।

परमात्मा के प्रति श्रद्धा रखना, परमात्मतत्व के प्रति श्रद्धा रखना, इसका अर्थ यह नहीं कि किसी व्यक्ति विशेष पर आपकी श्रद्धा हो, परमात्म तत्व के प्रति श्रद्धा का

अर्थ है- अपनी आत्मा के प्रति श्रद्धा। परमात्मा की देशना आत्म उत्थान के अलावा और कोई बात नहीं कहती।

परमात्मन् और कोई तरह की बात नहीं फरमाते। यही उनकी देशना का सार होता है कि किस प्रकार हम अपनी आत्मा का क्रमिक विकास करें, उन पर श्रद्धा रखना यह 'श्र' का अर्थ है। ''व'' का अर्थ है विवेक। श्रद्धा का सीधा-सा अर्थ है सम्यग्दर्शन। यह ज्ञान और विवेक से प्रभावित होता है। ज्ञान को उपलब्ध करने के पश्चात् भीतर में एक निर्णायक तत्व पैदा होता है जिन निर्णायक तत्वों के पीछे सम्यग्ज्ञान काम करता है।

व्यक्ति काम करता है सारे काम करता है संसार के गृहस्थ के। उस काम के पीछे व्यक्ति के निर्णायक तत्व काम करते हैं। निर्णय तो व्यक्ति को लेना ही पड़ता है। किन्तु वह निर्णायक तत्व विवेक नहीं कहलाता। विवेक का अर्थ है- जिस निर्णायक तत्व के पीछे सम्यग् ज्ञान काम करता हो वही विवेक है और वही सम्यग् ज्ञान कहलाता है।

हम जरा चिन्तन करें। श्रावक के तीन अर्थ हैं- श्रद्धा विवेक और ''क'' का अर्थ है क्रिया - यानि सदाचार। क्रिया का अर्थ भी यही है जैसे कि व्याकरण के अनुसार जो भी करें, सभी क्रिया कहलायेंगी किन्तु वह सही क्रिया नहीं। क्रिया के पीछे 'सम्यक'' शब्द चाहिए। सम्यक चरित्र शब्द चाहिए।

सम्यक चरित्र में निष्ठ होकर व्यक्ति जो क्रिया करता है वही श्रावक-क्रिया कहलाती हैं। हम जरा चिन्तन करें कि श्रद्धा विवेक और क्रिया का सामंजस्य है? हमारे अनुभव में हमारे उपक्रम में हमारे आचरण में इन तीनों का ताल-मेल हर क्रिया में बैठता है या नहीं या केवल हम अपने नाम के आगे 'श्रावक' को पाकर के ही राजी हो जाते हैं।

ध्यान रहे! जैनत्व का प्रारम्भ होता है चौथे गुणस्थान में। चतुर्थ गुण स्थानक में प्रवेश करके ही हम जैनत्व की गरिमा में प्रवेश कर सकते हैं। पाँचवें गुण स्थानक को प्राप्त करके ही हम श्रावकत्व की सीमा में आ सकते हैं। इन दोनों गुणस्थानकों की जो भूमिका है उसे समझ लेना आवश्यक है।

जब तक व्यक्ति सम्यक दर्शन उपलब्ध नहीं करता तब तक श्रावकत्व की भूमिका में प्रवेश नहीं कर सकता - चतुर्थ गुणस्थानक में प्रवेश करने के बाद ही व्यक्ति व्रतों की सीमा में प्रवेश कर सकता है।

अभी तक हमने चतुर्थ गुण स्थान को भी उपलब्ध किया है या नहीं। पंचम गुणस्थान की बात करते हैं। व्यक्ति के भीतर में यदि इस तरह की विचार धारा इस तरह का चिन्तन गहन बन जाय सबल बन जाय तो चिन्तन आचरण के रूप में परिवर्तित हो जाय बदल जाये और ज्यों ही उसका चिन्तन उसके आचरण में आ जाएगा उसी पल परमात्मा की देशना नाव बनकर उसके पास आ जाएगी। उसी पल

परमात्मा की सीढ़ियाँ उसे उपलब्ध हो जाएगी। उसके सहारे व्यक्ति भीतर में पहुंच जाएगा।

व्यक्ति अपना जीवन इतना लम्बा बिताता है तो किसी न किसी पर उसकी श्रद्धा टिकती ही है, श्रद्धा को कोई न कोई आलंबन चाहिए। व्यक्ति अपने जीवन में अलग अलग तरह की श्रद्धा स्थापित करता है। किसी व्यक्ति को मित्र पर श्रद्धा होती है, किसी को किसी और पर श्रद्धा होती है। बिना श्रद्धा के, बिना विश्वास के व्यक्ति का जीवन गुजर नहीं सकता, बीत नहीं सकता।

किन्तु हम चिन्तन करें कि हमारी जो श्रद्धा है, वह श्रावकत्व की भूमिका से परिपूर्ण है या नहीं। परमात्मा की देशना कहती है कि जैनत्व की श्रद्धा, जैन श्रावक की श्रद्धा, जैन दर्शन के जो अनुयायी हैं, उनकी श्रद्धा, कभी व्यक्ति निष्ठ नहीं होती। क्योंकि व्यक्ति निष्ठ श्रद्धा कभी भी समाप्त हो सकती है, खत्म हो सकती है। व्यक्ति-निष्ठ श्रद्धा, श्रावकत्व की श्रद्धा नहीं।

व्यक्ति निष्ठ श्रद्धा कहीं भी टिकेगी नहीं। श्रद्धा गुणनिष्ठ होनी चाहिए। गुण निष्ठ श्रद्धा ही स्थायी बनती है, वही पूर्ण होती है। यह बड़ी गम्भीर बात है। आप प्रात काल उठें और इन दो बातों पर गहन चिन्तन करें।

हमारी निष्ठा व्यक्तिनिष्ठ नहीं होनी चाहिए। यदि व्यक्ति निष्ठ है तो भी उस व्यक्ति के प्रति गुण निष्ठ श्रद्धा होनी चाहिए। वही श्रद्धा स्थायी बनती है, वह श्रद्धा कभी नहीं डिगती। श्रद्धा गुणनिष्ठ होनी चाहिए, फिर गुणों का पिंड जिस व्यक्ति में उपलब्ध हो जाए, उसी व्यक्ति के प्रति हमारा समर्पण हो जाय।

एक बार ऐसा हुआ। देवलोक में इन्द्र बैठा हुआ था। अचानक उसने अपना सिर हिलाया। अचानक उसका चेहरा प्रसन्नता से भर गया, दूसरे देव देवी बैठे थे। उन्होंने चिन्तन किया कि आज इन्द्र महाराज इतने प्रसन्नचित्त कैसे दिखाई दे रहे हैं। लगता है इनका मन कहीं ओर चला गया है और जहां पर इनका मन गया, वहां की स्थिति को, दृश्य को देखा है और मन में इस तरह के भाव उमड़ पड़े, आश्चर्य के। पूछना चाहिए। एक देव ने पूछ ही लिया कि इन्द्र महाराज! ऐसी कौन सी बात हुई कि आप प्रसन्न हो रहे हैं।

इन्द्र महाराज ने कहा कि मैं भरत क्षेत्र को देख रहा हूं, वहां पर राजा श्रेणिक के मन को देख रहा हूँ, उसकी क्रिया को देख रहा हूँ और उसकी क्रियाओं को देख कर मैं प्रभावित हो रहा हूँ। उसकी जिन दर्शन के प्रति जो श्रद्धा है, परमात्मा की वाणी के प्रति जो श्रद्धा है, उसे कोई नहीं डिगा सकता, किसी व्यक्ति का आचरण उसके एक रोम को भी प्रभावित नहीं कर सकता। एक देव ने विचार किया कि इन्द्र महाराज बड़े आदमी हैं और बड़े आदमियों की आदत होती है कि चाहे तो हर किसी को प्रशंसा से बढ़ा दें और चाहे तो पाताल में पहुँचा दें। उस देव ने कहा-इंद्र महाराज से कि मैं जाता हूँ, श्रेणिक की परीक्षा लेने, आप व्यर्थ में मनुष्यों की प्रशंसा करते हैं। दो देव परीक्षा करने के लिए भरत क्षेत्र में आये। इधर श्रेणिक महाराज हाथी के होदे पर

चढ़कर परमात्मा के दर्शन करने जा रहे थे। रास्ते में दो मुनिराजों को देखा जो असल में देव ही थे जो परीक्षा लेने के लिए आए थे एक तरह से उसकी श्रद्धा को निष्ठा को आस्था को डिगाने आये थे।

श्रेणिक महाराज ज्यों ही आगे बढे त्यों ही दो मुनियों को देखा। सोचा कि सामने मुनि आ रहे हैं और मैं नीचे उतर कर हाथ न जोड़ूं, यह मेरा अकर्तव्य होगा। श्रावक का कर्तव्य है कि यदि पंच महाव्रत धारी श्रमण या श्रमणी सामने मिल जाये तो उन्हें वन्दन करें।

ध्यान रहे! व्यक्ति संसार की बातों को मुख्यता इसलिए देता है कि उसने अभी तक आत्मा को मुख्यता नहीं दी। व्यक्ति जब स्वयं के प्रति जागरूक बन जाता है सावधान बन जाता है उसी पल उसकी सारी क्रियाएँ, सारी स्थितियां सारी परिस्थितियां बदल जाती हैं। उसका सारा वातावरण बदल जाता है और क्या कर्तव्य है? क्या अकर्तव्य है? इसका पलभर में चिन्तन कर लेता है।

श्रेणिक ने सोचा और उतरकर सर्वप्रथम विधिवत् वंदन किया। जरा वर्तमान की दशा को देखें। आप कहीं जा रहे हों और सामने मुनि महाराज मिल जाय - आप भी गुरू महाराज को अच्छी तरह से जानते हैं और गुरूमहाराज भी आपको जानते हैं। साथ में कोई मित्र हो तो आप सोचेंगे कि महाराज को वंदन कैसे करूँ? हाथ कैसे जोड़ूं? अन्यथा मेरा मित्र समझेगा कि यह बड़ी पुरानी सोच का व्यक्ति है रूढ़िवादी है। सोचता है कि मैं आँख बंद करके ही निकल जाऊँ - जरा व्यक्ति की भावनाएँ देखें।

आपके घर में यदि कोई मुनि महाराज आ जाय और आप दीवान खाने में वैसे ही बैठे रह जाय यह श्रावक का आचार नहीं। भीतर में श्रावक के गुणों का अभी तक कोई आविर्भाव नहीं हुआ। कोई मुनि महाराज आए तो उन्हें शुद्ध आहार बहराएं वंदन करें, यही श्रावक का कर्तव्य है। आहार बहराने के समय यदि व्यक्ति के शुभ भाव हैं तो वहीं पर व्यक्ति श्रावकत्व के गुणों को उपलब्ध कर लेता है। और निर्जरा भी कर सकता है।

महाराज आते हैं तब सोचते हैं कि भीतर बाईयाँ हैं और वे ही बहरा देंगी हमारा कुछ काम नहीं निश्चित रूप से वह क्रिया और किसी के लिए नहीं कर रहे उस वक्त में आप जो क्रिया कर रहे वह मुनि महाराज के लिए नहीं कर रहे वह क्रिया अपने ही कर्मों की निर्जरा का हेतु बन जाय इस प्रकार का उल्लास हमारे भीतर में प्रकट होना चाहिये।

श्रेणिक महाराज ने ज्यों ही देखा कि दो मुनि आ रहे हैं जल्दी से नीचे उतरे। विधिवत् वंदन किया। जबकि वे दोनों देव थे जो परीक्षा करने के लिए उतरे थे। किन्तु श्रेणिक ने साधु वेश को देखा बाह्य वेश को देखा वह नीचे उतरा। परमात्मा के वेश को वंदन करना अनिवार्य था। वन्दन कर सुखशाता पूछने के लिए ज्यों ही मुख ऊपर उठाया - दोनों मुनियों ने झोली के ऊपर का कपड़ा ऊंचा उठा लिया। तुरन्त

श्रेणिक की नजर उस झोली पर पडी इसी लिये तो दोनों मुनियों ने कपड़ा उठाया था कि श्रेणिक की नजर पड जाय। देखा तो पातरे में मछलियां पडी थी।

श्रेणिक के मन में विचार आया। श्रेणिक की जरा परिस्थिति देखें, जो परमात्मा का परम श्रावक था, सम्राट् था उसने ज्यों ही मछलियों को देखा, तुरंत प्रश्न कर लिया।

अभी अभी आपने साध्वी सौम्यगुणा से सुना था कि व्यक्ति या तो निन्दक बनता है या फिर चापलूस। किन्तु साधक की भावना इनसे विपरीत होती है। वर्तमान की दशा को देखें, वर्तमान में ऐसे श्रावक बहुत कम होंगे, जो सही सही बात को देखते हैं, सही सही बात कहते हैं और शुद्ध तत्त्वों में उपस्थित रहते हैं।

श्रावकत्व की सीमा निन्दक और चापलूस दोनों से भिन्न है।

श्रेणिक ने मछलियाँ देखी, त्यों ही प्रश्न किया। ऐसा नहीं कि मुझे क्या लेना देना है, मैं क्यों कुछ कहूँ? और ऐसा भी नहीं कि ज्यों ही मछलियाँ देखी, त्यों ही वहाँ से चला गया और आगे जाकर लोगों से कहे कि महाराज मछलियाँ खाते हैं, मैंने आँखों से देखा है, न इस प्रकार की बात सोची।

जरा उनके मन की स्थिति का चिन्तन करें। श्रेणिक ने तुरंत पूछा- भगवन्! मैं आपके पात्र में यह क्या देख रहा हूँ? मैं जानूं तो सही कि पंच महाव्रत धारी मुनि और उनके पात्र में मछलियाँ, किसी प्रकार से बात को समझ कर मेरे मन को समाधान की स्थिति तक पहुँचाऊँ। भन्ते! आपके पात्र में मछलियाँ। दो मुनि जो देव थे, उन्होंने कहा - श्रेणिक! यह तो हमारी भूल हो गई कि कपड़ा किसी कारण हट गया और तुम्हें मछलियाँ दिख गई अन्यथा मै तुमको क्या बताऊँ? भगवान महावीर के संघ में जो भी साधु क्षत्रिय कुल से आए हुए हैं, वे सभी चोरी- चुपके मछलियाँ खाते हैं, मांस खाते हैं। यह तो आपने देख लिया, तो पता चल गया। इन मुनियों ने बड़े ढंग से बात कही ताकि श्रेणिक के मन में यह बात जम जाय। यदि आपको कोई इस प्रकार की बात कहें तो तुरंत डाँवाडोल हो जाय।

श्रेणिक ने कहा- अरे मुनिवरों! महावीर संघ के साधु न मांस खाते हैं, न मछलियाँ, ऐसा मैं न मानता था, न मानता हूँ, और न मानूंगा। तीन काल में ऐसा सम्भव नहीं। चूंकि आप स्वाद लोलूपी है अत आप ही इसका प्रयोग करते हैं। ऐसा मालूम होता है कि आप स्वयं दोषी है और अपने दोष को छिपाने के लिए दूसरों पर दोषारोपण करते हैं। वास्तव में आचरण के रूप में आप में साधुता नहीं, मैंने वंदन किया, अब मैं 'मिच्छामि दुक्कडं' देता हूँ। महावीर संघ के साधुओं पर इस तरह का दोषारोपण मैं सुन भी नहीं सकता, मानने का तो प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता।

श्रेणिक वहाँ से रवाना हो गया। इधर दोनों मुनियों ने ज्ञान लगाया कि इसके मन मे जरा सा भी फर्क आया या नहीं, एकाध रोम में भी संशय हुआ या नहीं। कभी कभी ऐसा होता है कि व्यक्ति मन से संशय ग्रस्त होने पर भी शब्दों के द्वारा प्रकट नहीं करता। संशय होने पर भी यदि शब्दों से प्रगट न करें तो कभी कभी संशय

केन्सर के कीटाणुओं के रूप में परिवर्तित हो जाता है। संशय को कभी भीतर में नहीं रखना चाहिए।

जरा देखें तो सही कि श्रेणिक के मन में संशय जगा या नहीं। ज्ञान से देखा मगर उसके मन में एक रोम में भी परमात्मा के प्रति परमात्मा के शासन के प्रति परमात्मा के साधुओं के प्रति अश्रद्धा का कोई भाव नहीं था। देवों ने सोचा कि इसकी श्रद्धा अखण्ड है मगर एक परीक्षा और कर लें।

श्रेणिक आगे बढ़ रहा था। अब देवों ने साध्वी का रूप धारण किया। आगे आ गईं। श्रेणिक ने देखा कि सामने साध्वी जी आ रही है तो वंदन करना अनिवार्य है। क्योंकि वंदन न स्त्री को होता है न पुरुष को बल्कि पंच महाव्रत धारियों को होता है।

श्रेणिक ज्यों ही वंदन करने के लिए आगे बढ़ा तो देखा कि दोनों साध्वी जी का पेट बढ़ा हुआ था। वंदन के बाद प्रश्न पूछा - भन्ते! यह मैं क्या देख रहा हूँ? क्या यह कोई उदर विकार है या कोई पेट की बीमारी है।

उन्होंने जवाब दिया दोनों साध्वी नकली बनी हुई थी। "नहीं सम्राट! यह कोई उदर विकार नहीं यह तो गर्भ की वृद्धि है। आपने तो हमें देख लिया अन्यथा मृगावती आदि सभी साध्वियाँ भी इसी प्रकार के अनाचार का सेवन करती है और वे गर्भ को सड़ा देती है गला देती है गड़ा देती है हमारे मन में करुणा भाव है इसलिए हम तो इसका संरक्षण करेंगी।

श्रेणिक ने ज्यों ही सुना कहा- हरगिज नहीं। परमात्मा के शासन में इस प्रकार की बात हो नहीं सकती। मैंने आपको वंदन किया इस कारण "मिच्छामि दुक्कडं" देता हूँ और आगे बढ़ गया।

साध्वी वेष में रहे दोनों देवों ने ज्ञान से देखा - अन्दर में जरा भी अन्तर नहीं था श्रद्धा में जरा भी फर्क नहीं था तुरंत देव प्रकट हो गए।

श्रेणिक की जो श्रद्धा थी वह गुणनिष्ठ श्रद्धा थी भावनिष्ठ श्रद्धा थी शासन निष्ठ श्रद्धा थी। जरा हम चिन्तन करें कि परमात्मा के प्रति धर्मतत्व के प्रति परमात्मा की देशना व उनके तत्व के प्रति इस प्रकार की श्रद्धा है या नहीं। यदि नहीं है तो निश्चित रूप से अभी तक हमारा श्रावकत्व की सीमा में प्रवेश नहीं हुआ।

निश्चित रूप से सोच लें कि यदि आप किसी व्यक्ति के प्रति नतमस्तक होते हैं या आप किसी व्यक्ति के प्रति समर्पित होते हैं श्रद्धान्वित होते हैं तब आप ऐसा न सोचें कि मेरी श्रद्धा से समर्पण से यह मुनि यह व्यक्ति पूजनीय हो जाएगा ऐसा हरगिज न सोचें। हमारे भीतर का समर्पण हमें ही ऊंचाईयों की ओर, आकाश की ओर ले जाता है हमारी श्रद्धा हमें ही ऊपर उठाने वाली है। किसी और के लिए नहीं है।

या तो व्यक्ति निन्दक बनता है या चापलूस बनता है, जब तक इन दोनों स्थितियों से अलग अपने भीतर में समत्व भाव नहीं आता, तब तक हमारा प्रवेश चेतना के प्रासाद में नहीं हो सकता।

एक बार हम मि जटा शंकर के घर गोचरी गये। घर जाकर उनका खान-पान देखा तो विचार आया क्योंकि जटा शंकर भोजन कर रहा था। जटा शंकर उठ गया, थाली को खूब छिपाने की कोशिश की, मगर हमारी आँखें खूब तेज थी। साधु साध्वियों की आँखें खूब तेज होती है, तुरन्त सब को भाँप लेती हैं। नजर पड गई थाली पर, कहा मैंने-श्रावक जी! आप यह क्या कर रहे हैं? जटा शंकर ने थाली को छिपाने की बड़ी चेष्टा की, क्योंकि उसकी थाली में लहसुन और प्याज पड़े हुए थे।

मैंने कहा- आपका यह आहार जैनत्व की गरिमा के प्रतिकूल है, जैनत्व की दिशा से विपरीत है, पेट भरना है तो और भी अन्य कई चीजें हैं, बेकार में स्वाद के पीछे असंख्य जीवों की क्यों हिंसा कर रहे हो? व्यर्थ में कर्म बंधन करके क्यों प्रसन्नचित्त हो रहे हो? काफी देर समझाया।

जटा शंकर ने कहा - महाराज! आज तो थाली में ले लिए, सो खाने दो, आगे के सौगन दिला दो। मैं ने सोचा- चलो, आज गोचरी आना सफल हो गया। मैंने कहा- अच्छी तरह से विचार तो कर लिया है न, अन्यथा बाद में पश्चाताप करना पड़े। जटा शंकर ने कहा - महाराज! मैंने अच्छी तरह से निर्णय ले लिया। मगर एक शर्त है। मैंने पूछा - कौन सी तुम्हारी शर्त है? जटा शंकर ने कहा-बस एक शर्त है, साज मांद में छूट रहेगी। मैंने कहा-ठीक है, बीमारी आदि की वजह से छूट हो सकती है। सही अर्थ को समझ नहीं सका। सौगन दिला दी। पांच रोज के बाद गोचरी के लिए जाना हुआ उसी घर। जटा शंकर की थाली में कांदे और लहसुन पडे हुए थे। मैंने कहा - जटा शंकर! तुम यह क्या कर रहे हो? पांच दिन भी तुमने नियम का पालन नहीं किया, यदि भंग करना ही था तो मेरे विहार करने के बाद करते।

जटा शंकर ने कहा - महाराज श्री! नियम लेते समय मैंने एक शर्त भी रखी थी, शर्त क्या थी, कौन सी रखी थी? मैंने कहा - अभी तुम कौन से बीमार हो?

जटा शंकर ने कहा - साज और मांद, दोनों का अर्थ समझो।

भोले भाले महाराज हो तो व्यक्ति किस प्रकार ठगा देते हैं। मैंने कहा- यदि साज और मांद दोनों में छूट है तो फिर नियम लेने की आवश्यकता ही क्या थी। मैंने कहा - या तो तुम स्वस्थ रहोगे या फिर बीमार। इससे तीसरी अवस्था तो कभी तुम्हारी होगी नहीं।

किस प्रकार व्यक्ति बचना चाहता है, किस प्रकार व्यक्ति श्रावकत्व को गिरा देना चाहता है, श्रावकत्व के ऊपर एक तरह से बीमारी के छींटे लगा देना चाहता है, दूर हो जाना चाहता है।

ध्यान रहे। इस प्रकार की क्रियाओं से व्यक्ति पंचम गुण स्थान में प्रवेश नहीं कर सकता।

व्यावहारिक रूप से चिन्तन करें। ब्रह्ममुहूर्त में उठकर चिन्तन करें और एक ही प्रश्न अपने मन से पूछें कि मैंने श्रावक के कुल में जन्म लिया परमात्मा का शासन मिला परमात्मा की देशना श्रवण करने को मिली व्यक्ति यदि ऐसा चिन्तन करेगा और चिन्तन के मोती अपने आचरण में ढाल देगा तो निश्चित रूप से व्यक्ति श्रावकत्व की सीमा में प्रवेश कर जाएगा पंचम गुण स्थान की उपलब्धि हो जाएगी और पंचम गुण स्थान में प्रवेश कर लिया तो फिर आगे की क्रमश सीढ़ियाँ तो उन्हें पकड़नी ही है। पंचम गुण स्थान में आपको रूके नहीं रहना है टिके नहीं रहना है। आपको और आगे बढ़ना है। व्यक्ति ज्यों ज्यों सीढ़ियों को पार करता जाता है त्यों त्यों अपने घर में प्रवेश करता जाता है।

आज इतना ही।

12. संस्कार

अनंत उपकारी जिनेश्वर परमात्मा ने केवल ज्ञान की सम्पदा को उपलब्ध करने के पश्चात् करूणा भाव से भर कर देशना दी। देशना के द्वारा जगत के समस्त जीवों को आत्मबोध का रास्ता दिखाया। किस प्रकार हम परमात्मा की देशना को अपने हृदय मे उतार कर अपने प्रशस्त मार्ग को स्वीकृत करें? किस प्रकार परमात्मा की देशना का प्रकाश अपने हृदय पर प्रस्थापित करके स्वयं को, जीवन की धारा को सम्यक् गति की ओर, सम्यक् पथ की ओर प्रवाहित करें? यही एक मात्र हमारे जीवन का लक्ष्य है। जैन वही कहला सकता है, परमात्मा का अनुयायी कहलाने का अधिकारी वही व्यक्ति है, जिसके हृदय में मुक्ति का लक्ष्य स्पष्ट हो चुका है। हम चिन्तन करें, ब्रह्म मुहूर्त में उठकर, स्वयं में झांककर देखें, कि हमने जीवन को लक्ष्य क्या निर्धारित किया है? यदि लक्ष्य का निर्धारण हो जाये तो लक्ष्य को अनुसार हमारी साधना उन्हीं साधनो को उपलब्ध करके उस क्षेत्र की ओर मुड़ जाय। अभी तक हमारा लक्ष्य निर्धारित नहीं हुआ, अनंत जन्मों से, अनंत-2 युगों से हमारी आत्मा ने अनंत जन्मो को धारण किया और तत्पश्चात् कहीं जाकर ऐसा पड़ाव हमें उपलब्ध हुआ, जहाँ पर पहुँचने के बाद यदि हमारी आराधना और साधना का क्रम व्यवस्थित चले तो मुक्ति का महल खुल जाय। ऐसे दरवाजे को उपलब्ध कर लिया, ऐसे पड़ाव को उपलब्ध कर लिया और अब तो थोडी सी दूर हमारे सामने मुक्ति का कोष रह गया है।

थोड़ी सी दूर मुक्ति का झरणा बह रहा है। केवल थोडे से कदमों की यात्रा हमें और करनी है और यदि यहीं पर आकर हम अटक जाय, यहीं पर आकर रूक जाय, भटक जाय तो निश्चित रूप से हमारी दशा बडी विचित्र हो जाएगी, न मालूम कितने-कितने जन्मों से हमने यात्राऐं करके, पड़ाव पार करके, नाना प्रकार के कष्टों और उपद्रवों से अपने आप को बचाकर के पुण्य के प्रभाव से इस दशा को उपलब्ध किया। जितने भी साधन होने चाहिए, जितनी भी अनुकूलताएँ होनी चाहिए, उन सारी अनुकूलताओं को उपलब्ध कर लिया। लेकिन यहाँ आने के बाद उन अनुकूलताओं को ही हमने लक्ष्य बना लिया। थोड़ा सा अन्तर रह गया हमारे विचार में, हमारी चिन्तन श्रेणी में। जो अनुकूलताऐं हैं, उनका उपयोग करना है, उन्हें लक्ष्य नहीं बनाना है।

हमने अपने जीवन में यही किया- अनुकूलताओं का उपयोग नहीं किया उन्हीं को अपना लक्ष्य मान करके उन्हीं को अपना साध्य बना करके अपनी क्रियाओं को उसी दिशा में प्रवाहित कर दिया। सारी विडम्बना इसी कारण से हुई। यदि थोडी-सी दष्टि हमारे भीतर की उजागर बन जाय और उन साधनों उन उपायों को उन अनुकूलताओं को केवल साधन रहने दें साध्य न बनायें तो निश्चित रूप से हम भीतर की अपूर्व दशा का रसास्वादन कर सकेंगे।

इन्द्रिय जय शतक के अन्दर स्पष्ट रूप से कहा - वही व्यक्ति अपनी इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर सकता है जिस व्यक्ति ने इन्द्रियों को साध्य नहीं साधन बना दिया। थोडा-सा अन्तर है हमने इन्द्रियों को साध्य बना लिया और इसी कारण हमने उसी को जीवन में प्रमुखता दी। उन्हें साधन बनाना है। ये ही इन्द्रियाँ हमारी परम मित्र बन जाएगी ये ही इन्द्रियाँ हमारी प्रबल सहायक बन जाएगी। ये इन्द्रियाँ तभी तक शत्रु हैं जब तक इन में हम बसे हैं। जब तक ये हमारी मालिक हैं तब तक हमारी शत्रु हैं। ज्योंही इन्द्रियों के मालिक हम स्वयं बन जायेंगे त्योंही इन्द्रियाँ हमारी गुलाम बन जाएगी। उसी पल हमारी इन्द्रियाँ मित्र बन जाएगी सहायक बन जाएगी। बडी सुन्दर बात हम इस रूपक के माध्यम से हमेशा सुना करते हैं।

कोई एक आत्मा किसी एक इन्द्रिय के व्यामोह में फँसा हुआ हो उसकी कैसी विचित्र दशा बन जाती है। आप सुनते हैं हमेशा-एक भौंरा जो लकडी को काटने में सक्षम है लेकिन वही भंवरा- संध्या का समय हो कमल गन्ध को प्राप्त करने के लिए उसका रस पीने के लिए अपनी रसेन्द्रिय को तृप्त करने के लिए रसेन्द्रिय को बेकाबू बनाकर के जब वह कमल के पास पहुँच जाता है। शाम का समय हो कमल विकसित अवस्था में हो उस समय भौंरा अन्दर बैठ जाता है। विचार करता है कि अभी तो और ज्यादा रस पीलूँ। अपनी रसेन्द्रिय को कभी तृप्त नहीं कर पाता। इन्द्रियाँ उसी को कहते हैं। जो कभी तृप्त न बन सके। वह रसपान करता रहता है-- करता रहा है। और इतनी देर में सूर्यास्त हो जाता है कमल मुरझा जाता है उसकी पंखुडियाँ बंद हो जाती है। भंवरा उसी के अन्दर रह जाता है। भंवरा सोचता है मैं इन्हें काटकर निकलूँ यह इतना कोमल है मैंने इसी का रस पीया है। लकडी को काट सकता है लेकिन कमल की कोमल पंखुडियों को काटकर बाहर नहीं निकलता।

बस इसी तरह की कल्पनाएं करता रहता है डूबा रहता है। 'रात्रि गमिश्यति भविष्यति सुप्रभातं' वह विचार करता है कि अभी रात्रि बीत जाएगी और कुछ ही देर बाद में सूर्योदय होगा पंकज कमल खिलखिला जाएगा मुस्करा जाएगा मैं उड़ जाऊँगा अपने घर की ओर प्रस्थान कर जाऊँगा।

कल्पना करता है और इन्हीं कल्पनाओं में डूबा है रात्रि पूरी होने की कल्पनाओं में डूबा रहता है और इसी समय कोई मदमस्त हाथी वहाँ पहुंच जाता है उसी कमल को तोड लेता है मुँह में डाल देता है ग्रास बना लेता है। भंवरा अपनी जिन्दगी से हाथ धो बैठता है। ध्यान रहे एक इन्द्रिय में वह डूबा रहा जिस कारण उसे अपनी जान से हाथ धोना पडा।

हमारी दशा तो बड़ी विचित्र है। एक इन्द्रिय बेकाबू हो जाने से ऐसी दशा बन जाती है, हम तो पांचो इन्द्रियो के गुलाम बने बैठे है, पांचो इन्द्रियाँ हमारे ऊपर हावी बनी बैठी हैं, उन्हीं इन्द्रियो के इशारे-इशारे हमारी क्रियाएँ चलती है। हम वही देखते हैं जो आँखे चाहती हैं, हम वही सुनते हैं जो कान चाहते है। इसी तरह की सारी क्रियाऐं करते है। दिशा बदलने की आवश्यकता है। इन इन्द्रियों को आत्म जागृति का कारण बना दिया जाय तो ये ही इन्द्रियां हमारे लिए प्रवल मित्र बन जाती हैं, लेकिन यह तभी हो सकता है, जब हमारा लक्ष्य मुक्ति का बने। अभी तक हमने अपने लक्ष्य का निर्धारण संसार को बना रखा है। इन इन्द्रियो का उपयोग केवल संसार के लिए करते हैं। इन्द्रियों के दासत्व से मुक्त होने का संकल्प परिवर्तन का शंख नाद है। इसी संकल्प से हमारे भीतर अनहद प्रकार का आविर्भाव हो जायेगा और उस आविर्भाव की उपस्थिति मे हम स्वयं का दर्शन कर सकेंगे। स्वयं मे पर को नहीं देखकर के स्वत्व की स्थापना करेंगे तो निश्चित रूप से स्वयं का ज्ञान उसी पल हमारे सामने प्रगट हो जाएगा।

मि॰ जटा शंकर ने राजा के आदेश को स्वीकार किया। राजा ने उसे आदेश दिया था कि तुम एक बहुत बडे महल का निर्माण करो। कितना भी पैसा लगे, सारा पैसा राज कोष से लेना लेकिन वह महल बडा शानदार होना चाहिए। जटा शंकर पहुँचा हुआ इंजीनियर था। उसने सोचा- राजा ने मुझे महल बनाने का काम सौंपा है। मन में विचार किय, 15 लाख रूपये तो तुरंत स्वीकृत करा लूँ, लेकिन मकान में लगाना मुझे 5-7 लाख ही है, बाकी तो मुझे पेटी के अन्दर रख देना है, इस प्रकार का काम करना है। सीमेण्ट के अन्दर मिट्टी मिलाकर काम करना है। मुझे क्या लेना देना है इस महल से। बाकी का पैसा बच जाएगा। इसी उधेड़बुन के अन्दर, इस प्रकार के विचार के प्रवाह मे वहकर उसने मकान के निर्माण का कार्य आरम्भ किया। महल बड़ा शानदर बना, ऊपर से रंग वगैरह शानदार किया। पैंटिंग्स भी ऐसी लगाई कि देखने वाले देखते ही रह जाते।

वह इंजीनियर जटा शंकर जानता था कि यह तो सारा ऊपर का ही दबदबा है, भीतर तो सारी पोल भरी पडी है। भीतर तो मैंने सीमेण्ट की जगह रेती का उपयोग किया है। मन में बडा खुश हो रहा था कि कोई व्यक्ति 25 प्रतिशत बचाता है, कोई 30 प्रतिशत बचाता है लेकिन मैंने तो 50 प्रतिशत धन बचा लिया। बड़ी खुशी थी मन में। जब कोई व्यक्ति संसार में किसी लक्ष्य को लेकर काम करता है और उस लक्ष्य में वह सफल बन जाता है तो निश्चित रूप से उसके भीतर में प्रसन्नता का अम्बार फूट पड़ता है।, इसी प्रसन्नता को लेकर वह राजा के पास में गया और कहा-राजन्! आप पधारिये! उस महल को आप संभाल लें। सोचा कि कहीं ऐसा न हो कि बरसात वगैरह आ जाय, तूफान वगैरह आ जाए और मेरी पोल खुल जाय क्योंकि एक वर्षा भी शायद ही यह महल सहन कर सके, एक बार तो मैं दिखा दूं फिर मैं तो इन पैसों को लेकर शहर की ओर चला जाऊंगा। बाद में यह मकान बिगड़े, सुधरे कुछ भी हो, मुझे उससे कोई मतलब नहीं।

तुरन्त राजा के पास में गया और कहा राजन! पधारें, महल बनकर तैयार हो गया। जरा आप देखलें निरीक्षण कर लें संभाल लें मैं चाबियाँ साथ में लेकर आया हूँ। वह राजा मन्त्रिमंडल को साथ में लेकर के पहुँचा। कई लोगों को साथ में लेकर पहुँचा। महल की डिजाइन बड़ी शानदार थी। ऊपर जो रंग वगैरह लगा हुआ था वह इतना सुन्दर था कि इसको देखने से मन कभी तृप्ति से भरे ही नहीं अतृप्त ही रहे। इसे तो देखते ही रहे बार-बार देखते ही रहे। राजा के मन में उस महल को लेकर प्रसन्नता तो छाई ही साथ-साथ में उस इंजीनियर के प्रति भी खूब आदर के भाव आए। उसने विचार किया कि यह इंजीनियर कितना होशियार है। क्या इसकी कारीगरी है? क्या इसने अपनी शानदार कल्पना का उपयोग किया है? ऐसे व्यक्ति का तो सम्मान होना चाहिए। राजा ने प्रसन्नता का विस्फोट किया और उसी समय कहा-जटाशंकर! कल सुबह तुम दरबार में आना मैं भेंट स्वरूप कुछ देना चाहता हूँ।

राजा ने महल की चाबियाँ ग्रहण कर ली। दूसरे रोज राज सभा बुलाई उस सभा में राजा ने खड़े होकर, प्रसन्नचित होकर के कहा ऐसे कलाकारों का तो सम्मान होना ही चाहिए ताकि इनकी कला को प्रोत्साहन मिले। इतना शानदार महल बनाया इस कारण मैं कुछ भेंट देना चाहता हूँ। जटा शंकर ने मन में विचार किया- एक तो पुरस्कार मैंने पहले टी बिना दिये ही प्राप्त कर लिया अब मुझे दूसरे पुरस्कार की कोई आवश्यकता नहीं। तुम दो या मत दो मैंने तो अपना पुरस्कार पहले ही प्राप्त कर लिया? लेकिन सोचा- राजा प्रसन्न हुआ है तो पुरस्कार तो देगा ही कोई सोने का मेहल वगैरह देगा। राजा ने पास में बुलाया और कहा कि मैं तुम्हें पुरस्कार देना चाहता हूँ। ऐसा पुरस्कार जो सदियों तक तुम्हारा और मेरा नाम अमर रखेगा। पुरस्कार के रूप में राजा ने घोषणा की कि तुमने जो शानदार महल बनाया है। वही तुम्हें पुरस्कार के रूप में भेंट करता हूँ। ये लो चाबियाँ मैं तुम्हें देता हूँ।

जटा शंकर विचार में पड़ गया पाँवों के नीचे से धरती खिसक गई मन में आश्चर्य चकित हो गया कि मैंने कभी यह कल्पना भी नहीं की थी कि ये महल- मुझे मिलेगा पुरस्कार के रूप में मिलेगा। चाबी लेने के लिए वह आगे बढ़ रहा था पर मन में तरह-तरह के विचार आ रहे थे। यह महल पुरस्कार के रूप में दिया जा रहा है इस कारण चेहरा प्रसन्नता से दमक जाना चाहिए था लेकिन बात बिल्कुल उल्टी बनी उसका चेहरा एकदम मुरझा गया था। उसने विचार किया कि - यदि मुझे यह मालूम होता कि ये महल मुझे ही मिलेगा तो क्यों मैं इतने रूपये बचाता। क्यों मैं सीमण्ट के स्थान पर रेती का उपयोग करता? अब वह महल मेरे क्या काम का? मैं भीतर रह नहीं सकता। मैं जानता हूँ कि एक भी बरसात यह सहन नहीं कर सकेगा इसकी नीवें कमजोर हैं।

नीवों के अन्दर जो सामग्री डाली थी वह निहायत घटिया थी। वह आगे बढ़ रहा था न बोल पा रहा था न ढंग से चल पा रहा था न चीख पा रहा था न हर्ष की अभिव्यक्ति कर पा रहा था। हर्ष की अभिव्यक्ति करना जरूरी था क्योंकि पुरस्कार प्राप्त हुआ था। मन में रोना भी जरूरी था क्योंकि उसे पता था कि मैंने ही अपने

हाथों से उसे कमजोर बनाया है। मैंने वह मिक्सचर नहीं बनाया जो बनाना चाहिये था।

जरा विचार करें। हम जिस महल का निर्माण कर रहे हैं, यह आप कभी न सोचें कि उस महल में कोई दूसरा आकर के रहेगा, दूसरों का बन जाएगा।

वह महल अपना ही होने वाला है। यदि अपन कमजोर महल का निर्माण करेंगे तो बाद में निश्चित रूप से हमारी आँखों में आंसू होंगे, बाद में निश्चित रूप से हमारे भीतर में रूदन होगा।

महल का निर्माण हम स्वयं करते हैं, उस वक्त हम भूल जाते हैं। जो भी क्रियाएँ करते हैं, एक तरह से भविष्य का महल बना रहे हैं। हमारी क्रियाओं से ही हमारा भविष्य बनता है। हमारा अतीत हमारा वर्तमान है। यह बड़ी शानदार श्रृंखला है। जैन दर्शन की यह बडी विशिष्ट देन है। जैन दर्शन कहता है कि हमारा अतीत हमारा वर्तमान बनता है और हमारा वर्तमान ही हमारा भविष्य बनने वाला है। हमने अतीत में जैसी क्रियाएँ की, जिस तरह के कर्म किए, उसी तरह का उदय हमारे वर्तमान में आने वाला है। और वर्तमान में हमारी क्रिया जिस प्रकार की होगी, हमारा भविष्य भी उसी प्रकार का बनेगा। भविष्य में हमें उसी प्रकार के कर्मों को भुगतने के लिए प्रति पल तैयार रहना होगा।

मि· जटा शंकर की स्थिति देखें। उसने नहीं सोचा था कि मैं जो कर रहा हूँ, उसका परिणाम मुझे ही भोगना पड़ेगा। उस वक्त में तो वह केवल धन बचाने के लोभ में, धन बचाने की लिप्सा में डूबा हुआ था और इसी कारण वह इस बात को विस्मृत कर गया लेकिन जब वह चाबियाँ लेने के लिए जा रहा था, उस वक्त उसका हृदय रो रहा था, आँखें रो रही थी।

जरा चिन्तन करें। हमारी दशा अभी कोई इससे बेहतर नहीं। हमारी दशा ऐसी ही है। उस वक्त में हम भूल जाते हैं। उस वक्त तो हमारा लक्ष्य वैभव इकट्‌ठा करना, सम्पदा इकट्‌ठा करना, बाहरी संसार को सुखी बनाना, स्वार्थों की पूर्ति करना, साधन बहुत सारे इकट्‌ठे करना यही हमारा दृष्टिकोण रहता है। प्राय· भूल जाते हैं कि अभी जो हम कर रहे हैं, उससे क्षणिक लाभ तो मिल सकता है। पर परिणामों की उपस्थिति में दीर्घ रूदन करना पड़ेगा।

हम उन बातों को विस्मृत कर जाते हैं कि हमें किस तरह का परिणाम भोगना पड़ेगा। लेकिन हमारा वर्तमान और वर्तमान की सारी क्रियाएँ हमारा भविष्य बनने वाली है। भविष्य में हमें इन क्रियाओं के परिणामों को भोगना ही पड़ेगा।

यदि वर्तमान में हम सावधान बन जाय, यदि वर्तमान में हम इन्द्रियों की दासता से, उनकी गुलामी से मुक्त होकर के स्वभाव रमणता के विशुद्ध परिणामों की गंगा में उपस्थित हो जाय तो हमारा भविष्य उसी प्रकार का बन जाएगा। लेकिन अभी तक हमने उस सुख का आस्वादन नहीं किया, अभी तक तो हमने संसार के स्वार्थों में ही आप को फँसा रखा है। उन्हीं साधनों में सुख की प्राप्ति के लिये खोज की है।

कई व्यक्ति आते हैं और प्रश्न करते हैं कि आप हमेशा प्रवचन देते हैं और हमेशा एक ही बात कहते हैं। मोक्ष की बातें मोक्ष में जाने के लिए प्रयास करो स्वयं को जानने के लिए पुरुषार्थ करो यही सारी आपकी बातें रहती हैं लेकिन प्रश्न तो हमारा यह है कि मुक्ति क्या चीज है? मोक्ष की क्या परिभाषा है?

ध्यान रहे। जिसने संसार के सुखों में ही सुख माना है उस व्यक्ति के हृदय में मोक्ष के बारे में क्या चिन्तन बहेगा, उस व्यक्ति के भीतर में मोक्ष के बारे में क्या जिज्ञासा बनेगी?

मि. जटा शंकर एक बार जा रहा था ससुराल। ससुराल जाने के लिए नगर से बाहर चला और विचार किया कि कोई बैलगाड़ी वगैरह मिल जाएगी। पुराना जमाना था। मोटरें, बसें वगैरह नहीं थी। कोई बैलगाड़ी मिल जाएगी बैठ जाऊंगा और बड़े मजे से ससुराल पहुँच जाऊंगा। 10 कोस की दूरी पर गाँव था ससुराल का। 5 कोस की दूरी उसने पैदल तय कर ली। आगे बढ़ा तो एक बैलगाड़ी जाती हुई देखी वह तेज कदमों से चलकर उसके पास पहुँच गया। उसने बैलगाड़ी वाले से कहा- भैया! तुम उसी गाँव जा रहे हो ऐसा लग रहा है। यदि उसी गाँव जा रहे हो मुझे भी साथ ले चलो। मुझे ससुराल जाना है। पैदल जाऊंगा तो थक जाऊंगा। बैलगाड़ी वाले ने कहा- सेठ जी ! मैं ले तो चलूँगा लेकिन किराया पूरा लूँगा और मेरी शर्त भी शामिल है। जटा शंकर ने सोचा- मुझे जाना तो जरूरी है और दूसरा कोई उपाय नहीं? उसने कहा- मुझे तो जाना ही है तुम्हारी हर शर्त मंजूर है। उस व्यक्ति ने कहा- मुझे और कुछ नहीं वहाँ भरपेट भोजन मुझे खिलाना पड़ेगा। जटा शंकर ने कहा- अरे, तुम चलो तो सही। मैं ससुराल में बड़ा शानदार भोजन कराऊंगा। शानदार भोज' बैलगाड़ी वाला चमक उठा। वह गरीब व्यक्ति था। उसे याद आया कि पाँच साल पहले मैं अपनी ससुराल गया था तब मैंने बड़ी शानदार मिठाई खाई थी। आज इसके ससुराल जा रहे हैं तो ऐसी मिठाई ही खायेंगे। उसने कहा- मुझे गुड़राब खिलानी होगी। गरीबों के लिए यही मिठाई होती है। जटा शंकर ने कहा - गुड़राब को छोड़ो इससे भी ज्यादा अच्छी मिठाई खिलाऊंगा। वह बोला- हरगिज नहीं मुझे तो गुड़राब ही खानी है। सेठ जी ने कहा- अच्छा छोड़ो भी तुम्हें गुड़राब खिलाऊंगा।

दोनों चल पड़ें। सेठ जी का ससुराल था बड़ा शानदार। सम्पन्न वहाँ के लोग थे। वहाँ पर नाना प्रकार की मिठाईयाँ तैयार की गई। जब जवांई साहब पधारे हों तो स्वाभाविक था। सारी चीजें बदल गई। शानदार बाजोट भी आ गया चाँदी की थाली भी आ गई। सेठ जी के ससुर जी ने पूछा- यह साथ में कौन है? सेठ जी ने कहा- यह भी मेरे गाँव से ही आया है। यहीं पर भोजन करेगा। भोजन की थाली आई। थाली के अन्दर देखा तो कुछ लड्डू वगैरह थे। रसगुल्ले वगैरह थे और भी सारी सामग्री रखी हुई थी। उस व्यक्ति ने देखा - यह क्या? थाली में गुड़राब तो है ही नहीं? सेठ जी की ओर कड़ी निगाहें डाली और कहा कि वह गुड़राब कहाँ है मुझे तो गुड़राब चाहिए।

सेठ जी ने कहा- तुम खाओ तो सही, उससे भी यह बढ़कर है। इसका तुम आस्वादन करोगे तो पलभर में गुडराब को भूल जाओगे। उसने कहा- सेठ जी! मैंने तो पहले ही कह दिया था कि मुझे तो गुड़राब ही चाहिए। मैं तो गुडराब ही खाऊंगा। जटा शंकर बड़ा असमंजस में पड गया। सोचा- मुश्किल हो गई, मैंने परिचय भी ऐसा दे दिया कि यह मेरे साथ आया है। यह तो पल भर में सारा बनाया हुआ महल तोड़कर के रख देगा। उसने देखा कि भीतर से परोसने वाले आ ही रहे हैं। जटा शंकर विचार में पडा कि यदि इनके सामने किसी प्रकार की बात कर दी तो सारी बात गलत हो जाएगी, बड़ी विचित्र स्थिति पैदा हो जाएगी। इतने में वह चीख उठा कि मुझे तो गुडराब चाहिए। बोलने के लिए मुँह फाडा ही था कि इतने में जटा शंकर ने रसगुल्ला लिया हाथ में और ठूंस दिया उसके मुँह में। जैसे ही रसगुल्ला मुँह में गया। राब-राब कहना तो भूल गया, रसगुल्ले का स्वाद आने लगा। वो तो आना ही था, मीठा-मीठा लगा। पल भर में सारी थाली चट कर गया। सेठ जी के थाली में भी जो रसगुल्ले थे वो भी सारे खा गया। सोचा- इसके सामने गुडराब क्या चीज है?

ध्यान रहे? हमारी दशा ऐसी ही है। अभी तक तो हमने गुड़राब का ही आस्वादन लिया है तो रसगुल्ले के स्वाद के बारे में हम क्या जाने? जिन्होंने रसगुल्ले के स्वाद को उपलब्ध कर लिया। वे महा पुरूष ही बार-बार आपको कहते हैं। परमात्मा का की जो देशना है, वो देशना इसी तरह की है। व्यक्ति संसार के गुड़राब के सुख में न फँसे। लेकिन व्यक्ति को तो वही चाहिए। वह कहीं पर भी चला जाय, उसे वही बातें चाहिए। कभी आपने चिन्तन किया - मैंने दो रोज पहले कहा था। जहाँ भी जाते हैं, अपने दृष्टिकोण को साथ में लेकर जाते हैं। वह बेचारा गरीब व्यक्ति जहाँ भी जाता, उसके भीतर में गुड़राब का ही चिन्तन चलता।

एक बार यदि भीतर में स्वयं को जानने की, स्वयं के जागृति की ललक पैदा हो जाय तो पलभर में हमारी दुनियाँ बदल जाय। मन का दृष्टिकोण पलभर में बदल जाय। हमारा दृष्टिकोण तो बड़ा विचित्र है। जहाँ भी जाते हैं, अपने दृष्टिकोण को साथ में लेकर जाते हैं। कहीं पर भी पहुँचें, संसार का दृष्टिकोण साथ में ही रहता है। परमात्मा के मन्दिर में पहुँच जाय, वहाँ पर भी हमें पंखे चाहिए ताकि थोडी-सी हवा मिल जाय। वहाँ पर भी हमारा दृष्टिकोण यही कि इन्द्रियों को सुख पहुंचाये। वहाँ जाने के बाद भी हम शरीर को न भूलें, वहाँ जाने के बाद भी संसार भीतर से बाहर न निकला, वहाँ पहुँचने के बाद भी हमें पसीने की चिन्ता रही, हमें सर्दी वगैरह की चिन्ता रही, गर्मी वगैरह की चिन्ता रही तो वहाँ जाने के बाद भी हम वहाँ के आस्वादन को कैसे उपलब्ध कर पायेंगे। परमात्मा का अमृत हमारे भीतर में कैसे बहेगा?

लेकिन हम तो धर्म को भी संसार का बाना पहना देते हैं, धर्म के ऊपर भी संसार का विलेपन कर डालते हैं। मन्दिर के अन्दर जाय तो हमें गर्मी लगती है, पंखा चाहिए। वहाँ जाने के बाद भी इन्द्रियों को भूलते नहीं और ज्यादा उनका पोषण करते हैं।

जरा चिन्तन करें। मन्दिर जाने के बाद भी परमात्म दृष्टि का जागरण हमारे भीतर में नहीं हुआ तो वहाँ पहुँचने के बाद भी हम खाली के खाली आयेंगे हमारे हाथ में कुछ भी न आयेगा। वहाँ जाने के बाद तो भीतर से सारा संसार निष्कासित हो जाना चाहिए। लेकिन वहाँ पर भी हम इन्द्रिय पोषण के उपाय करते हैं। अभी तक हमारा दृष्टिकोण संसार का है दृष्टिकोण इन्द्रियों को सुख पहुँचाने का है। अपने भीतर की तृप्ति का आनन्द कैसे मिलेगा?

परमात्मा के साधु-सन्तों के जितने भी प्रवचन है। वे जबर्दस्ती मुँह में रसगुल्ला ठूसते हैं ताकि एक बार तो आपको स्वाद मिल जाय। लेकिन हम तो ऐसे हैं कि रसगुल्ला मुँह में आ रहा हो तो उसे देखकर नमक की डली मुँह में रख देते हैं। तब कैसे पता चलेगा रसगुल्ले के स्वाद का? संसार रूपी नमक की डली हृदय में स्थापित करके रखेंगे तो परमात्मा का अमृत हमारे भीतर में उतरेगा तब भी कोई स्वाद ग्रहण नहीं कर पायेंगे। स्वाद का कोई पता नहीं चलेगा। एक बार यदि उस स्वाद का रस हम चख लें तो सारी क्रियाएँ बदल जाय। दृष्टिकोण में परिवर्तन लाना है। किस प्रकार भीतर में आत्मा का लक्ष्य बने? किस प्रकार मुक्ति का लक्ष्य बने? यदि उस लक्ष्य का निर्धारण हो गया तो हमारा जीवन बदल जायेगा।

आचार्य हरिभद्र सूरि इसी तरह के रसगुल्ले आपके सामने पेश कर रहे हैं। आचार्य श्री के सूत्र एक से एक अनूठे हैं और उनका स्वाद ही अलग है। सूत्र स्वाद तभी देते हैं जब हमारे भीतर में उतरे। रसगुल्ला थाली के अन्दर पड़ा हुआ है हमें कोई स्वाद नहीं पहुँचाता मिष्ठान्न का कोई अनुभव नहीं हो सकता। उसका अनुभव तो तभी होगा जब रसगुल्ला हाथ की क्रिया के द्वारा मुँह में पहुँचे दाँतों के द्वारा चबे गले के नीचे उतरे तभी तृप्ति का आनन्द मिलेगा और स्वाद का भी पता चलेगा। ये सूत्र मिष्ठान्न से भरे हैं और हमारे भीतर को ऊँचाइयों में पहुँचाने के लिए ये सफलतम सूत्र हैं। मुक्त आकाश का विचरण तभी संभव है जब ये सूत्र हमारे भीतर में उतरें।

आचार्य भगवन्त यहाँ पर नया सूत्र फरमाते हैं "शिष्ट चरित प्रशसन इति।" एक सूत्र के अन्दर दो तरह की बातें कही। एक दूसरे से मिली जुली बातें हैं। आचार्य श्री ने दो शब्दों का प्रयोग किया। (1) शिष्टाचार (2) शिष्टाचारियों की प्रशंसा। दो तरह की बातें हैं। एक तो स्वयं का आचरण कैसा हो और दूसरी स्वयं की विचारधारा कैसी हो चिन्तन कैसा हो?

ध्यान रहे। व्यक्ति इन दो बातों पर ही जीवन का निर्माण करता है- आचार और विचार। इन दो के सिवाय और कोई वस्तु शेष ही नहीं रहती। जो करता है वह आचार है और मन में जो भी बिन्दु उठते हैं वे सारे विचार हैं। आचार और विचार कैसा होना चाहिए? आचार्य भगवन्त ने इस छोटे से सूत्र के ऊपर बड़ी गम्भीर बात बता दी। सबसे पहले व्यक्ति शिष्ट बने और इसके साथ-साथ शिष्टाचारियों की प्रशंसा करें।

यहाँ पर शिष्ट शब्द का अर्थ समझे। शिष्ट बड़ा व्यापक शब्द है। हर क्षेत्र में शिष्ट का अलग-अलग अर्थ है। राजनीति के क्षेत्र में उसका अलग अर्थ है, सामाजिक क्षेत्र में उसका अलग अर्थ है, धार्मिक क्षेत्र में उसका अलग अर्थ है, साधु जीवन में उसका अलग अर्थ है। शिष्ट का सीधा-सा अर्थ होता है- अनुशासित। यहाँ पर आचार्य भगवन्त कहते हैं- व्यक्ति अनुशासित हो, लेकिन किनके द्वारा अनुशासित हो। आचार्य श्री किसी व्यक्ति को अनुशासक के रूप में प्रतिष्ठित नहीं करते। आचार्य श्री कहते हैं- व्यक्ति धर्म से अनुशासित हो, धर्म से शिष्ट हो।

जो धर्म से अनुशासित होगा, उसका आचार दूसरा होगा, उसकी क्रियाएँ दूसरी होगी और उसके जीवन में आनन्द का स्रोत बहता चला जाएगा।

हम जरा चिन्तन करें कि हमारा जीवन अनुशासित है या नहीं। अनुशासन का अंश है या नहीं। अनुशासन केवल घर का नहीं, परिवार का नहीं, राजाओं का नहीं, बल्कि अनुशासन होना चाहिए धर्म का, परमात्मा की देशना का। यदि धर्म का अनुशासन स्वीकार कर लें तो और किसी अनुशासन की आवश्यकता नहीं रहती। जिस व्यक्ति का जीवन धर्म से अनुशासित नहीं बना, उसकी क्रियाएँ कैसी होती हैं। मैंने एक सच्ची घटना पढ़ी और उस घटना के पढ़ते-पढ़ते मेरी आँखों से आँसू बह आये। व्यक्ति जब धर्म से विमुख बन जाता है तो उसका मन कैसा हो जाता है।

पंजाब की घटना थी, बिल्कुल सत्य घटना। एक दम्पत्ति के तीन बालक, एक 10 वर्ष का, दूसरा 8 वर्ष का, तीसरा 2 वर्ष का था। बाहरी दृष्टि से बड़ा सुखी परिवार था लेकिन उनके परिवार में धर्म नाम की कोई चीज नहीं थी। उनके परिवार में मांस का आहार चलता था। उनका आचरण भी बड़ा विकृत था।

एक बार ऐसा हुआ कि घर में कोई त्यौहार वगैरह का दिन था। मांसाहारी लोग बकरे को लेकर उसके घर पहुँचे। पिता ने बकरे की गर्दन पर छुरा चलाना प्रारंभ किया। बकरा बड़ा चिल्लाने लगा। उस समय उसकी आवाज बड़ी करूण हो रही थी। बड़ा दयार्द्र होकर चीख रहा था। 10 वर्ष का बालक पास में ही खड़ा था, वह उसकी चीखों को सुन रहा था, चीखों को भीतर में उतार रहा था। बकरा समाप्त हो गया। पिताजी कहीं बाहर चले गये। पत्नी खाना बनाने बैठी। बीच का बालक जो 8 वर्ष का था, वह सोया हुआ था, नींद ले रहा था। 2 वर्ष का बच्चा माँ की गोद मे ही था।

10 वर्ष के बच्चे के मन में वह चीखें घर कर गई। उसने विचार किया- उस बकरे की चीखें कितनी सुन्दर थी, उनके रोने में भी एक संगीत बज रहा था। ध्यान रहे! जिस व्यक्ति का जीवन धर्म अनुशासित नहीं होता, धर्म प्रभावित नहीं होता, उन चीखों में भी उसे हँसी आती है, उन चीखों में भी हर्ष होता है।

चीखें सुनकर तो हमारा रोम-रोम काँप न जाय! चीखें सुन नहीं सकते। कान फट जाय, हृदय पिघल जाय, मस्तिष्क एकदम खण्डित बन जाय। लेकिन उस बच्चे के हृदय में तो ऐसा था कि इन चीखों को बार-बार सुनूँ। उसने विचार किया, मुझे चीखे तो सुननी हैं। उसके विचार देखिए। सोचा- कोई बकरा तो है नहीं और चीख तभी

आती है तब गर्दन पर छूरा चले। उसने विचार किया और धीरे से जो भाई सो रहा था उसके पास चला गया। धीरे-धीरे छूरा उसकी गर्दन पर चलाने लगा वह रो पड़ा चीखने लगा। चीखों को सुनकर बड़ा भाई मन में बड़ा आनन्दित होने लगा। आहा आहा वैसी ही चीखें हैं। गर्दन कटने लगी वह बेचारा जोर-जोर से चिल्लाने लगा।

माँ ने जब चीखें सुनी तो वह दौड़ी हुई आई कि बच्चा क्यों रो रहा है? देखा तो सन्न रह गई। बड़ा भाई छोटे भाई की गर्दन पर छूरा चला रहा था। माँ ने ज्यों ही देखा- प्रचंड रूप धारण कर लिया। माँ दौड़ती हुई पास आई। बड़े भाई ने माँ के विकराल रूप को देखा और डर गया। सोचा- कहीं ऐसा न हो माँ मुझे मार दे। वह छूरे को वहीं छोड़कर पीछे भागने लगा। दूसरी मंजिल में यह सारी घटना घट रही थी। 10 वर्ष का बच्चा दौड़ता-दौड़ता आया ध्यान रहा नहीं और ऊपर से धड़ाम से नीचे गिर गया। इधर वह बच्चा खत्म हो गया नीचे गिरकर। उधर वह बच्चा जिसकी गर्दन पर छूरा चलाया था वह भी खत्म हो गया।

इधर तीसरा बच्चा जिसे माँ रसोई के पास छोड़कर आई थी। अचानक खेलते-खेलते हाथ स्टोव के पास चला गया और उबलता हुआ पानी खौलता हुआ पानी उसके शरीर पर पड़ा। वह बच्चा वहीं पर खत्म हो गया। तीनों बच्चे पल भर में समाप्त हो गये।

ये सारी घटनाएँ इसलिए होती है कि व्यक्ति के जीवन में संस्कार नहीं होते। जिस व्यक्ति का जीवन संस्कारों से अनुशासित होता है। उस व्यक्ति का जीवन महाप्राण बन जाता है। जीवन संस्कारों से अनुप्राणित होना चाहिए अन्यथा पल भर में सारी माया बिखर जाय। सारा जीवन समाप्त हो जाय। कोई पता नहीं चलता।

संस्कारों की जागति पर इसी कारण आचार्य श्री जोर देते हैं। संस्कारों के द्वारा अनुशासित बनें धर्म के द्वारा अनुशासित बनें तो ही श्रावकत्व की सीमा में प्रवेश कर पायेंगे।

हम जरा अपने जीवन के बारे में अतीत के बारे में चिन्तन करें कि हमारा जीवन किस प्रकार का है क्रियाएँ किस प्रकार की हैं? हमारी क्रिया क्या धर्म से अनुशासित है? हमारी क्रिया क्या संस्कारों से अनुप्राणित है। यदि ऐसा नहीं है तो केवल अपने नाम के आगे जैन लगाकर भले ही राजी हो जाये। उपाश्रय में आकर प्रवचन सुनलें भले ही मन्दिर जाकर परमात्मा की पूजा कर लें मगर सोच लें कि अभी तक हमने जैनत्व की नींव को प्राप्त नहीं किया। यदि हमारा जीवन धर्म से अनुशासित है तो निश्चित रूप से हम जैनत्व की गरिमा को प्राप्त कर सकते हैं।

आज इतना ही।

13. अनुशासन

अनंत उपकारी अरिहन्त परमात्मा ने करूणा भाव से भरकर देशना दी। परमात्मा की देशना का एक ही लक्ष्य था, एक ही उद्देश्य 'था कि किस प्रकार जगत् की समस्त चेतनाऐँ मेरे वचनों को अपना आधार बना ले, व्यक्ति के आचरण में उतर जाय ताकि अपने लक्ष्य को उपलब्ध कर सके।

परमात्मा ने केवल ज्ञान के आलोक में व्यक्तियों की दशा देखी, कर्मों की जंजीरों से युक्त आत्मा की दशा देखी और उसी पल उनके भीतर में करूणा उमड़ पड़ी कि किस प्रकार ये जंजीरें समाप्त हो जाय, किस प्रकार इनकी कालिमाएँ समाप्त हो जाय, किस प्रकार से सारी आत्माएँ अपने भीतर के अनावृत्त रूप से परिचित हो जाय। यही करूणा-भाव देशना का कारण बना।

हमारे जीवन का भी एक मात्र लक्ष्य है- किस प्रकार स्वयं की सम्पदा को उपलब्ध करें? इसी दिशा में हमें अपने कदमों को बढ़ाना है। परमात्मा की देशना का आलम्बन लेकर, परमात्मा की देशना का सहारा लेकर, हमें अपने भीतर की दिशा में यात्रा का प्रारंभ करना है। अन्यथा जो मिला, जैसा मिला वह सारा विपरीत क्रियाओं में ही समाप्त हो जायेगा। सपनों की दुनियाँ में समाप्त हो जाएगा, भ्रमजाल में हम सारा वैभव लुटा देंगे और उस वैभव का उपयोग हम कुछ भी न कर पायेंगे।

हमारी दशा बिल्कुल उस व्यक्ति की तरह है। मान लो! किसी व्यक्ति ने हवाई जहाज में बैठकर के विचार किया कि मैं यहाँ से लंदन तक पहुँच जाऊँ। जितना पैट्रोल उस हवाई जहाज में भरना है, जितना द्रव चाहिए हवाई जहाज की टंकी में, भर दिया।

उसने विचार किया- मुझे लंदन की ओर जाना है और ज्योंही आकाश की ओर उड़ा, उसी पल उसके मस्तिष्क में विचार आया कि चलो लंदन तो मैं पहुँच ही जाऊँगा लेकिन अफ्रीकन देशों का एक चक्कर तो लगा लूँ। हवाई जहाज तो मेरे पास में है ही। यह सोचकर के वह अफ्रीका का चक्कर लगाता है, पेट्रोल उसका वहीं पर समाप्त

हो जाता है और वह व्यक्ति लंदन नहीं पहुँच पाता। बीच में ही उसे विध्वंस के नजारे को देखना पड़ता है अपने लक्ष्य तक नहीं पहुँच पाता।

पैट्रोल यदि हवाई जहाज का समाप्त हो जाय तो नीचे गिरना ही होगा। यदि वह डायरेक्ट यात्रा करता इधर-उधर नहीं घूमता अन्य विचार नहीं करता और सीधे लंदन की ओर कूच करता तो वह पेट्रोल की मदद से आराम से अपने लक्ष्य तक पहुँच जाता।

ध्यान रहे! हमें जो एनर्जी मिली ऊर्जा मिली शक्ति मिली उस ऊर्जा का उपयोग मोक्ष की यात्रा के लिए करना है आत्म जागृति की दिशा में करना है लेकिन हम तो सारी ऊर्जा को संसार में ही नष्ट कर डालते हैं। एक दिन सारी ऊर्जा इस तरह से नष्ट हो जाएगी।

जीवन, अन्तर दिशा में यात्रा करने के लिए मिला लेकिन संसार में ही ऊर्जा को समाप्त कर देंगे तो उस दिशा में एक भी कदम नहीं बढ़ा पायेंगे। हमारा जहाज *धराशायी हो जाएगा। हम कुछ भी नहीं कर पायेंगे* सारा जीवन व्यर्थ चला जाएगा। हमें जागना है होश में आना है।

समय जो बीता जा रहा समय जो बीतता जा रहा ऊर्जा जो समाप्त होती जा रही उसका उपयोग पूरा-पूरा कर लेना है कहीं ऐसा न हो कि हमारे लक्ष्य की आराधना अधूरी रह जाय। हर पल हमें सावधान रहना है ऐसा न हो कि हमें साधना बीच में समाप्त कर देनी पड़े और बीच में ही हमारा जहाज नष्ट हो जाय। कहीं ऐसा न हो कि बीच में ही हमारी शक्ति समाप्त हो जाय समय समाप्त हो जाय। अनुकूलता और समय की ऊर्जा जो उपलब्ध हुई कहीं ऐसा न हो कि ऊर्जा बीच में ही समाप्त हो जाय और हम अपने लक्ष्य तक नहीं पहुँच सकें। पल प्रतिपल जागरूक बनना है होश में आना है बेहोशी को तोड़ डालना है।

लेकिन हम तो उसी बेहोशी में जीते है और उसी के लिए उसी दुनियाँ के लिए, सपनों के लिए, अपनी सारी ऊर्जा को समाप्त कर डालते हैं। ऊर्जा का उपयोग स्वयं की आत्मा के लिए नहीं हो पाता। ऊर्जा को हम व्यर्थ के चक्कर में समाप्त कर डालते हैं।

ऊर्जा यदि एक बार समाप्त हो जाय तो पुन ऊर्जा प्राप्त नहीं की जा सकती। न मालूम कितने पुण्य के संचय से हमें यह ऊर्जा मिली हमने यदि इसे व्यर्थ में खो दिया नष्ट कर दिया तो निश्चित रूप से हम अपना जीवन हार जायेंगे लेकिन हम तो अपनी आँखें बन्द करके - आँखें खुले तो बाहर का नजारा हमारे सामने आये। हमने तो अपनी आँखें ही बन्द कर रखी हैं अपनी आँखों को अन्य दिशा की ओर मोड़ रखा है जानते हुए भी अनजान बन रहे हैं हम ये सारी बातें जानते हैं निश्चित रूप से जानते हैं फिर भी हमारे अज्ञान दशा की परतें इतनी मोटी हो गई है - अज्ञान दशा की परतें जब तक समाप्त न हो जाय हमारे भीतर में ज्ञान की किरणों का प्रवेश कैसे

होगा? हम जानते हुए भी अनजान बन रहे हैं। हम देखते हुए भी इस प्रकार का नाटक कर रहे हैं, जैसे हम नहीं देख पा रहे हैं, जैसे हमें कुछ भी पता नहीं है।

एक बच्चे ने अपने पिता से कहा- सोलह वर्ष का बालक था, उसने पिताजी से कहा- मैं वाद-विवाद करूँ, चाहे गणित के विषय में हो, चाहे और किसी अन्य विषय में हो, कोई व्यक्ति मुझे हरा नहीं सकता।

पिता ने कहा- तुम्हारी यह बात बड़ी अजीब लगती है, अतिशयोक्ति से युक्त लगती है। अभी तुम्हारी 16 वर्ष की उम्र है, अभी तक कोई ज्यादा पढ़ाई वगैरह की नहीं और तुम कहते हो कि मुझे कोई हरा नहीं सकता। यह बात तुम्हारी समझ में नहीं आई।

उसने कहा-मान लो! गणित का प्रश्न मुझे दिया जाय कि 5 और 4 कितने होते हैं, अगर मैं कहूँगा कि आठ होते हैं तो सामने वाला कहेगा कि नहीं, नौ होते हैं। एक तरह से मैं हार जाऊँगा। 5 और 4 मिलकर नौ होते हैं, यह तो मैं जानता हूँ लेकिन मैं तो यही कहूँगा कि 8 होते हैं। जो व्यक्ति 9 कह रहा है, उस व्यक्ति की बात को मैं मानूँगा ही नहीं, अपनी ही जिद पर अड़ा रहूँगा। व्यक्ति इकट्ठे होकर कहें कि 9 होते हैं, यदि मैं उनकी बात को मानूँगा ही नहीं तो मुझे कैसे हरा पायेंगे, कैसे स्वयं जीत पायेंगे।

हमारी दशा तो बिल्कुल ऐसी ही है, हम जानते हैं कि 5 और 4 नौ होते हैं लेकिन हमने तो 8 की संख्या पर ही जिद अड़ा रखी है। हम जानते हुए भी, देखते हुए भी अज्ञान भावों को ही शब्दों के द्वारा अभिव्यक्त कर रहे हैं।

मि. जटा शंकर एक बार जा रहा था, गुजर रहा था रास्ते से। बीच में उसे एक भिखारी मिल गया। भिखारी ने कहा- मैं अंधा हूँ, कुछ पैसा दे जाओ। बड़ा पुण्य होगा। भगवान तुम्हारी रक्षा करेगा। जटा शंकर ने उसकी दशा देखी। वैसे वो दान देने का आदी नहीं था, मन में कोई विचार नहीं था कि मैं इसे भीख दे दूँ। फिर भी खड़ा हो गया। सोचा- यह कहता है कि मैं अंधा हूँ लेकिन लगता तो नहीं है, इसकी आँखों को देख कर के कि यह अन्धा है, यह झूठ बोल रहा लगता है। जटा शंकर ने कहा- क्या प्रमाण है कि तुम अंधे हो? यदि तुम अन्धे हो तो मैं निश्चित रूप से तुम्हें भीख दूँगा। प्रमाण क्या है तुम्हारे पास कि तुम अन्धे हो?

भिखारी ने कहा- तुम्हें प्रमाण चाहिए कि मैं अन्धा हूँ तो अभी प्रमाण बताता हूँ। वो देखो- सामने हरे रंग का बंगला है। बीच में लाल रंग है और उस पर "मधुरम्" लिखा हुआ नजर आ रहा है? जटा शंकर ने कहा- बिल्कुल स्पष्ट वह हरे रंग की बिल्डिंग दिखाई दे रही है। उस भिखारी ने कहा- बस! आपको वह बिल्डिंग नजर आ रही है लेकिन मुझे वह नजर नहीं आ रही, यही प्रमाण है।

उस व्यक्ति ने कहा - जरा होश की बात करो? तुम स्वयं ही कहते हो कि वह हरे रंग की बिल्डिंग सामने है और स्वयं ही कहते हो कि वह बिल्डिंग मुझे नजर नहीं आती।

व्यक्ति की बातें बड़ी विचित्र होती है जानते हुए भी व्यक्ति अन्धा बना रहता है। जानते हुए भी व्यक्ति अनजान बना रहना चाहता है। हमारी दशा भी ऐसी ही है। हम जानते हैं कि हमारी ऊर्जा पल प्रतिपल समाप्त हुई जा रही शक्ति समाप्त होती जा रही है। कहीं ऐसा न हो कि हमारी साधना बीच में ही रह जाय हम यात्रा के पड़ाव पूरे न कर पाये बीच में ही हमें रुक जाना पड़ें समाप्त हो जाना पड़े और हमारी ऊर्जा समाप्त हो जाय।

ध्यान रहे। जीवन में जो ऊर्जा मिली इन्द्रियाँ मिली सारे साधन मिले सारी शक्ति मिली समय मिला अनुकूलताएँ मिली परमात्मा का उपदेश श्रवण करने को मिला। ये सारी अनुकूलताएँ, सारी शक्ति स्वयं की यात्रा के लिए हमें मिली है। मोक्ष की यात्रा के लिए मिली है।

लेकिन हम सारी शक्ति का उपयोग किन कार्यों के लिए कर रहे हैं? कहीं ऐसा न हो कि व्यर्थ के चक्कर में फंस जाय व्यर्थ के भ्रमजाल में फंस जाय और उसी में हमारी सारी ऊर्जा समाप्त हो जाय और जब हमें याद आए ऊर्जा के बारे में उस लक्ष्य के बारे में उस आराधना और साधना के बारे में स्वयं की आत्मा के चिन्तन के बारे में जब स्वयं के बारे में स्मृति आए तब कहीं ऐसा न हो कि उस समय हमारी ऊर्जा समाप्त हो जाय। फिर आँखों में आँसू होंगे। मन में रूदन होगा। हमें तुरंत अपनी शक्ति के प्रति सावधान हो जाना है। अपनी ऊर्जा के प्रति जागरूक बन जाना है।

यह ऊर्जा कोई सामान्य नहीं। यदि इस ऊर्जा का उपयोग आत्मा के लिए किया जाय तो वह ऊर्जा प्रबल निमित्त बन सकती है। ऐसी अनमोल ऊर्जा का उपयोग हम माया प्रपंच में कर रहे हैं।

आचार्य हरिभद्र सूरि महाराज धर्मबिन्दु ग्रंथ के द्वारा जागृति के सूत्र देते हैं। यदि ये सूत्र हमारे भीतर में चोट कर जाय तो हमारे भीतर की चेतना जागरूक बन जाय भीतर की बेहोशी समाप्त हो जाय तन्द्रा टूट जाय मूर्च्छा भग जाय और हमारे भीतर में जागृति की किरणें जागृति का आलोक प्रसारित हो जाय फैल जाय।

जागृति के सूत्रों को भीतर में उतारना है। आचार्य श्री जो सूत्र फरमा रहे हैं - बड़ा महत्वपूर्ण सूत्र कहा- 'शिष्टाचार प्रशंसने इति'

योग शास्त्र में हेमचन्द्राचार्य ने फरमाया- 'शिष्टाचार प्रशंसक' उन्होंने इस सूत्र को दूसरे नम्बर पर रखा है।

इसे हम समझे। अपने भीतर में, अन्तस्तल मे इसे उतारे कि इस सूत्र का रहस्य क्या है? हमें स्वयं से अनुशासित बनना है, धर्म से अनुशासित बनना है, धर्म से हमारा जीवन अनुशासित बन जाय।

यदि हमारा जीवन संस्कारों से अनुशासित होगा, परमात्मा की देशना से अनुशासित होगा, तो निश्चित रूप से व्यक्ति का प्रवेश श्रावकत्व की सीमा में हो जाएगा, परमात्मा की दुनियाँ में हो जाएगा।

हमारा आचार, हमारे उपक्रम किस प्रकार के हैं? क्रियाएँ किस प्रकार की हैं? क्रियाएँ धर्म से अनुशासित है या नहीं, हमारी क्रियाएँ धर्म से अनुप्राणित है या नहीं?

इस सूत्र का बड़ा व्यापक अर्थ है। यह सूत्र धर्म के क्षेत्र में भी उतना ही कीमती है, समाज के क्षेत्र में भी उतना ही मूल्यवान है। व्यक्ति समाज में रहता है। लम्बा समय गुजारता है, समय गुजारने के लिए अपना एक व्यवस्थित खाका तैयार करना पडता है, उसका व्यवहार सुबह से शाम तक अन्य व्यक्तियों के साथ में कैसा हो? उसके अडौस-पडौस में जो रहते हैं, जो भी मिलने-जुलने वाले हैं, उन व्यक्तियों के साथ में उसका व्यवहार कैसा हो?

यह सूत्र वह शिष्टाचार भी समझाता है। यह सूत्र कहता है- जो व्यवहार की मर्यादा के अनुकूल है, उसी तरह का आचार बनना चाहिए।

पू. यशोविजय जी महाराज को अभिमान आ गया कि मैंने इतने सारे ग्रंथों का अध्ययन कर लिया। उस विद्वता का परिणाम ऐसा हुआ कि वो जहाँ भी जाते, आगे-आगे अपने नाम का झंडा लगाते। एक तरह से वे झंडे इनकी कीर्ति के सूचक थे, उनके अभिमान के पोषक बनकर रह गये थे।

उन झंडों को देखकर के वे मुनि अपने भीतर में अहंकार का पोषण किया करते थे और विचार करते थे, वाह! मैं कितना विद्वान व्यक्ति हूँ।

शास्त्रकार कहते हैं- यह साधुओं का आचार नहीं! वो कितने भी शास्त्र पढ़ लें, कितनी भी तपस्या कर लें, उस शास्त्र ज्ञान को भी, तपस्या को भी स्वयं, की मर्यादाओं को भी यदि कोई मुनि अहंकार का निमित्त बना लेता है तो निश्चित रूप से वह व्यक्ति साधना से च्युत हो जाता है।

ज्ञान का आयोजन इसलिए है कि भीतर का अहंकार समाप्त हो जाय, तपश्चर्या का आयोजन इसलिए है कि भीतर के कषाय समाप्त हो जाय, सारी क्रियाएँ इसलिए है कि भीतर की सारी कालिमा समाप्त हो जाय। यदि वो ही सारी बातें कालिमा के पोषण की निमित्त बन जाय तो साधना के क्षेत्र से वह दूर हो जाता है, यह शिष्टाचार नहीं है।

आचरण की मार्यादा के भीतर में ही हमें रहना होता है। वो मुनि महाराज चले जा रहे थे। एक गाँव में पहुँचे। उस गाँव में एक बुढ़िया माजी रहती थी वो भी पढी लिखी थी साधु सन्तों के खूब प्रवचन सुने थे।

उसने हृदय में विचार किया- मुनि महाराज की दशा देखी उनके आगे चल रहे दंडो को देखा। माजी ने विचार किया- लगता है मुनि म भीतर में अहंकारी बन गये। ज्ञान पढ़कर भी अहंकारी हो जाय तो वह ज्ञान भी कचरा बन जाता है वह ज्ञान भी अज्ञान का पोषक बन जाता है।

बुढ़िया माजी ने विचार किया- मेरा कर्त्तव्य है कि मुझे इसके लिए पुरुषार्थ करना चाहिए, मेरा आचार क्या कहता है? मेरी आचार मर्यादा क्या कहती है? उनके मन में अश्रद्धा के भाव जागृत नहीं हुए, द्वेष भाव जागत नहीं हुआ। मन में यह विचार नहीं किया कि इनके अहंकार की बातें सारे गाँव में फैला दूं। नहीं मेरी आचार मर्यादा बिल्कुल दूसरी है उसी मर्यादा में मुझे रहना है। वह माजी महाराज के पास में गई और वन्दन किया- उसके पश्चात् कहा- मुझे कुछ समस्याओं का समाधान करना है।

'तुम्हारी क्या समस्या है माजी।'

माजी ने पूछा- बताओ गौतम स्वामी प्रभु का ज्ञान कितना ऊँचा था? यशोविजयजी म ने कहा- उनके ज्ञान की क्या बातें करें। वे तो स्वयं द्वादशांगी की रचना करने वाले थे। उनके ज्ञान की कोई सीमा नहीं। माजी ने पूछा- मुझे यह बताओ कि उनके बाद जो चतुर्दश पूर्वधर हुए आचार्य भगवन्त हुए उनका ज्ञान कितना ऊँचा था?

यशोविजय जी महाराज ने कहा- उनके ज्ञान की क्या गरिमा कही जाय? पूछा- महाराज! आपका ज्ञान तो उनके समकक्ष होगा ही? महाराज ने कहा- आप क्या बातें कर रही हो? उनके समकक्ष मुझे कहाँ बिठाते हो। मैं अति अल्पज्ञ हूं। मैंने तो थोड़ा-सा ही अध्ययन किया है ज्यादा कुछ भी नहीं कर पाया।

माजी ने पूछा- जब आपने इतना-सा अध्ययन किया है तब आपके आगे चार दंडे चलते हैं तो उनके आगे कितने दंडे चलते होंगे। मुझे जरा यह तो बताओ।

उसी समय महाराज की आँखें खुल गईं। महाराज अपने भीतर में उतर गये चिन्तन स्वयं के भीतर में उपस्थित हो गया। अहंकार की चट्टान के ऊपर पश्चाताप के आँसू बिखर गये पश्चाताप के आँसुओं में वह सारी चट्टान समाप्त हो गई गल गई चूर-चूर हो गई।

महाराज विचार करने लगे कि किस तरह की मेरी दशा है। किस तरह मैं मोह दशा में भीतर के भान को भूल गया। मैंने अध्ययन किया तो स्वयं के लिए किया। स्वयं की जागरूकता के लिए किया। मैंने उसी ज्ञान को बेहोशी का आधार बना दिया उसी ज्ञान को मैंने मूर्च्छा का निमित्त बना लिया।

ध्यान रहे। यही श्रावक का आचार है, जरा चिन्तन करें कि हमारा आचार किस प्रकार का है? यदि हमारा आचार श्रावकत्व की सीमा के अन्तर्गत है तो चाहे हम धर्म के क्षेत्र में रहे, चाहे समाज के क्षेत्र में रहे।

शास्त्रों में एक रूपक आता है ।

एक आचार्य भगवन्त अपने 17-18 शिष्यों के साथ विराज रहे थे। आचार्य भगवन्त श्रुतधर थे। वे हमेशा वाचना दिया करते थे। लेकिन एक बार स्थिति ऐसी आ गई कि उनके जो शिष्य थे, उन्होंने पढ़ने के प्रति अरूचि दिखाई। आचार्य श्री ने विचार किया- मेरा यहाँ कोई उपयोग नहीं- ये शिष्य मेरी बात को स्वीकार नहीं करते। उनके मन में आगम के अर्थ के प्रति कोई जिज्ञासा के भाव नहीं।

उन्होंने विचार किया कि ऐसे निकम्मे शिष्यों के साथ मुझे नहीं रहना चाहिये और एक बार ऐसा ही हुआ कि जब देख लिया कि इन शिष्यों के तिलों में कोई तेल नहीं। तो एक बार सुबह का समय था, सभी सो रहे थे। आचार्य ने विचार किया- मुझे तो अब यहाँ से प्रस्थान कर देना चाहिए। किसी अन्य गण को प्राप्त कर लूँगा, अन्य योग्य साधुओं के साथ में रह जाऊँगा और उनमें जो मुनि स्वाध्याय की रूचि वाले होंगे, उनके पास रहकर स्वाध्याय करूँगा। यह विचार कर अन्य देश की ओर निकल गये। वो तो वहाँ से रवाना हुए, सुबह ही सुबह सारे शिष्य उठे, देखा तो गुरू महाराज नहीं। उसी पल पश्चाताप के आँसू बह चले। ऐसे समर्थ गुरू को पाया, शिष्यत्व स्वीकार किया। फिर भी, अमृत कुण्ड के पास रहने पर भी आचमन के द्वारा कोई आनन्द नहीं ले सके। हमने अनुयोगों का अर्थ नहीं समझा, न इच्छा की, इसलिए आचार्य हमसे रूठकर चले गये।

लेकिन हमें पुन गुरूवर आचार्य की निश्रा में जाना है। खोज करने के लिए वे भी मुनि चले। आचार्य म॰ तो आगे-आगे बढ़ते गये। शिष्य समुदाय भी पीछे-पीछे। गाँव में पूछते तो कहते- यहाँ से भी आचार्य पधार गये, दूसरे में, तीसरे गाँव में, इस प्रकार पीछे-पीछे चल रहे थे। आचार्य महाराज एक बार चलते-चलते एक गाँव में रूक गये।

वहाँ पर भी एक श्रुतधर आचार्य विराजमान थे। सोचा- यहाँ पर जाऊँगा तो मेरी सभी प्रकार की- अनुकूलताओं का उपयोग होगा, योग्यता का भी मूल्यांकन होगा। वे आचार्य वहाँ पहुँच गये लेकिन वहाँ पर स्थिति बड़ी विचित्र देखी। विचार किया- ऐसे श्रुतधरों की भी ऐसी दशा!

आचार्य महाराज को वहाँ पर कोई सम्मान नहीं मिला। फिर भी ठहरे। दूसरे दिन उग्घाडा पोरिसी के पश्चात् वाचना का प्रारंभ हुआ- आचार्य भी मुनि की तरह उपस्थित हुए। उस श्रुतधर ने आचार्य से पूछा- जो मैं कहता हूँ, वह तुम्हें समझ में आता है। आचार्य ने हाँ-कहा, क्योंकि वे स्वयं श्रुतधर थे। सोचा- ये ज्ञानी तो है लेकिन इनके भीतर में अहंकार की रेखा ने प्रवेश कर लिया है। आचार्य मौन रहे। उनसे

कभी-कभी पूछते कि क्या तुम्हारे समझ में बात आती है तो कहते- आप तो बड़ी सहज सरल व्याख्या करते हैं अच्छी तरह से समझ में आती है।

इधर उनकी जो शिष्य मंडली थी वो आचार्य की खोज करते-करते वहाँ पर पहुँच गई तो देखा उनके आचार्य म नीचे विराजमान हैं और अन्य श्रुतधर पटटे पर विराज कर वाचना कर रहे हैं। शिष्य मंडली वहाँ पर पहुँची और ज्योंही गुरू महाराज का चेहरा देखा तुरंत पश्चाताप के आँसू आ गये। उनके चरणों में झुक गये वंदना की।

आचार्य म जो श्रुतधर वहाँ पर वाचना देते थे। उन्होंने देखा कि ये मुनि कर क्या रहे हैं? श्रुतधर मैं हूँ और वंदना इनको कर रहे हैं। श्रुतधर उठकर आये पूछा- शिष्यों ने सारी बात बताई तो पता चला कि ये आचार्य श्रुतधर हैं और कोई नहीं। उस श्रुतधर ने उनका नाम सुन रखा था।

ज्योंही श्रुतधर ने सारी बातें सुनी तो तुरंत पश्चाताप के आँसू बह चले। चरणों में वंदना की और कहा- आपका बड़ा अविनय किया- आपको ऊपर बिठाना था लेकिन नीचे बिठाया। जो वद्ध आचार्य थे उनके मन में उसी पल प्रसन्नता छा गई कि चलो इनका अहंकार समाप्त हो गया टूट गया।

यह है शिष्टाचार। अलग-अलग व्यक्तियों का अलग-अलग क्षेत्र में अलग-अलग शिष्टाचार होता है। जब तक हमारा जीवन धर्म से अनुशासित नहीं होगा अनुप्राणित नहीं होगा तब तक हम समाज के क्षेत्र में भी आगे नहीं बढ़ पायेंगे। धर्म के क्षेत्र में तो बढ़ने की बात ही नहीं।

हमें अपने भीतर में जाना है। स्वयं की उपलब्धि करनी है। उसके लिए यह प्रमुख सूत्र है। अन्यथा समय चूक रहा ऊर्जा समाप्त हुई जा रही है मैंने शुरू में कहा- हमें ऊर्जा मिली है सिर्फ एक स्टेशन तक जाने के लिये ही नहीं। बल्कि आत्म-क्षेत्र में प्रवेश करने के लिए मिली है। हमें जीवन में जो ऊर्जा मिली एनर्जी मिली कहीं व्यर्थ न चली जाय यदि व्यर्थ चली गई तो निश्चित रूप से जीवन हार जाऐंगे। हमें जागरूक होना है। पल प्रतिपल जागति की दिशा में अपने कदमों को आगे बढ़ाना है अपने लक्ष्य की साधना करनी है।

आज इतना ही।

14. संयम कब ही मिले

अनंत उपकारी श्रमण भगवान महावीर ने [illegible] की साधना की उपलब्धि करने के पश्चात् सम्यक् ज्ञान से देखा। [illegible] में सत्ता का [illegible] स्वरूप और केवल ज्ञान के आलोक में उन्होंने जो भी देखा— जगत् के समस्त पदार्थों को देखा, उसे देशना के द्वारा अभिव्यक्त किया। किस प्रकार आत्मा [illegible] स्वयं के स्वभाव को जान ले पहचान ले। परमात्मा की देशना— देशना के [illegible] में शास्त्र हैं, आगम हैं, उन सारे आगमों में सारे शब्दों में एक मात्र यही तत्त्व की प्ररूपणा की गई कि किस प्रकार व्यक्ति स्वयं के चैतन्य को प्रकट करे। किस प्रकार भीतर के दुर्गुणों का विसर्जन करे और किस प्रकार भीतर में विशुद्ध चैतन्य का सर्जन करे।

विसर्जन और सर्जन की प्रक्रिया में यदि हमारी रुचि जग जाय। किन चीजों का विसर्जन करें और किन भावों का सर्जन करें? किन भावों के सर्जन के द्वारा भीतर के दुर्गुणों का विसर्जन हो जाय और उन [illegible] के विसर्जन के द्वारा चेतना के नये आयामों का सर्जन हो जाय। इस प्रक्रिया को व्यवस्थित रूप से जान लेना है। हम अपने भीतर की शक्ति, भीतर की क्षमता को उपलब्ध हो जायेंगे।

परमात्मा के पास परमात्मा के प्रथम शिष्य गणधर गौतम पहुँचे। इन्द्रभूति गौतम परमात्मा के सामने जब भी उपस्थित होते थे, वे प्रश्नों की सूची लेकर के उपस्थित होते थे। कुछ शंकाएँ, कुछ समस्याएँ परमात्मा के सामने रखूँ और परमात्मा के द्वारा समाधान को उपलब्ध करूँ। न केवल मैं बल्कि मेरे निमित्त से सारा विश्व समस्या के समाधान को उपलब्ध हो जाय, इस कारण जब भी परमात्मा के समक्ष गणधर गौतम पहुँचते थे, बहुत सारे साधु और श्रावक भी वहाँ पर उपस्थित हो जाते थे, जिज्ञासा के भाव को लेकर।

गौतम छोटे से छोटे प्रश्न को भी पूछा करते थे और बड़े से बड़े प्रश्न भी। उनके हृदय में परमात्मा के प्रति इतना विनय था, इतनी श्रद्धा थी— उनमें जितना ज्ञान था, यदि उसके आलोक में भी देख लेते तो उन्हें अपने भीतर से ही शंकाओं का समाधान मिल सकता था लेकिन उनकी तो एक मात्र इच्छा थी कि समाधान परमात्मा

द्वारा होना चाहिए। परमात्मा का दिया हुआ समाधान सारे विश्व को जागृत करेगा समस्त जीवों में श्रद्धा का बीजारोपण करेगा।

गौतम गणधर परमात्मा के पास पहुँचे और पहुँचकर बड़ा सीधा-सा सवाल किया। परमात्मन्! जीव किससे भारी बनता है? तुरन्त समझ में आ जाय ऐसा सवाल पूछा। यदि यही सवाल हमारे मस्तिष्क में उभर आये यदि यही सवाल हमारे भीतर में उठ जाय और उस सवाल पर हमारा चिन्तन चले सवाल की गहराईयों में हम डूब जाय तो स्वयं के भीतर का समाधान अपने आप उपलब्ध हो जाय।

लेकिन हम कभी भी इस समस्या के बारे में चिन्तन नहीं करते। ये समस्याएँ जो आत्मगत हैं मूल समस्याएँ हैं इन मूल समस्याओं के ऊपर हम कभी चिन्तन की हथौड़ी नहीं चलाते। हमारे प्रश्न हमारी शंकाएँ हमारी समस्याएँ संसार से सम्बन्धित ही होती है।

हमारे भीतर में वही दृष्टिकोण दृष्टिकोण में अभी तक परिवर्तन नहीं आया। क्योंकि हम संसारी हैं संसार से रचे पचे हैं। इसलिए हमारी शंकाएँ व समस्याएँ भी संसार से सम्बंधित होती हैं।

जिस पल हमारा मन अध्यात्म में रमण कर जाएगा जिस पल हमारे भीतर में आत्मा की रुचि का आविर्भाव हो जाएगा उसी पल हमारी समस्याएँ आत्मा से सम्बन्धित हो जाएगी। गौतम गणधर ने भगवन् से पूछा- किन कारणों से जीव हल्का बनता है? और किन कारणों से जीव भारी बनता है? परमात्मा ने उदाहरण के साथ जवाब दिया- आत्मा तो बिल्कुल ऐसी ही है जैसे- एक तुंबी। जिसका स्वभाव तैरने का है। एक व्यक्ति ने उस तुंबडे के ऊपर मिट्टी का एक लेप लगाया उसे सुखा दिया गया। फिर उस पर एक लेप और लगाया मिट्टी सूख गई। इस प्रकार उसने आठ लेप लगा दिए। आठ लेप सुखा दिये बाद में उसने उस तुंबडे को तालाब में डाला।

परमात्मा ने गणधर गौतम से पूछा- क्या वह तुंबडा तैरेगा! गौतम ने कहा- परमात्मन्! तुंबडा तो डूब जाएगा। परमात्मन् ने फिर पूछा- वह तुंबडा कैसे तैरने लगेगा? गौतम ने जवाब दिया- पानी के संसर्ग से पानी के योग से ज्यों-ज्यों मिट्टी ऊपर से हटती जाएगी त्यों-त्यों वह तुंबडा भी ऊपर आता चला जाएगा। ज्यों ही समस्त मिट्टी हट जाएगी वह तुंबडा अपने शुद्ध स्वरूप को प्राप्त करके तैरने ही लगेगा। बाद में डूबने की कोई संभावना नहीं रहेगी।

परमात्मा ने जवाब दिया- बस! यही जीव के भारी होने और हल्के होने के निमित्त है। जीव यदि कर्मों से युक्त बनता है कर्मों का लेप अपनी आत्मा पर स्वयं के द्वारा चढ़ा देता है उसका विलेपन करता है तो आत्मा भारी बनती है आत्मा संसार में परिभ्रमण करती है और ज्यों ही संसर्ग मिल जाय पानी का स्वयं की साधना का विलेपन दूर होता चला जाएगा। और धीरे-धीरे ऊपर लेप समाप्त हो जायेगा तब हमारी आत्मा हल्की बन जाएगी।

हमे आत्मा को हल्की बनाना है, हमें जागरूक बनना है। मूर्च्छा को समाप्त कर डालना है। क्रमश आत्मा को हल्की बनाना है, तभी हमारी आत्मा शुद्ध स्वरूप को प्राप्त कर पाएगी। जो उसका निजी स्वभाव है, जो उसका मूल स्वभाव है- 'सच्चिदानन्द' तभी हम उपलब्ध कर पायेंगे, जब आत्मा समस्त कर्मों से मुक्त हो जाएगी। यही हमारा मूल लक्ष्य है। हमारे जीवन का एक मात्र यही उद्देश्य है।

हमारा जीवन परमात्मा के आदेशों में, परमात्मा के श्रवण में, परमात्मा की देशना में लग जाय परमात्मा की देशना आप तक पहुँचाई जाती है। इसका एक मात्र कारण है- उस देशना के वातावरण में हमारा प्रवेश हो जाय, ताकि हमारा मन बदल जाय।

एक राजा जब युद्ध भूमि में पहुँचा। उसका बहुत बडा लडाकू हाथी था। युद्ध के अन्दर जब राजा पहुँचा तो उसने हाथी को युद्ध में प्रवृत्त करने की बड़ी चेष्टा की, बड़ा प्रयत्न किया, लेकिन हुआ यह कि वह हाथी जरा भी काम करने को तैयार नहीं हुआ। राजा विचार में पड़ गया कि इस हाथी में एक रात्रि के अन्दर ही कैसे परिवर्तन हो गया। यह लडाकू हाथी कई बडे हाथियो को रौंद डालता था, शत्रुओं को समाप्त कर डालता था। आज यही हाथी बिल्कुल ऐसे ही खडा है। उसे इतने अंकुशों की मार लगाई, इतना प्रयत्न मैं कर रहा हूँ फिर भी वह हाथी टस से मस नहीं होता। यह हाथी आगे जाकर के शत्रु सेना पर वार नहीं कर रहा। यह जरा भी लड़ने को उत्सुक नहीं नजर आ रहा, क्या कारण हो गया?

मंत्री से पूछा- एक ही रात्रि में इसमें परिवर्तन कैसे आ गया? मंत्री ने सोचा- यह बात जरा समझ में नहीं आई। बड़ा लडाकू हाथी, प्रिय शांत बना बैठा है, क्या कारण बन गया। महावत से पूछा गया- जरा कल की रिपोर्ट बताओ कि कल हाथी ने क्या-क्या किया? तुमने इस हाथी को कहाँ रखा? महावत ने कहा- कल मैं इसे शहर नहीं ले जा सका। जंगल में साधुओं की कुटिया थी। वहाँ पर साधु महाराज बिराजमान थे, वहीं पर हाथी को बांध दिया।

मंत्री ने कहा- राज समझ में आ गया। उस स्थान पर बांधा गया- जहाँ साधु अहिंसा मय आचरण करते थे, अहिंसामय क्रिया करते थे, जहाँ पर सुबह से शाम तक स्वाध्यायादि की क्रियाएँ चलती थी, क्रिया करते थे प्रति लेखना की कि किसी जीव की हिंसा न हो जाय। उस हाथी को दिन और रात वहीं पर बांधा गया, इसी कारण इस हाथी के ऊपर भी वही सारे संस्कार आरोपित हो गये, उन्हीं परमाणुओं का इसमें प्रवेश हो गया। वे अहिंसा के, करूणा के परमाणु इसके भीतर में बस गये, और इसी कारण यह हाथी जरा भी लड़ने को तैयार नहीं हो रहा है।

इस हाथी को पुन तैयार करना है तो ऐसे स्थान पर बांधना होगा। जहाँ पर सैनिक लोग युद्धाभ्यास कर रहे हों, जहाँ पर सैनिक लोग बन्दूक चलाने का, तलवारें चलाने का अभ्यास कर रहे हों। तभी इसमें वीरत्व के भाव प्रकट होंगे, अभी तो इसके भीतर में आध्यात्मिक चेतना जागृत हो चुकी है।

ध्यान रहे। यदि हमारा ऐसे वातावरण में प्रवेश हो जाय तो निश्चित रूप से हमारा मन बदल जाय सारी प्रक्रियाएँ बदल जाय। परमात्मा से दूर रहे साधु सन्तों से दूर रहें परमात्मा की देशना से दूर रहें तो हमारे भीतर में परिवर्तन कहाँ से होगा?

परिवर्तन लाने के लिए उस क्षेत्र में हमें प्रवेश करना होगा जो क्षेत्र परमात्मा से प्रभावित है जो क्षेत्र परमात्मा की देशना से प्रभावित है उनमें यदि हमारा प्रवेश हो गया तो निश्चित रूप से हमारा मन बदल जाएगा हमारी प्रक्रियाएँ बदल जाएगी हमारी चिन्तन धारा परिवर्तित हो जाएगी।

मि जटा शंकर को प्यास लगी बम्बई की चौपाटी के ऊपर देखा- सामने ही ठंडे पानी की मशीन दिखाई दे रही थी। एक लड़की वहाँ पर खड़ी थी पानी पिला रही थी। जटा शंकर के कदम उसी दिशा की ओर बढ चले। उसने पूछा- एक गिलास पानी के क्या दाम हैं? वह लड़की बोली- 15 पैसे। जटा शंकर ने कहा- 15 पैसे बहुत ज्यादा होते हैं, 10 पैसे में एक गिलास दे दो।

लड़की ने कहा- मैं आपसे कुछ कहना चाहती हूँ, पानी तो मैं आपको बाद में पिला दूंगी- पहले कुछ कहना है। आप 10 पैसा और 15 पैसे की बात करते हैं तो इससे सिद्ध हो गया कि आपको अभी तक प्यास नहीं लगी। यदि आपको तीव्र प्यास लगी होती तो पहले पानी अपने भीतर में उतारते और बाद मे मुझसे सवाल पूछते कि एक गिलास पानी के कितने पैसे हुए?

आप पहले पैसे पूछ रहे हैं और उसमें भी 10 और 15 का मोल भाव कर रहे हैं तो इसका मतलब है कि आपको सम्पूर्ण रूपेण प्यास नहीं लगी।

ध्यान रहे। यदि अध्यात्म की प्यास हमारे भीतर में जग जाय तो सारी समस्याएँ समाप्त हो जाय भीतर के सारे तर्क समाप्त हो जाय। उस पल कोई तर्क हमारे भीतर में न रहे उस पल तो किसी प्रकार का संसार का आकर्षण हमारे भीतर में न रहे उस पल तो हमारे भीतर में तीव्र प्यास की पूर्णाहुति के लिए, प्यास बुझाकर परम तृप्ति का आस्वाद ग्रहण करने के लिए, हमारे कदम उस दिशा की ओर बढ़ चलें।

कितनी भी बाधाएँ आए, परेशानियाँ आए खाईयाँ आए, हमारे भीतर में प्रसन्नता छा जाएगी। धर्म को पार करने में हम अपने पुरुषार्थ को पूरा-पूरा लगा देंगे इस प्रकार की प्यास हमारे भीतर में जो इस प्रकार की रुचि का आविर्भाव भीतर में हो जाय।

आचार्य हरिभद्र सूरि महाराज इस धर्म बिन्दु ग्रन्थ के अंदर बड़ी महत्वपूर्ण बात कर रहे हैं। जरा समझें। पहले उन्होंने शिष्टाचार की बात कही अब फरमाते हैं कि शिष्टाचारियों की प्रशंसा करें। जरा सुनें। प्रशंसा करना तो बड़ी मामूली बात है लेकिन उसके भीतर का जो रहस्य है उसे देखना है।

व्यक्ति शिष्टाचारियों की प्रशंसा करे। शिष्टाचारियों की प्रशंसा तभी व्यक्ति कर सकेगा जब उसके मन में सामने वाले व्यक्ति के प्रति आदरभाव हो। आदर का भाव जग जाय तभी व्यक्ति प्रशंसा करता है। सबसे पहले तो उसे अपनी दृष्टि में यह बिठाना होगा कि शिष्टाचारी कौन?

शिष्टाचारियो का पता लगाने के लिए, शिष्टाचार को जानने के लिए उसके भीतर में वह दृष्टि जगे। जिसकी दृष्टि संसार से जुडी हुई नहीं है, वही व्यक्ति उसकी पहचान कर पाएगा, जान पाएगा कि शिष्टाचारी कौन है? जान लेगा और उसी पल भीतर में प्रशंसा के फूल खिल उठेंगे।

आचार्य श्री प्रशंसा की बात इसलिए नहीं करते कि यदि तुम सामने वालों की प्रशसा करोगे तो वह सामने वाला प्रसन्न रहेगा, वह व्यक्ति हमारे ऊपर राजी हो जाएगा। इस हेतु से प्रशंसा करने की बात नहीं की। आचार्य भगवन्त कहते हैं कि प्रशंसा करो इसलिए कि प्रशंसा के गुण अपने भीतर में उपलब्ध हो जाय, उसकी सुगंध भीतर में फैल जाय।

जरा इस सूत्र का रहस्य जानने का चिन्तन करें। हम कई कारणों से प्रशंसा करते हैं। या तो हम उस व्यक्ति के जैसा होना चाहते हैं या हम उसे उसी प्रकार की स्थिति में दिखाना चाहते हैं, तभी हम किसी व्यक्ति की प्रशंसा करते हैं।

जैसे- कोई व्यक्ति बाजार में चला जा रहा हो। बाजार में शोरूम देखा, उस शोरूम की व्यक्ति प्रशंसा करता है तो इसका मतलब यही है कि उस शोरूम के प्रति व्यक्ति का बड़ा आकर्षण है, वह चाहता है कि वैसा ही शोरूम उसके पास भी हो जाय।

जिसके प्रति व्यक्ति का आकर्षण होता है, व्यक्ति उसी की प्रशंसा करता है, यह निर्विवाद सत्य बात है। यहाँ आचार्य भगवन्त प्रशंसा की बात कर रहे हैं, इसका मूल मतलब यही है कि हमारे मन में उन शिष्टाचारियों के प्रति, उन शिष्ट गुणों के प्रति एक तरह का आकर्षण जन्म लें, यदि आकर्षण हमारे भीतर में होगा तो ही हम प्रशंसा कर पायेंगे।

हमारे भीतर में यदि वैभव का आकर्षण है तो हम वैभव की प्रशंसा करेंगे। हमारे भीतर में यदि संसार का आकर्षण है तो हम सांसारिक रूप से जो सुखी व्यक्ति है, उनके प्रति प्रशंसा की दृष्टि से देखेंगे। व्यक्ति प्रशंसा इसलिए करता है कि सामने व्यक्ति के पास जो है, उसका आकर्षण उसके भीतर में है। उस आकर्षण के बल पर हम प्रशंसा करते हैं। जिसका दृष्टिकोण संसार से हटकर गुणों के प्रति आकृष्ट बन गया, वही व्यक्ति शिष्टाचारियों की प्रशंसा कर सकता है। यह तभी होगा जब व्यक्ति के भीतर में गुणों के प्रति आकर्षण हो जाय।

यदि संसार के प्रति आकर्षण है, संसार के प्रति हमारी रूचि है तो प्रशंसा का आधार भी संसार होगा। एक व्यक्ति कोई गरीब है तो हम उसकी ओर नजर उठाकर

भी नहीं देखते। एक व्यक्ति सुखी है तो हम उसके सुखी जीवन की चारों ओर प्रशंसा करते फिरेंगे। इसका एक मात्र कारण यही है कि अभी तक हम संसार के आकर्षण से बंधे हैं।

एक गरीब व्यक्ति परमात्मा के पास पहुँच गया। परमात्मा का समवशरण देखा मन में अपार प्रसन्नता हुई। परमात्मा के पास पहुँच गया। परमात्मा की देशना सुनी। वह भले ही धन से गरीब था लेकिन बुद्धि से अमीर था। उसने परमात्मा के पास जाकर कहा कि मैं आपके धर्मसंघ से दीक्षित होना चाहता हूँ। परमात्मा ने कहा- तुम जानते हो! दीक्षा लेने का अर्थ क्या है? परमात्मा ने सारी बातें समझाई। तुम दीक्षा लोगे- हिंसा का त्याग करना पड़ेगा असत्य का त्याग करना पडेगा स्त्री संग का त्याग करना पडेगा तुमको अपने भीतर से परिग्रह का मोह छोडना होगा। तुम्हें सरल होना पडेगा क्षमावान होना होगा धैर्यवान् होना होगा दूसरों के शब्दों को सहन करना होगा दूसरों की बुराईयों को भी सहन करना होगा तो दूसरों की प्रशंसा भी तुम्हें सहन करनी होगी।

उस बालक ने कहा- भगवन् अब मैं जग गया हूँ। मुझे ये सारी शर्तें मंजूर हैं। मुझे आप दीक्षा दो। परमात्मा ने उसे दीक्षा दे दी। द्रमक मुनि उनका नाम था। वह जाते हमेशा बहरने के लिए नगरों के अन्दर। उन गलियों में भी जाते जहाँ पर उसके परिचित लोग थे। दीक्षा से पूर्व वह द्रमक मुनि एक भिखारी था। गाँव के लोग कहा करते थे कि देखा! यह पहले भिखारी था और अब साधु बन गया। लोग तरह-तरह की बातें करते। लोगों की इस तरह की आदत होती है। कई व्यक्ति उस भिखारी को देखकर चांटे भी लगा देते।

कहीं हमारी दष्टि तो ऐसी नहीं। परमात्मा की श्रमण अवस्था में श्रमण प्रक्रिया में जो पहुँच गया निश्चित रूप से सारे व्यक्ति उसके लिये समान बन गये। वहाँ का जो महामंत्री था उसने जब इस प्रकार की बातें सुनी कि लोग एक पंचमहाव्रत धारी की अवहेलना कर रहे हैं। उसने मन में विचार किया कि मुझे इसका कुछ न कुछ निदान अवश्य करना है।

एक बार ऐसा हुआ कि द्रमक मुनि चले जा रहे थे किसी गली में से वहाँ पर लोगों का टोला घूम रहा था उन्हें गालियाँ दे रहे थे लोग हंसी मजाक वगैरह कर रहे थे। अभय कुमार वहाँ पहुँच गये। और उन सारे व्यक्तियों को सम्बोधित करके कहा- कि एक काम करो इन व्यक्तियों में से कौनसा ऐसा व्यक्ति है जो मन वचन काया से सर्वथा हिंसा का त्याग करने को राजी है।

जो सर्वथा हिंसा का त्याग कर देगा उस व्यक्ति को मैं एक लाख स्वर्ण मुद्राएँ दूंगा। लोगों ने विचार किया- यह तो बडी विरोधी बात है। एक तरफ तो स्वर्णमुद्राएँ भी दे रहे हैं और दूसरी तरफ हिंसा का त्याग करने के लिए भी कह रहे हैं। अरे! मैं जब हिंसा ही नहीं करूँगा तो उन रूपयों को लेकर भी क्या करूँगा? स्वर्ण मुद्राएँ पास में रखूं और ऐश आराम वगैरह करूँ तो हिंसा तो मुझे करनी ही पड़ेगी। हिंसा

त्याग की शर्त पर, अहिंसा अपनाने की शर्त पर मुझे लाख रूपये मिल रहे हैं, उसका मैं करूँगा भी क्या? कोई भी व्यक्ति तैयार नहीं हुआ।

दूसरी घोषणा की कि मैं उसे भी एक लाख स्वर्ण मुद्राएँ दूंगा जो सर्वथा असत्य बोलने का त्याग करता हो। कोई व्यक्ति तैयार नहीं हुआ। इस तरह से उन्होंने बातें कही कि कोई व्यक्ति चोरी न करें, कोई व्यक्ति कुसंग न करे उसे मैं एक लाख स्वर्ण मुद्राएँ दूंगा। व्यक्ति बड़े मुस्कराएँ। जब सारी चीजें ही छूट जाएगी तो मैं लाख रूपये लेकर के करूँगा क्या?

अभय कुमार बड़े बुद्धिमान थे।सारी बातें इसी कारण से रखी थी। अभय कुमार द्रमक मुनि के पास पहुँचे और कहा- मैं आपको पँच लाख स्वर्ण मुद्राएँ दूँगा, यदि आप पंचमहाव्रतों का भंग कर दें। द्रमक मुनि ने कहा- मैं तो इन्हें छोड़ चुका हूँ। परमात्मा की देशना का अमृत जिसने पी लिया हो, जिसने अन्तर के आलोक को देख लिया, उसको जुगनू का प्रकाश क्या देखना।

उसने कहा- मुझे यह नहीं चाहिए, मैं इन सारी चीजों को छोड चुका हूँ। मैं अपने भीतर की रमणता में प्रवेश कर चुका हूँ। अभय कुमार ने लोगों से कहा- देखा! आप इस मुनि की अवहेलना कर रहें है। जरा देखें-इन्होने क्या त्याग किया है? अभय कुमार ने कहा- जरा देखो? मैं इन्हें पांच लाख रूपये देने को तैयार हूँ, फिर भी ये लेने को राजी नहीं। इन्होंने जो स्वीकार किया है कोई व्यक्ति उसे स्वीकार कर सकता है क्या? कोई है जो इन रत्नों को स्वीकार करें, इन पंचमहाव्रतों को स्वीकार करें।

ध्यान रहे! जब तक दृष्टिकोण हमारा सांसारिक है, जब तक दृष्टिकोण में धन बसा हुआ है, संसार बसा हुआ है तब तक वह व्यक्ति प्रशंसा भी उन्हीं की करेगा। यह बड़ी गंभीर बात है। प्रशंसा परिणाम है उसके पहले दृष्टि में परिवर्तन करना होगा। जब हमारे भीतर में अन्न जाएगा तभी भूख शांत होगी। भीतर में पानी पहुँचेगा तभी हमारी प्यास बुझेगी।

प्रशंसा परिणाम है। उसके पहले हमारी दृष्टि को उस तरह की बनानी होगी, तभी प्रशंसा कर पायेंगे। शिष्टचारियों की व्यक्ति प्रशंसा तभी करेगा जब उसके हृदय में गुणों के पति आकर्षण जग जायेगा, शिष्टता के प्रति रूचि का आविर्भाव हो जायगा, अन्यथा हमारी दृष्टि में तो वे ही सारी बातें रही हुई है।

एक बार मि० जटा शंकर चला गया- बाबाजी के पास में। बाबाजी के पास जाकर कहा- कि मैं संसार से बड़ा दुखी हो गया हूँ। मुझे ऐसा कोई मंत्र वगैरह दें कि मेरे घर में धन की उपस्थिति हो जाय, मेरी तिजोरियाँ सारी भर जाय, संसार सारा सुखी बन जाय। बाबाजी ने कहा- मेरे पास में तो कुछ नहीं है। मैं तो अकिंचन बाबा हूँ। लेकिन जटा शंकर ने तो पांव दबाने शुरू कर दिये, महात्माजी! मुझे कुछ देना ही पड़ेगा। जब बहुत सारी इसी प्रकार की बातें सुनी तो महात्मा जी ने कहा- अच्छा!

दर्द है तो एक काम करो- एक घंटे पहले ही एक पत्थर मेरे पास में था- स्पर्श कर जाय तो सोना बन जाय इस तरह का पत्थर था।

एक घंटे पूर्व ही उस पत्थर को नदी के किनारे फैंक दिया है। जरा जाओ और उसे उठाकर ले जाओ। तुम्हारा जीवन सुखी बन जाएगा। जटा शंकर विचार में पड गया कि ऐसा पारस पत्थर और महात्मा जी ने फैंक दिया। वह तो ऐसे पत्थर को लेने के लिए दौड़ पड़ा। ढूंढकर हाथ में लेकर महात्मा जी के पास पहुँचा। उसका चिन्तन बदल गया था- 'महात्मा जी ने पत्थर को फैंक दिया।

कोई व्यक्ति चीज को तभी फैंकता है जब वह वस्तु उसकी दृष्टि में व्यर्थ हो जाती है।

त्याग तभी किया जाता है जब उसका मूल्य समाप्त हो जाय। जटा शंकर चिन्तन में पड गया कि यह क्या मामला है? महात्मा जी ने इस पत्थर को फैंक दिया और मैं उसी को पाने के लिए दौड रहा हूँ।

उसे लगा कि - महात्मा जी की दृष्टि में इसका कुछ भी मूल्य नहीं। वह उल्टे पाँव दौड़कर महात्मा जी के पास आया- कहा मेरे मन में एक प्रश्न है कोई व्यक्ति बड़ी वस्तु को उपलब्ध कर लेता है तभी वह छोटी वस्तु का त्याग करता है। मुझे जरा समझाए कि आपने पारस पत्थर को क्यों फैंका? मुझे ऐसा लगता है कि आपने इससे भी बडा कोई कीमती पत्थर प्राप्त कर लिया है जिसे पाकर के आपने इस बेशकीमती पत्थर को फैंक दिया। तो फिर मैं इस छोटे से पारस पत्थर में क्यों उलझूँ। तुरन्त फैंक दिया। उसने कहा- मुझे इस पारस की आवश्यकता नहीं। वो पारस चाहिए जिसे पाकर के आपने इस पारस का त्याग कर दिया है।

महात्मा जी ने कहा- वह पारस तो अपने भीतर में ही है वो पारस स्वयं की आत्मा का है। उसके प्रति रूचि जग जाय तो यह पत्थर एक पल में फैंक दें।

एक बार उसका आस्वादन हो जाय तो सारी बातें बदल जाय। यह तभी संभव है जब हमारी रूचि में परिवर्तन हो जाय।

परिवर्तन के लिए ही आचार्य श्री फरमाते हैं- "शिष्ट चरित प्रशंसन इति" अर्थात् रूचि में परिवर्तन हो जाय ताकि हम शिष्टाचारियों की प्रशंसा कर सकें भीतर में यह गुण उतर जाय तो हम श्रावकत्व की सीमा में प्रवेश कर सकते हैं।

पास-पास में दो घड़े पड़े हुए थे। एक मिट्टी का घड़ा था और दूसरा पीतल का घड़ा था। गर्मियों के दिन थे। हर कोई व्यक्ति आता-प्यास लगती तो स्वाभाविक रूप से मिट्टी के घड़े के पास पहुँचता क्योंकि देखते ही जान लेता कि इसमें ठंडा पानी होगा। पीतल का घड़ा बड़ा नाराज हो गया परेशान हो गया। जो भी व्यक्ति आता है वह इसके पास में ही सीधा जाता है मेरे पास कोई भी नहीं आता क्या कारण?

पीतल के घडे ने विचार किया कि इसका राज तो मुझे जानना ही पड़ेगा। सब लोग पानी पीकर चल गये। उसके बाद पीतल के घड़े ने मिट्टी के घडे से बात की। मुझे जरा समझ में नहीं आता मेरे भैया, तुम भी घड़े हो और मैं भी। पानी तुम्हारे में भी है, मेरे में भी फिर भी हर व्यक्ति सीधा आपके पास में आता है। मुझ तक कोई नहीं पहुँचता, क्या कारण है?

मिट्टी के घड़े ने कहा- मै पानी को पूरा अपने में रमा लेता हूँ। सारा जीवन इसको समर्पित कर देता हूँ इसलिये मेरा पानी ठंडा हो जाता है, सभी लोग मेरे पास आते हैं। जबकि तुम अपने में पानी को नहीं रमा पाते, इसलिये वह ठंडा नहीं होता।

गुण रम जाय हमारे रोम-रोम में तो ही हम अपनी लक्ष्य सीमा के भीतर की उपस्थिति का आनन्द ले सकते हैं।

आज इतना ही।

15. अभय प्राप्ति

अनंत उपकारी अरिहन्त परमात्मा ने केवल ज्ञान की सम्प्रभुता को प्राप्त किया। उनका हृदय करुणा से भर उठा । हर चेतना के प्रति उनका हृदय द्रवित हो उठा । देशना के द्वारा सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन और सम्यक् चरित्र के विवेचन के द्वारा अपनी करुणा को अभिव्यक्त किया ।

किस प्रकार प्रत्येक चेतना इस गहरी खाई के बाहर निकलें किस प्रकार हर चेतना अपने कर्मों की बेडियों को समाप्त करके मुक्त दशा को उपलब्ध कर लें । इसी हेतु से परमात्मा ने देशना दी । हमें जीवन के लक्ष्य का निर्धारण करना है । जीवन का एक मात्र लक्ष्य है– आत्मा को उपलब्ध करना । हमारी आत्मा जो अभी कर्मों की जजीरों से युक्त है, उसे मुक्त करना ।

हमारी आत्मा जो नाना प्रकार के दूषणों में बद्ध है उसकी अक्षय स्थिति को प्राप्त करना । अभी तक हम इन्द्रियों से बंधे हैं बाह्य साधनों से बंधे हैं, अभी तक हमने स्वय को जानने का कोई प्रयास नहीं किया । देशना को केवल कानों के द्वारा सुनना नहीं है बल्कि हृदय में उतारना है तो ही वह देशना स्वय के लिए स्वय की आत्मा के लिए मुक्त अवस्था को प्राप्त करने में प्रबल सहायक बन जाएगी । किस प्रकार की हमारी स्थिति है, उसका चिन्तन करें ।

प्राप्त हुई सारी अनुकूलताओं का प्रयोग हम बाहर के लिए करते हैं ससार के लिए करते हैं इन अनुकूलताओं की दिशा को मोडना है घुमाना है, यदि इन अनुकूलताओं का उपयोग स्वय की आत्मा के लिए किया जाए स्वस्थिति को उपलब्ध करने के लिए किया जाय, मुक्ति को प्राप्त करने के लिए किया जाय तो वह पुरुषार्थ सम्यक् पुरुषार्थ बन जाएगा और उस पुरुषार्थ के द्वारा हम भीतर की दिव्यता को प्राप्त कर लेंगे ।

हमारी दृष्टि केवल बाहर में घूमती है बाहर के लिए हम नाना तरह से, नाना तरह के उपायों से ससार को प्राप्त करने के लिए इन्द्रियों का उपयोग करते हैं, शरीर का उपयोग करते हैं, स्वयं की बुद्धि का उपयोग करते हैं, भीतरी आत्मा के लिए हम कितना उपयोग

कर पाते है? स्वयं को जागृत करने के लिए, वेहोशी से, मुर्च्छा से अपने आपको अलग करने के लिए कितना पुरूषार्थ और प्रयत्न कर पाते हैं ।

मि. जटा शंकर एक बार ट्रेन के अन्दर सफर कर रहा था । वैठा हुआ था । एकाकी था, गाड़ी का डिब्बा खाली था, जटा शंकर वड़ा बुद्धिमान व्यक्ति था, अपने गांव की और जा रहा था । अचानक एक डाकू उधर से आ गया । एक छुरा लेकर उसके पास पहुँच गया । छुरा हाथ में लिया और वोला–जितना भी पैसा तुम्हारे पास में है वह सारा निकाल दो ।

जटा शंकर ने अपने आपको बचाना चाहा, वुद्धि का उपयोग भी पूरा किया । क्या शानदार नाटक किया? चोर ने कहा–तुम्हारे पास जितना भी पैसा हो, सारा का सारा दे दो । लेकिन जटाशंकर ने वहरा होने का शानदार नाटक किया । जैसे उसने कोई बात सुनी ही न हो, वाहर के दृश्य को देखने में मस्त हो गया, अखवार पढ़ने में व्यस्त हो गया लेकिन उसकी बात का कोई जवाव नहीं दिया । छुरे वाले व्यक्ति ने तुरंत उसे झिझोडा , पूरा शरीर पकड़ कर कहा कि तुम्हारा ध्यान किधर है?

चोर ने कहा–जितना भी पैसा आपके पास है, सारा का सारा मेरे हवाले कर दो। तुम तो जैसे मेरी बात ही नहीं सुन रहे हो । जटा शंकर ने वहरा होने का तो नाटक किया ही, साथ ही गूंगा होने का भी नाटक किया । जैसे न सुन पाता हो, न वोल पाता हो । उसने इशारे से कहा–तुम क्या चाहते हो? तुम्हें जो भी कहना है, वह लिखकर बताओं अन्यथा मैं न सुन पाता हुँ और न बोल पाता हूँ । अपनी बात को समझाने का प्रयास किया । वह सारी बात समझ गया कि यह व्यक्ति गूंगा भी है और बहरा भी है, अव मैं इसके कान के पास चिल्लाऊँ, तव भी यह न सुन पाएगा और न बोल पाएगा ।

मैं अपनी बात इसे कैसे बताऊँ ? वह भी नया–नया उठाईगीरा था । उसने जटा शंकर से दो तीन बार चिल्लाकर कहा–तब जटा शंकर ने एक पेन निकाला और एक कागज निकालकर इशारे से कहा कि लो तुम क्या कहना चाहते हो ? उठाईगीरे ने कागज पर लिख दिया कि तुम्हारे हाथ में जो सिटीजन घड़ी है, गले में जो चैन है, यह सब मेरे हवाले कर दो, कागज पर लिख दिया । ज्योंहि जटा शंकर ने पढ़ा । एकदम घवराने का नाटक करने लगा । कागज को जेब के हवाले कर दिया, घड़ी और चैन उठाईगीरे को पकड़ा दी । उठाईगीरे ने विचार किया–गाड़ी बड़ी रफ़्तार से चल रही है, अगले स्टेशन पर उतर जाऊँगा । अब इससे तो डरने की कोई आवश्यकता है नहीं । ये न तो बोल सकता है, न सुन सकता है । इससे क्या डरने की जरूरत ?

अगला स्टेशन आया । उठाईगीरा उतरने लगा त्योंहि जटा शंकर भी पीछे उतरा

और जोर से चिल्लाया क्योंकि नीचे बहुत लोगों की भीड थी जोर से कहा कि यह चोर है इसने मेरी घडी और चैन उतार कर ले ली है, जब उसे लोगों ने पकडा तो वह व्यक्ति बडा विचार में पड गया कि यह व्यक्ति बहरा था, अचानक कैसे बोलने लग गया। एकदम असमजस में पड गया लोगों ने उसे पकड लिया। कोर्ट में केस चला उस उठाईगीरे ने कहा कि मेरे पास में यह घडी और चैन है वह मेरी हैं। इसके पास क्या प्रमाण है कि यह उसकी है। जटा शकर ने पहले ही लिखा पढी पक्की कर ली थी कागज निकाला और कोर्ट में बता दिया कि इसके ये अक्षर हैं और इसी ने मेरा सारा समान लिया है।

बुद्धि वैभव का प्रयोग करने के कारण उसने अपनी सम्पत्ति को बचा लिया अपनी जान भी बचा ली और साफ-साफ उठाईगीरे को पकडवा भी दिया। हम बुद्धि और वैभव का प्रयोग बाहर के लिए करते हैं, बाहर की सुरक्षा के लिए धन वैभव को बचाने के लिए करते हैं। कभी हमने चिन्तन किया कि हम बुद्धि और वैभव का उपयोग आत्मा के लिए कितना कर पाते हैं ? आत्मा का नाश उठाईगीरों के द्वारा पल प्रतिपल होता जा रहा है। वासनाओं के कारण, कषायों के कारण दुर्गुणों के कारण भीतर के सद्गुणों का नाश होता जा रहा है उस ओर हमारा कोई ख्याल नहीं।

बुद्धि का उपयोग हम अपने लिए नहीं करते। हमारी बुद्धि का उपयोग केवल पर पदार्थों के लिए होता है। जब बुद्धि का उपयोग अपने लिए हो जाएगा, हमारी दिशा में परिवर्तन आ जाएगा हमारी जीवन धारा बदल जाएगी, जीवन शैली बदल जाएगी। अभी तक हमने अपनी आत्मा को लक्ष्य के केन्द्र बिन्दु रूप में स्थापित नहीं किया। बाहर की चीजों की ओर हमारी आसक्ति है। स्वय को प्राप्त करने के लिए हमारे भीतर में महत्वाकाक्षा का उद्भव नहीं हुआ। हमारी दशा बडी विचित्र है।

बाहर के वस्तुओं की सुरक्षा करते हैं और भीतर का सारा माल गायब हो जाता है। भीतर में हमारे सारे सद्गुणों का पल प्रतिपल नाश होता जा रहा है। भीतर पल प्रतिपल कर्मों का लेप होता जा रहा है। स्वय के प्रति हम बिल्कुल बेखबर होकर सारी क्रियाए करते हैं।

एक घर मे आग लगी। बडी भयकर आग लगी। घर के परिवार वालों ने विचार किया—आग बडी तेज है पता नहीं कब फायर ब्रिगेड की गाडिया आएगी कब पानी का उपयोग होगा और कब आग बुझेगी। सबसे पहले जो ज्यादा कीमती सामान है उसे बाहर कर दिया जाय, उसे तुरत बाहर निकाल लिया जाए। ऐसे समय में व्यक्ति का मन बडा सावधान हो जाता है और चाहता है कि जो कीमती सामान है उसे तुरन्त बाहर निकाल दिया जाए तुरत उसका हाथ तिजोरी पर ही जाता है तिजोरी खोल देता है, भले ही कितना अँधेरा हो लेकिन बराबर हाथ तिजोरी मे रखे नोटों पर ही जाएगा अपने जीवन में बार-बार

व्यक्ति तिजोरी को खोलता है, नोटो को गिनता है, देखता है, रखता है, इससे इतनी अच्छी रिहर्सल हो जाती है कि चाहे उसे घोर अंधेरे में छोड़ दिया जाये तुरत उसका हाथ जहाँ पर कीमती सामान है, वहीं पर जाएगा ।

सर्वप्रथम यही काम किया-उसने तिजोरी की ओर अपना ध्यान दिया । अपने परिवार वालो को भी कहा कि जितना भी कीमती सामान है, उसे बाहर निकाल दिया जाए, कहीं कीमती सामान आग से भस्म न हो जाए, जल न जाए, सारा सामान बाहर निकाल दिया गया ।

ऐसी स्थिति आ जाए कि घर में आग लगी हुई हो, तब व्यक्ति तुरन्त कीमती सामान हटाने की चेष्टा करता है, कभी हमने स्वयं के लिए इसी रूपक को घटाने का प्रयास किया । हमारे भीतर में चारों ओर आग लगी हुई है । संसार की आग लगी है, स्वार्थ की आग लगी है । वासनाओं की आग लगी है । कषाय की आग लगी है ।

कभी हमने चिन्तन कर निर्णय किया कि कहीं हम इन कर्मों की श्रृंखला में न बंध जाएं, ऐसा न हो कि इन कर्मो के घेरे में हमारे सद्गुणों का नाश हो जाए, भस्म हो जाय, इसलिए जल्दी से जल्दी भीतर के गुणों की रक्षा का उपाय करें । जल्दी से जल्दी भीतर की आत्मा की सुरक्षा का चिन्तन कर लें ।

कभी हमने चिन्तन किया कि जल्दी से जल्दी इन कषायों को बाहर निकालें, आत्मा के चारों ओर इस प्रकार की दीवार निर्मित कर दें ताकि कोई आग वहां तक नहीं पहुंच सके । यदि हमारा चिन्तन जैसा बाहर की ओर है, वैसा भीतर की ओर हो जाए, भीतर के प्रति, स्वयं के प्रति, स्वयं की चेतना के प्रति यदि इसी तरह का चिन्तन बन जाए तो दिशा बदल जाए, क्रांति का उद्घोष हो जाए ।

सारा सामान उन्होंने बाहर निकाल दिया । घर जल रहा था । उनके मन में वेदना में भी हर्ष था कि चलो, बहुत ज्यादा कीमती सामान बाहर निकाल दिया । आंखों में आंसू थे एक तरफ, और दूसरी तरफ सामान बाहर निकाल देने के कारण प्रसन्नता भी ढ़लक रही थी । अचानक उसकी पत्नी को ध्यान आया कि कहीं पर भी वह छोटा मुन्ना नजर नहीं आ रहा है, सारा कीमती सामान तो निकाल लिया लेकिन मुन्ना कहाँ गया? ज्योंहि उसने यह बात सुनी, माथा ठनक गया । सोचा घर का सारा कीमती सामान तो निकाल लिया लेकिन घर का राजा तो भीतर ही रह गया, वह तो भीतर ही जल गया, सारा सोने चांदी का सामान, हीरे-जवाहरात का सामान तो बाहर निकाल दिया लेकिन उसको भोगने वाला तो अन्दर ही जल गया, उसका मालिक तो भीतर ही रह गया ।

हमारी दशा बिल्कुल ऐसी ही है, सारा जीवन, हम जो भी क्रियाएँ करते हैं उनमें शरीर को ही महत्ता देते हैं, शरीर की सुरक्षा करते हैं । सारा जीवन शरीर की सुरक्षा

में वैभव की सुरक्षा में, हम विता ?ते हैं लेकिन घर का मालिक शरीर का मालिक स्वय की चेतना वह तो उन्हीं दुर्गुणों में जलकर कालिमा की परतों से घिर जाती है ।

यदि हमारा चिन्तन वदल जाए तो हमारा जीवन वदल जाए अभी तक हमने मूल्यवत्ता केवल बाह्य पदार्थों को ही दी है, अपनी आत्मा को अभी तक कोई मूल्य नहीं दिया कोई महत्त्व नहीं दिया ।

आचार्य हरिभद्र सूरि महाराज धर्म विन्दु ग्रन्थ में बडी महत्वपूर्ण बात समझा रहे हैं। जो व्यक्ति पाप से डरे वही व्यक्ति श्रावक कहलाने का अधिकारी है, "जो व्यक्ति पाप से डरता है" ......यह सूत्र दिखने में तो वडा ऊपरी लगता है, मगर इस सूत्र में जैन दर्शन का मूल रहस्य छिपा है, जो व्यक्ति इस सूत्र को जीवन में उतार लेता है वही व्यक्ति जैनत्व का अधिकारी वन जाता है । कभी आपने चिन्तन किया कि ' व्यक्ति पाप से कव डरता है ? जो डरता है वह किस कारण से डरता है ? ये प्रश्न हमारे बन जाए इनके जवाव की गहराईयों के अन्तस्तल को छू लिया जाए तो निश्चित रूप से जीवन दृष्टि वदल जाए।

वही व्यक्ति पाप से डरता है, जिस व्यक्ति को परमात्मा की देशना में अखड श्रद्धा हो जिस व्यक्ति को अपनी आत्मा के प्रति परमात्मा के प्रति, अखड श्रद्धा हो । जो व्यक्ति नास्तिक है या जो व्यक्ति केवल इसी जीवन को जीवन मानता है जो व्यक्ति यह मानता है कि आत्मा परमात्मा कोई चीज होती नहीं यह जो जीवन मिला, शरीर मिला बस यही सब कुछ है और यहीं सब कुछ है, न इसके सिवा कुछ है न इसके आगे कुछ है, वह पाप से नहीं डरेगा । उस व्यक्ति की विचारधारा विल्कुल दूसरी तरह की होती है, उस व्यक्ति को विचारधारा में पाप नाम की कोई चीज होती नहीं जो इस प्रकार की विचारधारा के व्यक्ति होते हैं, उनका जीवन जैन दर्शन से बिल्कुल विपरीत होता है। वही व्यक्ति पाप से डर सकता है, जिसके ह्दय में अपनी आत्मा के प्रति श्रद्धा हो । आत्मा के गुणों के प्रति श्रद्धा हो इस जन्म और पर जन्म के प्रति विश्वास हो मोक्ष के बारे में श्रद्धा हो, वही व्यक्ति इस सूत्र को जीवन में धारण कर सकता है ।

आचार्य हेमचन्द्र भगवन्त से जब पूछा गया कि पण्डित शब्द का अर्थ क्या ?

आचार्य ने पण्डित शब्द का बडा गहन विश्लेषण प्रस्तुत किया । पण्डित' शब्द का अर्थ करते हुए उन्होंने कहा– 'पापात् बिभेति स पण्डित" पण्डित हम उसे कहते हैं जो पाप से डरता है वडी आचरण युक्त बात कही इस वात को विल्कुल आचरण में ढाल दिया ।

पण्डित हम जानते हैं कि उसे कहते हैं जिसने कुछ किताबें पढ़ ली हैं, जिस व्यक्ति ने कुछ शास्त्र वगैरह पढ लिये हैं चाहे वह किसी भी क्षेत्र के हो चाहे राजनीति के क्षेत्र

के हो, चाहे धार्मिक क्षेत्र के हों, जो व्यक्ति शास्त्रों का अभ्यास कर चुका, वहीं व्यक्ति पण्डित कहलाता है लेकिन हेमचन्द्र भगवत ने बड़ी गहरी व्याख्या की, उन्होंने व्यक्ति के आचरण को महत्व दिया, व्यक्ति की वुद्धि को इतना महत्व नहीं दिया क्योंकि वुद्धि पहली सीढ़ी है और आचरण दूसरी सीढ़ी है ।

वुद्धि का स्थानान्तरण जव तक आचरण में नहीं होता, वह वुद्धि भी कचरा वन जाती है, ज्ञान का रूपान्तरण होना चाहिए और इसलिए आचार्य भगवन्त ने बड़ी सुन्दर व्याख्या की—पापात् डीन अर्थात् जो व्यक्ति पाप से डरे, वही व्यक्ति पण्डित कहलाता है, वही व्यक्ति जैन कहलाता है, भले ही उसने स्कूल में जाकर शिक्षा प्राप्त नहीं की, भले ही उसने शास्त्रों का अध्ययन नहीं किया, लेकिन जो व्यक्ति आत्मसाक्षी से पाप से डरता है, निश्चित रूप से वह व्यक्ति पण्डित है और वही भव्य आत्मा है ।

वडी सुन्दर कहानी आती है शास्त्रों में, एक आचार्य भगवन्त अपने शिष्य को लेकर एक नगर से दूसरे नगर की ओर विहार कर रहे थे । वीच में एक गुरुकुल आया । गुरुकुल के वाहर तीन वच्चे खेल रहे थे । आचार्य भगवन्त उधर से गुजर रहे थे । आचार्य भगवन्त ने उन तीनों के चेहरों को देखा । वे परम ज्ञानी आत्मा थे । ज्ञान के आलोक में व्यक्ति के भविष्य को, व्यक्ति के गुणों को देखा करते थे । आत्मा के परिणाम मस्तिष्क में उजागर हो जाया करते थे ।

वो उधर से निकले । शिष्य ने पूछा—भगवन्त ! मुझे जरा बताओ कि ये तीनों छात्र कितने सुन्दर हैं, क्या तेज है ? मुझे इनके भविष्य के वारे में जानने की जिज्ञासा है ।

जरा चिन्तन करे—जो मुनि है, मुनित्व की साधना से अलंकृत है, जो व्यक्ति मुनित्व के प्रति ह्रदय में आदर रखता है, उस व्यक्ति के प्रश्न भी दूसरी तरह के होते हैं । एक व्यक्ति किसी वच्चे के भविष्य के वारे में सोचता भी है तो यही सोचता है कि बड़ा होकर क्या वनेगा ? डॉक्टर होगा कि राजनेता होगा । भविष्य के वारे में जो व्यक्ति का चिन्तन है, वह केवल संसार से संबंधित है, किसी व्यक्ति के भविष्य के वारे में पूछेंगे तो वह यही बतायेगा कि मुझे इस उम्र में यह काम करना है, वहाँ बंगला बनाना है, यह करना है, वो करना है । व्यक्ति के भविष्य की कल्पनाएं भी संसार से संबंधित होती हैं, जब तक व्यक्ति के भीतर में सम्यक्त्व का दीपक प्रज्ज्वलित नहीं होता ।

ध्यान रहे ! व्यक्ति जब जैनत्व की गरिमा से युक्त बनता है, फिर संसार से संबंधित भविष्य के विषय में कल्पनाएँ नहीं करता । वह फिर अपनी आत्मा के भविष्य की चिन्ता करता है । शरीर के विषय में क्या सोचना ? उसका तो जो होना है वह तो होगा ही। हमें उसके विषय में क्या चिन्तन करना, जो अशाश्वत है । चिन्ता तो उसकी करना, जिसके

आधार पर इन सारी प्रक्रियाओं का निर्माण होता है अपनी आत्मा से ही इस शरीर का भविष्य बनता है । आत्मा के ऊपर लगे हुए कर्मों के आलोक में ही हम भविष्य तय करते हैं दूसरा कोई उपाय नहीं, दूसरा कोई रास्ता नहीं । अपनी आत्मा ही अपने भविष्य का निर्माण करती है । अगर ये सूत्र हमारी समझ में आ जाए तो चिन्तन और जिज्ञासा का आधार बदल जाए ।

मुनि महाराज उधर से निकल रहे थे । शिष्य ने गुरु से प्रश्न किया गुरुदेव । मुझे इन बच्चों के भविष्य के बारे मे पूछना है ।

लेकिन उनका भविष्य मैं सासारिक दृष्टिकोण से नहीं जानना चाहता । मै यह नहीं पूछना चाहता कि कौन बच्चा धनपति बनेगा ? कौन बच्चा राजगद्दी का उत्तराधिकारी बनेगा या कौन कितना अर्थ उपार्जन करेगा ? मुझे ये बातें नहीं पूछनी । मुझे तो केवल इनकी आत्मा के भविष्य के बारे में पूछना है उनका तेजस्वी चेहरा मेरी आखों के सामने घूम रहा है ।

आचार्य भगवन्त से ज्योंही यह प्रश्न पूछा गया । मुनिमडल गुरुकुल से गुजर ही रहा था । गुरुकुल के जो आचार्य थे वे पास में ही खडे हुए थे उन्होंने इस प्रश्न को सुन लिया । देखा कि सामने तीन बालक खडे हैं और उन्हीं के विषय में इनका प्रश्न है कान लगाकर आचार्य समाधान सुनने लगे ।

आचार्य भगवन्त कह रहे थे कि तीनों के भविष्य बडे अलग-अलग हैं । इनमें से एक लडका भव्य दूसरा दुर्भव्य तीसरा अभव्य है । ये तीन बातें कही बच्चों के तीन प्रकार के भविष्य बताये । वो तो आगे बढ गये लेकिन आचार्य सोचने लगे—इन तीन पुत्रों में एक पुत्र मेरा भी है किन्तु कैसे ज्ञात करू कि कौन भव्य है ? कौन दुर्भव्य है ? कौन अभव्य है ? सत तो आगे बढ गये, पूछ लेता तो ठीक होता लेकिन अब मुझे खुद ही यह पता लगाना है । कैसे पता लगाऊ ?

मुक्ति का प्रथम प्रवेश द्वार है करुणा । करुणा के बिना व्यक्ति मुक्ति के दरवाजे तक नहीं पहुँच सकता और इसी करुणा का अन्तर्भाव पाप विरुद्ध प्रवृत्ति में निहित होता है । पाप से वही व्यक्ति डरता है, जिसके हृदय में करुणा की गगा बहती है । जिसके भीतर में करुणा का रस छलकता हो वही व्यक्ति पाप से डरता है । ऐसा नहीं होता कि लोगों की साक्षी से वह पाप से डरे और एकान्त मिल जाये तो व्यक्ति खुश होकर पाप करे ।

इस तरह की क्रिया जैनत्व की गरिमा मे प्रवेश नहीं पा सकती है, यह तो बिल्कुल छल प्रपंच युक्त क्रिया है ।

गुरूकुल के आचार्य ने निर्णय ले लिया कि मुझे पता लगाना है कि कौन भव्य है? कौन दुर्भव्य है ? कौन अभव्य है ? तीनों छात्रों को पास में बुलाया । उन्होंने एक योजना दिमाग में सोच ली थी । परीक्षा लेने के लिए आचार्य ने कहा कि मैं तुम को एक काम देता हूं और यह काम तीनों को करना है । तीनों को एक-एक कबूतर पकड़ा दिया और कहा कि इन कबूतरों की हत्या करनी है लेकिन ऐसे स्थान में जहां कोई भी न देखे, तीनों विस्मय में पड़ गये । सोचा, आज तक हिंसा करने की कोई बात सामने नहीं आई, फिर भी गुरू ने कहा है तो प्रश्न पूछने का तो कोई अवकाश भी नहीं है । उन्हें इस प्रकार का अधिकार भी प्राप्त नहीं था । तीनों अपनी-अपनी दिशा की ओर चले गये, थोड़ी ही दूर गये होंगे कि एक बच्चा पुन. गुरू के पास आ गया और कहा कि आपने जो आदेश दिया, वह काम पूरा कर दिया । कबूतर की हत्या कर दी । आचार्य ने पूछा—किसी ने भी तुमको नहीं देखा । शिष्य ने कहा—नहीं । किसी ने भी नहीं देखा । कहां मारा ? शिष्य ने कहा—इस मकान के पीछे ही चला गया । इधर उधर कोई नहीं देख रहा था। जल्दी से गर्दन मरोड़ दी । वास्तव में कबूतर आटे के बने हुए थे । मगर असली जैसे लग रहे थे ।

थोडी देर बाद ...घंटा भर के बाद दूसरा बच्चा भी आ गया । आचार्य ने पूछा—मेरी आज्ञा का परिपालना तुम ने कर ली । बच्चे ने कहा—हाँ आज्ञा को मानने के लिए थोड़ा-सा कष्ट सहना पड़ा, दर्द सहना पड़ा । आपने कहा था—जहां पर कोई न देखे, ऐसे स्थान पर कबूतर को मारना । मैं गांव के बाहर गया । वहां पर कोई नहीं दिख रहा था, मगर चिडिया आदि दिख रही थी । मैं आगे और भयंकर जंगल में गया । वहां पर कोई भी नहीं था, तब कबूतर को मार दिया ।

तीसरा बालक तो शाम तक पहुंचा । आचार्य ने कहा—दो मिनिट के काम में तुमने 8 घटे लगा दिये । बच्चे ने कहा—मैं गया यहां से मोहल्ले में, लोग देख रहे थे । खिड़कियां खुली थीं, फिर मैं बाहर गया, जंगल में, तो वहां पर पक्षी, चींटियां-मकोड़े आदि देख रहे थे ।

मैं और ज्यादा दूर चला गया, चलता गया, चलता गया । मैंने सोचा—अब कोई देखने वाला नहीं । अब गर्दन को मरोड़ दूं, गर्दन को मरोड़ ही रहा था कि अचानक ख्याल आया—आपने तो कहा था—कोई भी नहीं देखे, ऐसे स्थान पर मारना, सब में मैं भी तो हू, मैं तो इसे देख ही रहा हूं, मेरी आत्मा तो देख ही रही है ।

आपकी आज्ञा थी—कोई न देखे लेकिन मैं तेरी आत्मा की साक्षी के बिना गर्दन मरोड़ नहीं सकता, बेहोशी की अवस्था में तो मैं मरोड़ नही सकता । आपकी आज्ञा का पालन नहीं कर सका । आपकी शर्त ऐसी थी कि वह शर्त कभी भी पूरी नहीं हो सकती थी और

इस कारण मुझे आप क्षमा करें । मै इस कबूतर को वैसा का वैसा लेकर आ गया हू क्योकि परमात्मा की उपस्थिति तो हर समय पर हर स्थान पर वैसी की वैसी रहती है । आत्मा का जो दृष्टा भाव है वह तो हर स्थान पर उपलब्ध था । आचार्य ने उसे अपने गले लगा लिया और निश्चित कर लिया कि यही भव्य है । जिसने दूर जाकर जगल में गर्दन मरोडी वह दुर्भव्य है और तीसरा तो अभव्य ही है ।

ध्यान रहे । पाप से डरने का अर्थ है कि आत्मा की साक्षी से पाप से डरना क्योकि आत्मा हर पाप का हिसाब रखती है । आत्मा तो निश्चित रूप से जानती है । इसके भीतर में उतरने की जरा चेष्टा करे यह सूत्र ऐसा सूत्र है जो जैनत्व का मूल स्रोत है क्योकि जैनत्व का मूल स्रोत करूणा है ।

आचार्य भगवन्त यहा पर कहते हैं वही व्यक्ति श्रावकत्व की सीमा में प्रवेश पा सकता है जो व्यक्ति पाप से डरता है जो न इस तरह की क्रियाए करता हो न इस तरह की बातें करता हो । हमारे स्थिति तो बडी विचित्र है—हम जानते हैं कि यह पाप है लेकिन उस समय हमारे मन की स्थिति बडी विचित्र हो जाती है एक ओर क्रिया करते हैं तो पाप होता है और एक तरफ वे क्रियाऐं नहीं करते हैं तो हजारों की हानि होती है । उस समय यदि स्वार्थ हावी हो जाय तो क्रियाऐं पापमय बन जाती हैं और उस समय यदि आत्मा की श्रद्धा हावी हो जाए तो हम लाखो की हानि सहन कर सकते हैं लेकिन आत्मा के सद्गुणों का नाश अपने द्वारा ही हो सकता ।

इस तरह का मजबूत सकल्प हमारे भीतर में उपस्थित करना है हम इसी प्रकार की उधेडबुन में जीते हैं एक तरफ क्रियाऐं करते है तो पाप होता है । दूसरी ओर हानि होती है ऐसे समय में हमारा श्रद्धा-बल-सकल्प काम आता है । यदि हमारा श्रद्धा बल मजबूत है तो वे विचार विजयी बन जाते हैं जिसके अन्तर्गत यह चिन्तन करते हैं कि यह क्रिया पापमय है और इसके द्वारा कर्मो का भार हमारी आत्मा पर लगेगा । उस समय यदि श्रद्धा का अभाव हो श्रद्धाबल मजबूत न हो आत्मा के लक्ष्य का निर्धारण नहीं हो तो उस समय वह विचारधारा विजयी बन जाती है । जिस विचारधारा के अन्तर्गत यह निर्णय करते है कि ये पाप कितना ही लगे लेकिन आर्थिक हानि नहीं होनी चाहिए । दोनों तरह के विचार हमारे भीतर में चलते हैं । उत्कृष्ट विचारधारा को भीतर में मजबूत करना है और मजबूती के लिए एकमात्र साधन है—आत्म श्रद्धा ।

एक बार मि जटा शकर अमेरिका चला गया नौकरी के लिए । उसे बहुत अच्छी नौकरी मिली । यहा 400-500 रुपये मिलते थे वहा पर उसे 5-6 हजार रुपये मिलने लगे । एक बूढी माजी के घर नौकरी कर ली । उस माजी का दूध का बडा कारोबार था । वह व्यक्ति उसके वहा मैनेजर बन गया । एक बार मांजी के पास बैठा था । उसने

देखा कि मांजी का चेहरा उतरा हुआ था । पूछा कि आप उदास क्यों दिख रही हो?

मांजी ने कहा—उदास होने का कारण है कि रोज दो हजार लीटर दूध बेचती हूं लेकिन आज गायों ने एक हजार लीटर ही दूध दिया है । अब मैं क्या करूं ? ग्राहकों को हम 2 हजार लीटर दूध पहुचाते हैं, आधे ग्राहकों को बड़ी परेशानी होगी, इसी कारण मैं उदास हू ।

ध्यान दें ! उस मांजी की विचारधारा की ओर, उसके चिन्तन की ओर । वह इस कारण से उदास नहीं हुई थी कि आज मुझे आधा ही पैसा मिलेगा बल्कि इस कारण उदास थी कि आज आधे ग्राहकों को परेशानी होगी । उनकी परेशानी में उसने खुद को परेशान कर लिया । परेशानी का आधार भी कैसा परोपकार की भावना से भरा था ।

जटा शंकर ने ज्यों ही सुना उसने कहा—बड़ा आश्चर्य है, इसमें चिन्ता करने जैसी बात ही क्या है ? यदि ऐसे समय आप वहां उपस्थित हों तो ऐसा ही कहें । जटा शंकर ने कहा—यदि एक हजार लीटर दूध है तो म्युनिसिपाल्टी के नल किसके लिए हैं ? इसमें एक हजार लीटर पानी डाल दो, यह हुआ शंका का समाधान ।

माजी ने ज्यों ही सुना—एक जोर से चांटा लगाया जटा शंकर के गालों पर कि एक हजार लीटर दूध के पैसे के लिए मैं अपने ही देशवासियों के साथ धोखा करूं ! यह मेरे द्वारा हो नहीं सकता । तूं मुझे गलत रास्ता दिखाता है ।

जरा चिन्तन करें कि उसकी विचारधारा किस प्रकार की थी । यदि इस स्थान पर हम उपस्थित हों तो हमारे भी ऐसे ही विचार होंगे कि जरा सा पानी डाल दो, मामला बराबर हो जायेगा ।

वही व्यक्ति पाप से डर सकता है जिसके भीतर में अपनी आत्मा का साक्षी भाव भरा हुआ हो । अन्यथा ऐसी सलाह मिल जाती है, गलत राह पहुंचाने-वाले बहुत हैं । ऐसी स्थिति में व्यक्ति ऐसे ही काम करते हैं। उस महिला का चिन्तन करूणा से परिपूर्ण था । उसका निर्णय था कि धोखा मेरे द्वारा नहीं हो सकता । चन्द सिक्कों के लिए मैं देशवासियों के साथ उनके स्वास्थ्य के साथ, किसी प्रकार का धोखा, प्रपंच, हरगिज नहीं कर सकती । ऐसा चिन्तन ही व्यक्ति को पंडित की स्थिति तक पहुंचाता है ।

पाप से डरे वही व्यक्ति पण्डित कहला सकता है, वही व्यक्ति जैनत्व की भूमिका में प्रवेश कर सकता है, इस सूत्र को अपने मस्तिष्क में धारण करना है, आचरण में उतारना है ।

आज इतना ही ।

16 अप्प दीवो भव

अनंत उपकारी जिनेश्वर परमात्मा ने केवल ज्ञान की सम्पदा को उपलब्ध करने के पश्चात् करूणा भाव से भरकर देशना दी। देशना के द्वारा जगत् की समस्त आत्माओं को आत्मबोध प्राप्त करने का मार्ग दिखाया।

किस प्रकार व्यक्ति चिन्तन करें? किस प्रकार का पुरूषार्थ करें ताकि वह भीतर की चेतना को अन्दर आतम को पहचान सकें जान सके उसका साक्षात्कार कर सके। यही हेतु था परमात्मा की देशना का और यही हेतु है हमारे जीवन का हमारे श्रवण का हमारे सत्संग का।

हम अपने आप से परिचित हो सकें। परमात्मा की देशना स्पष्ट रूप से कहती है कि हमें अपने ही कदमों से आगे बढना होगा कोई बैशाखी काम नहीं आएगी। परमात्मा की देशना हमारे रास्ते को मोड देने के लिए दिशा निर्देशन का काम करेगी। लेकिन कदम तो हमें स्वयं को ही बढाने होंगे।

यदि हमने अपने कदमों को एक ही स्थान पर स्थित रखा और सिर्फ हम उस रास्ते को ही देखते रहें टटोलते रहें रास्ते की महिमा गाते रहें रास्ते के गुणगान करते रहें किन्तु अपने कदमों को आगे नहीं बढाया तो हम अंधकार में ही डूबे रह जायेंगे।

वहत् कल्पसूत्र के अन्दर एक सुन्दर रूपक आता है। परमात्मा ने बडा सुन्दर रूपक आत्म चेतना को जगाने के लिए प्रस्तुत किया। परमात्मन् फरमाते हैं कि कोई व्यक्ति है जिसकी आँखें नहीं हैं अन्धा है वह व्यक्ति अपने परिवार के साथ रहता है घर वाले कहते हैं पुत्र कहता है- पिता श्री! समीप के नगर में कोई बडा वैद्य है आप अपनी आँखों की चिकित्सा करवा लीजिए। आप देखने लगेंगे। वह वद्व व्यक्ति वह अंधा व्यक्ति अपने पुत्रों को कहता है मुझे आँखों की क्या जरूरत पडी? मुझे रोशनी की क्या जरूरत पड़ी?

तुम इतने मेरे प्यारे पुत्र हो तुम मेरी आँखें हो मेरी पत्नी मेरी आँखें है मेरी पुत्र वधुएँ मेरी आँखें हैं इतनी-इतनी आँखें मेरे पास में हैं। फिर मुझे आँखों की क्या जरूरत? मैं तुम्हारी आँखों से ही रोशनी पा लूंगा मैं तुम्हारी आँखों को देखकर अपने

जीवन पथ को आगे बढा दूंगा। मुझे आँखो की कोई आवश्यकता नहीं, कोई जरूरत नहीं।

पुत्रों ने खूब समझाया। लेकिन वह नहीं माना। उसने सोचा- मुझे आँखों की क्या आवश्यकता? मै तो इनकी आँखो के सहारे ही जीवन विता दूंगा। उसके मन में यह बात घर कर गई थी कि ये पुत्र मेरी आँखे हैं, ये पुत्र वधुएँ मेरी आँखे हैं, मुझे अपनी आँखों की कोई आवश्यकता नहीं।

शास्त्र मे बताया गया कि उसी घर मे एक दिन आग लग गई, भयंकर आग लग गइ, हर जीव अपने आपको बचाने के लिए घर से दौड पड़ा, किसी को भी दूसरे की चिन्ता न थी, हर एक को अपने को ही बचाने की चिन्ता थी। जब मृत्यु सामने हो, उस समय स्वयं के सिवाय और कोई नजर नहीं आता।

हर व्यक्ति दौड गया, सब घर से बाहर चले गये। किन्तु वह वृद्ध व्यक्ति जिसके आँखें नहीं थी, वह वहीं पर बैठा रहा। आग लग गई, किसी को भी उस वृद्ध व्यक्ति का ख्याल नहीं रहा- क्योंकि जब अपने का ही ख्याल नहीं था तो फिर दूसरों का तो ध्यान कैसे रहता ? अपनी जान के ही लाले पड रहे थे फिर दूसरो को बचाने का प्रयास कैसे करते?

सारे व्यक्ति बाहर चले गये। जब आग वृद्ध व्यक्ति के पास पहुँची। उसे लगा कि तपन लग रही है। अब वो बडा छट-पटाया, तिलमिलाया। बच्चो को आवाज भी दी लेकिन कोई होता तो बोलता। कोई वहाँ पर उपस्थित नहीं था और वह वृद्ध व्यक्ति वहीं पर आग में जलकर भस्म हो गया।

यदि उसके पास मे आँखे होती तो निश्चित रूप से वह व्यक्ति बाहर आ सकता था। अपने शरीर की सुरक्षा कर सकता था, अपने जीवन को बचा सकता था।

आँखे स्वयं की चाहिए, दूसरो की आँखो के सहारे जीवन नहीं गुजारा जा सकता। परमात्मन् कहते है कि यदि स्वयं की आत्मा को उपलब्ध करना है तो पुरूषार्थ भी स्वयं को ही करना पडेगा, किसी अन्य के सहारे, अन्य के भरोसे, स्वयं की सम्पदा को उपलब्ध नहीं किया जा सकता। अपने भीतर मे प्रवेश करना है तो पुरूषार्थ भी हमे स्वयं को ही करना होगा। स्वयं के कदमों को ही आगे बढाना होगा।

सारा जीवन हमारा पुरूषार्थ मे बीतता है। लेकिन सारा पुरूषार्थ अन्य क्रियाओं मे गुजरता है, जिनके द्वारा स्वयं के आत्मा की कोई सुरक्षा नहीं होती।

जरा हम जीवन की ओर निगाहें डालें, स्वयं के जीवन की ओर, स्वयं के अतीत की ओर, अपनी जीवन शैली की ओर कि हम किस प्रकार की विचारधारा को अपने मस्तिष्क मे उतारते घूम रहे है? हम शरीर की सुरक्षा के लिए लाख उपाय करते है। सर्दी से बचाने के लिए कम्बल का सहारा लेते है। धूप से बचाने के लिए छाते का सहारा लेते है। शरीर की सुरक्षा के लिए हम रात-दिन चिन्तन किया करते है?

हल्का-सा कहीं घाव हो जाय हल्का-सा कहीं दर्द हो जाय हल्की-सी कहीं पीढ़ा हो जाय और हम तुरंत डॉक्टर के दरवाजे खटखटाने लगते हैं। शरीर की हल्की-सी पीढ़ा भी हमारे लिए असह्य बन जाती है और तुरंत उसे दूर करने का उपाय करते हैं। तनिक भी देर नहीं लगाते। सभी कामों को दूर कर देते हैं दूर धकेल देते हैं और सर्वप्रथम शरीर की सुरक्षा करते हैं।

कितने भी आपके अपोइन्टमेन्टस हो सारे छोड़ देते हैं। सबसे पहले डॉक्टर के दरवाजे पर पहुँच जाते हैं। जरा चिन्तन करें कि शरीर की पीढ़ा के लिए हम कितने परेशान हो जाते हैं। हल्की-सी पीढ़ा भी हमारे भीतर को कितना बैचेन बना देती है। हल्का-सा घाव भी हमारे भीतर में कितना दर्द उपस्थित कर देता है।

जरा चिन्तन करें कि हमने कभी आत्मा की पीढ़ा के बारे में चिन्तन किया? आत्मा के दर्द के बारे में चिन्तन किया कि हम अपने भीतर में कितने रोगों को बसाये बैठे हैं? दर्द को बसाये बैठे हैं लेकिन क्या उस दर्द को दूर करने के लिए कभी डॉक्टर का दरवाजा खट-खटाया। जो इस दर्द को जानते हो इस इलाज को जानते हो। दूर करने की चिकित्सा जिनके पास में हो कभी उन डॉक्टरों के पास में पहुँचे।

शरीर के विषय में हम कितने ज्यादा सावधान हैं इसकी सुरक्षा के लिए हम प्रतिपल सावधान रहते हैं। हमारी हमेशा की आदत है कि हम शरीर के काम को कभी कल पर नहीं छोड़ते लेकिन धर्म के काम को हमेशा कल पर छोड़ते हैं।

मि. जटा शंकर की पत्नी बड़ी धार्मिक थी लेकिन जटा शंकर इससे विपरीत था। उसका धर्म में मन नहीं लगता था। वह सांसारिक कार्यों को ही ज्यादा महत्व देता था। पत्नी हमेशा कहती रहती- कम से कम रोज नहीं तो अभी पर्युषणों के दिन हैं चातुर्मास के दिन हैं जरा धर्म आराधना कर लिया करो लेकिन जटा शंकर हमेशा टाल दिया करता था। पत्नी को स्पष्ट मना तो कर नहीं सकता था। हमेशा पत्नी से कहता- आज मुझे पार्टी में जाना है। आज वहाँ पर जाना है इसलिए आज मैं मन्दिर नहीं जा सकता व्याख्यान में नहीं जा सकता कल जाऊंगा। कौन-सी देरी हो रही है? परमात्मा यहीं पर हैं| महाराज भी यहीं विराजमान हैं। मैं कभी भी चला जाऊंगा प्रवचन सुन लूंगा। रोज वह जटा शंकर को कहती और वह हमेशा कल पर टाल देता। कहता- अभी तो संसार को देख लूँ मौज उठा लूँ, धर्म तो बुढ़ापे में करेंगे। अभी तो इस समय को संसार के आकर्षणों में व्यतीत कर लूँ। हमेशा जटा शंकर इसी तरह की बात करता था।

एक दिन ऐसा हुआ कि जटा शंकर बीमार हो गया। बिस्तर पर लेटना पड़ा। बीमारी के कारण बड़ा परेशान हो गया। पत्नी से कहा कि जल्दी से जाकर डॉक्टर को बुलाकर लाओ- मैं बड़ा दुखी हूँ बीमारी के कारण।

कोई इन्जेक्शन वगैरह लगवाओ। जल्दी से डॉक्टर को बुलाओ। बीमार व्यक्ति बड़ा परेशान हो जाता है। डॉक्टर आ जाय दवाईयां वगैरह ले ले तब कहीं जाकर

उसे विश्राम की अनुभूति होती, तभी शांति का आभास होता है। बडा छटपटा रहा था लेकिन पत्नी ने बात सुनी-अनसुनी कर दी। दूसरी बार जोर से चिल्लाया कि अरे! तुम सुनती नहीं हो! मेरी हालत क्या हो रही है? और तुम आराम से रसोई पका रही हो।

पत्नी ने कहा - आप क्यों चिन्ता कर रहे हैं? डॉक्टर को बुला लेंगी। कल आराम से बुला लेंगी। जटा शंकर परेशान हुआ कि तुम किस तरह का जवाब दे रही हो? मैं आज बीमार पडा हूँ और डॉ॰ को एक महीने बाद बुलाओगी। मैं अभी रोग ग्रस्त हो रहा हूँ और तुम डॉ को अगले वर्ष बुलाओगी। अरे! तुम जब तक डॉ को बुलाओगी तक तक न जाने मेरा क्या क्रिया कर्म हो जाएगा, मेरी क्या हालत हो जाएगी। फिर मै डॉ को दिखाने योग्य रहूँगा भी या नहीं।

डॉ को जल्दी से बुलाओ। मैं बीमार आज हूँ और आज ही डॉ को बुलवाना है। कल आएगा वो मेरे किस काम का!

पत्नी ने जवाब दिया- मैंने तो आपका ही सिद्धांत अपनाया है, आपका ही नुस्खा अपनाया है। हमेशा मैं कहती हूँ - धर्माराधना किया करें। आपका जवाब होता है- आज क्यो? कल करेंगे। मै कहती थी- राग द्वेष की निवृत्ति किया करें। जवाब होता था- इतनी बडी उम्र पडी, आज क्यो- बाद में करेंगे। मैंने भी यही जवाब दिया- डॉ को आज क्या बुलाना? कल बुला लेंगी।

ध्यान रहे! बीमार हम आज है तो डॉ॰ भी हमें आज चाहिए। इसी पल चाहिए, यदि डॉ की उपस्थिति नहीं हो तो हम दर्द से भी परेशान होते हैं और डॉक्टर की अनुपस्थिति से भी।

कभी चिन्तन किया- ब्रह्म मुहूर्त में कि आत्मा की क्या दशा है? मेरी जीवन शैली किस तरह की है? शरीर के दर्द से बड़ा परेशान होता हूँ। क्या आत्मा के दर्द का कभी अनुभव किया? भीतर में कितने घाव लगे हुए हैं, भीतर में कितनी बीमारियाँ लगी हुई हैं क्या कभी उसकी ओर देखा? शरीर में रोग हो जाय, बाकी सब क्रियाएँ छोड देते है। व्यापार एक तरफ, पहले ताजा शरीर चाहिए, स्वस्थ शरीर चाहिए। यदि वो नहीं हो तो व्यापार किस काम का?

व्यापार को पीछे छोडते हैं, परिवार को पीछे छोड़ते हैं, बाकी सारे कर्त्तव्यो को विस्मृत कर जाते हैं और सबसे पहले हम शरीर को स्वस्थता प्रदान करने का प्रयत्न करते हैं। कभी हमने चिन्तन किया- कि इस तरह का दृष्टिकोण आत्मा के विषय मे हमारा बना? आत्मा के दर्द को पल प्रतिपल महसूस करने लग जाय, आत्मा की पीडा से हमारा मन छट-पटाहट से भर जाय तो निश्चित रूप से हमारी गति उस दिशा की ओर हो जाय हमारे कदम उस दिशा की ओर बढ़ चले और हम भीतर में प्रवेश कर जाय।

स्वयं को ही भीतर में प्रवेश करना है उसके लिए स्वयं को ही पुरूषार्थ करना होगा। स्वयं को ही अपने कदमों को आगे बढाना होगा। दष्टिकोण अभी तक हमारा स्वयं के प्रति स्व का नहीं बना। अभी तक स्वयं के प्रति ''पर'' का दष्टिकोण बना हुआ है और 'पर' के प्रति ''स्व'' का दृष्टिकोण बना हुआ है।

जब तक इसमें परिवर्तन नहीं आता स्वयं के प्रति स्वत्व की भावना का जागरण नहीं होता और पर के प्रति परत्व का आभास नहीं होता तब तक हमारे कदम स्वयं के प्रति बढ नहीं सकते। स्वयं के प्रति बैचेनी नहीं हो सकती स्वयं के प्रति छट-पटाहट नहीं हो सकती।

शरीर के रोगों की चिकित्सा हम आज करते हैं और आत्मा के रोगों की चिकित्सा की बात कल पर छोड़ते हैं। ध्यान रहे- जिस चीज का मूल्य हमारे मन में जितना ज्यादा होता है हम उतना ही उस चीज का ज्यादा ख्याल रखते हैं।

स्वाभाविक रूप से आपके पास में लाख रूपये की पोटली हो और साथ ही चवन्नियों का ढेर हो जिसमें 10-15 रूपये हो। उस समय आप लाख रूपये वाली पोटली पर ज्यादा ध्यान देंगे उसे तिजोरी में रखेंगे ताला लगायेंगे और चाबी को भी लेकर वगैरह सुरक्षित स्थान पर रखेंगे।

जिसमें 10-15 रूपये ही पड़े हो उस ओर आप जरा भी ध्यान नहीं देंगे। जिस वस्तु का मूल्य हमारी नजर में जितना होता है उसकी सुरक्षा के लिए हम उतना ही ज्यादा पुरूषार्थ करते हैं। अभी तक हमारी दष्टि में शरीर का ही मूल्य ज्यादा है बाहर के वैभव का ही मूल्य ज्यादा है और हम इसी की सुरक्षा करने के लिए ज्यादा प्रयत्न करते हैं। लेकिन आत्मा का मूल्य अभी तक हमने नहीं जाना वह मूल्य अभी तक हमारी नजर में प्रतिष्ठित नहीं बना जिस पल हमारी नजर में आत्मा और आत्मा के गुणों का मूल्य प्रतिष्ठित बन जाय उस पल हमारी सारी क्रियाएँ बदल जाय हमारा सारा जीवन परिवर्तित हो जाय जीवन शैली बदल जाय और जीवन शैली का आधार परमात्मा की देशना बन जाय।

क्योंकि परमात्मा की देशना ही ऐसा अमत है जिसका पान करके हम भीतर की अवस्था को उपलब्ध कर सकते हैं। वही ऐसा अमत है जिन्हें अपने कण्ठ में उतार कर अपनी अक्षय स्थिति को उपलब्ध कर सकते हैं।

परमात्मा की देशना में ही वैसी शक्ति है लेकिन हम उसे विस्मत कर चुके हैं। सारा ज्ञान बाहरी साधनों की प्राप्ति में ही लगाते हैं।

मि. जटा शंकर के घर में आग लग गई। वह बाहर खड़ा था। सारा परिवार बाहर खड़ा था। बिल्कुल नया का नया मकान बनाया हुआ था। अभी तक प्रवेश भी नहीं किया था प्रवेश का मुहूर्त भी नहीं किया था केवल पेन्टिंग्स सजाई थी फर्नीचर लगाया था। बाहर खड़ा परिवार और मि. जटा शंकर सभी रो रहे थे।

यह नया का नया मकान! बीस लाख का और जल रहा है। आँखों में से रूदन होना ही था। परेशान होना ही था। स्वयं की संपदा यदि नष्ट हो जाय तो भीतर में पीडा के विचार आ ही जाते हैं, आँखें गीली हो ही जाती हैं, हृदय रो ही पड़ता है। जटा शंकर रो रहा था जोर-जोर से। इतने में ही उसका पुत्र घटा शंकर पास में आया और बोला-पिता जी! आप जरा भी चिन्ता न करें, असल में मैंने यह मकान कल ही बेच दिया था। आप रोए नहीं। अब तो वह रोयेगा जिस व्यक्ति ने इस मकान को खरीदा है। जटा शंकर ने ज्योही सुना, सारे आँसू सूख गये, चित्त प्रसन्न हो गया।

वाह बेटा! तूंने बहुत अच्छा काम किया- यह मकान बेच दिया। अब रोने की कोई आवश्यकता नहीं। जब तक अपनत्व था तब तक रूदन था। आँखों में बड़ी पीड़ा थी और ज्यो ही उसमें से अपनत्व का आधार खिसक गया, ज्यों ही उसमें से अपनत्व के भाव विस्मृत हो गये, हट गये, त्यों ही आँखों में प्रसन्नता की लहर छा गई। सोचा! यह मेरा मकान नहीं, दूसरों का मकान जल रहा है।

अचानक घटा शंकर फिर आया पिताजी के पास में और कहा- मैं एक बात तो कहना भूल ही गया। मैंने बेच तो दिया, सारी बात भी कर ली लेकिन लिखा-पढ़ी नहीं हुई थी। "लिखा-पढ़ी नहीं हुई थी" फिर आँखों में से रूदन प्रारंभ हो गया। सारा परिवार रोने लगा। जब तक लिखा-पढ़ी नहीं हुई तक तक तो यह मकान हमारा ही है। फिर वापस अपनत्व के भाव उसी मकान के प्रति जग गये।

कुछ देर पहले अपनत्व के भाव थे, आँखों में रूदन था। अपनत्व के बाद परत्व के भाव आ गये। चेहरे पर प्रसन्नता छा गई। कुछ पल बाद ज्यों ही पता चला कि यह मकान अभी तक हमारा ही है, अभी तक बिका नहीं है, त्योंही वापस वह पीड़ा प्रारंभ हो गई। फिर वही दर्द प्रारंभ हो गया, आँखों में से रूदन प्रारंभ हो गया।

ध्यान रहे! यही अपनत्व और परत्व की बात है। दृष्टिकोण यदि अपनत्व का बन जाय अपनी आत्मा के प्रति। आत्मा की दशा देखकर के, आत्मा की गिरी हुई दशा देखकर के, आत्मा को किस तरह दिनों-दिन अपनी क्रिया के द्वारा खाई में धकेल रहे हैं, यह उपक्रम देखकर के हमारी आँखों में से आँसू बहने लग जाय, हमारे भीतर में दर्द उपस्थित हो जाय कि हमारी क्रियाएँ किस तरह की है।

जिस पल अपनत्व के भाव आ जाएंगे, स्वयं के प्रति स्वत्व के भाव आ जाएंगे, उसी पल हमारी जीवन शैली बदल जाएगी, क्रियाएँ बदल जाएगी। अभी तक हमारे हृदय में वैसी विचारधारा उपस्थित नहीं हुई। यदि वैसा चिंतन उपस्थित हो जाय तो हमारा सारा जीवन प्रवाह बदल जाएगा।

आचार्य हरिभद्र सूरि महाराज धर्मबिन्दु ग्रंथ में वहीं तक पहुँचाना चाहते हैं, ले जाना चाहते हैं, उसी अक्षय स्थिति तक पहुँचा देना चाहते हैं और इसके लिए एक-एक सूत्र देते हैं। बडा विचित्र सूत्र कहा- इस सूत्र द्वारा उन्होंने फरमाया---- आचार्य भ अभय की साधना करने की बात करते हैं। लेकिन अभय की साधना के लिए भय को

साधन बनायें। बडी विचित्र बात कही- आप सुनेंगे तो कहेंगे कि साधना अभय की करनी है और भय को साधन बनाना है यह बात कैसे संभव हो सकती है।

लेकिन आचार्य श्री का बडा सूक्ष्म दष्टिकोण है गहरा दष्टिकोण है बडा रहस्य भरा चिन्तन है उनका। वे कहते हैं कि भय के बिना अभय की साधना नहीं हो सकती। भय को स्वयं के भीतर उपस्थित किये बिना निर्भय नहीं बना जा सकता और जब तक निर्भय की स्थिति हमारे भीतर में उपस्थित नहीं होती तब तक स्वयं के भीतर की सम्पदा को प्राप्त नहीं कर सकते।

साधना के लिए पहला जो सूत्र बताया गया 'योग दष्टि समुच्चय में स्पष्ट रूप से कहा गया कि वही व्यक्ति अध्यात्म की साधना कर सकता है जो निर्भय हो। आनन्दघन जी महाराज ने तीसरे संभवनाथ जी के स्तवन में भी यही बात कही-
संभव देवते धुर सेवो सवे अभय अद्वेष अखेद।'

जो व्यक्ति अभय हो अद्वेष हो अखेद हो जिसके भीतर में से भय निकल गया हो द्वेष निकल गया हो खेद निकल गया हो वही व्यक्ति परमात्मा की पूजा करने का अधिकारी है।

आचार्य श्री बडी विचित्र बात फरमाते हैं। एक तरफ तो यह बतलाया कि जब तक भय समाप्त नहीं हो जाय तब तक व्यक्ति साधना नहीं कर सकता। दूसरी तरफ कहते हैं कि साधना करने के लिए भय की उपस्थिति अनिवार्य है। बडी रहस्य भरी बात है। ये दोनों बातें जो ऊपर-ऊपर बडी असंगत लगती हैं विरोधाभासी प्रतीत होती है। यदि भीतर में जाने की चेष्टा करेंगे पुरूषार्थ करेंगे तो ज्ञात होगा कि ये दोनों एक ही श्रृंखला की दो कडियाँ हैं दोनों मिली जुली बातें हैं। भय की उपस्थिति के बिना अभय की उपस्थिति हो नहीं सकती।

पहली सीढी है भय की उपस्थिति और दूसरी सीढी है अभय का अवतरण। भय के बिना भी अभय आता नहीं और भय के होने पर भी अभय आता नहीं। बडी विचित्र बात यहाँ पर फरमाते हैं।

यह बात यदि आचरण में उतर जाय तो हम अभय के क्षेत्र में सीधे प्रवेश कर जाय। वे फरमाते हैं- बाधाओं से डरे- इसका अर्थ मैंने कल कहा था। स्वयं की आत्मा को नीचे ले जाने वाले जो उपद्रव है खाई में पहुँचा देने वाले जो उपद्रव है *वे ही बाधाएँ हैं। जब तक व्यक्ति बाधाओं से नहीं डरेगा। निश्चित रूप से व्यक्ति* अभय की साधना नहीं कर सकता। हेमचन्द्राचार्य भगवन्त ने अपने ग्रन्थ-योग शास्त्र में इसी गुण के लिए 'पाप भीरू' शब्द का उपयोग किया अर्थात् जो पापभीरू हो पाप से डरता हो। हम समाज का भय रखते हैं।

चिन्तन करें। बाजार से गुजर रहे हों। बाजार में सामने कोई बटुआ पडा हुआ हो। हो सकता है वह बटुआ खाली हों या रूपयों से भरा हुआ हो। सामने बटुआ पडा हुआ दिख जाय और साथ में कोई विशिष्ट लोग चल रहे हों प्रतिष्ठित व्यक्ति

साथ मे हो, आप वहाँ से गुजर रहे हो, नजर आपकी उस पर पड गई। मन में किस तरह के विचार आते है। विचार करते हैं कि यह बटुआ न जाने कितने रूपयों से भरा हुआ होगा। आज मुझे बटुआ मिल जाता लेकिन इतने सारे व्यक्ति साथ में हैं, किस तरह से लूँ। लोग साथ में हो, बटुआ सामने पड़ा हो, मन लेने के लिए तरस रहा हो, इच्छा होने पर भी व्यक्ति उठाता नहीं, मन में डर रहता है, अपनी इज्जत का ख्याल रहता है। बाजार में भीड़-भाड़ है, मेरा तो है नहीं। यदि मै उठा लूंगा तो एक तरह से चोरी का इल्जाम मेरे ऊपर लगेगा। वह उठाता नहीं, चला जाता है।

लेकिन चिन्तन करे! यदि वही बटुआ ऐसे क्षेत्र में पड़ा हुआ मिल जाय, जहाँ आप अकेले हो, आस-पास में भी कोई नहीं हो और बटुआ सामने पड़ा हो तो आप चारों तरफ देखेंगे कि कोई देख तो नहीं रहा है, वातावरण बिल्कुल शांत बना हुआ है, उस समय आप तुरंत बटुआ उठा लेंगे, जेब में डालकर के आगे रवाना हो जाएगें।

डर तो हमें लगता है, लेकिन समाज का डर लगता है, पाप का भय नहीं लगता।

ध्यान रहे! पाप स्वयं की साक्षी से होता है, लोगों के सामने उठा लें तो लोग बातें करेंगे। एकान्त में उठा लिया, किसी ने भी नहीं देखा। लेकिन स्वयं की आत्मा ने तो देखा, स्वयं की आत्मा तो साक्षी है। आचार्य श्री कहते हैं- जो पाप से भयभीत होता है, वही व्यक्ति निर्भय हो सकता है, वही व्यक्ति अभय हो सकता है। बिल्कुल स्पष्ट बात है, पाप से भयभीत होने वाला व्यक्ति ही अभय की, निर्भय की साधना कर सकता है। भय होना चाहिए, लेकिन भय किनसे हो? यही महत्वपूर्ण बिन्दु है। पाप से डरे। स्वयं की आत्मा की साक्षी से होने वाले पाप से डरे।

शाम का समय था-आचार्य सुहस्ति एक बार ध्यान में लीन थे। वृहत् कल्पसूत्र में बडा अच्छा यह प्रसंग आता है। चेलणा राणी एक बार नहाने के लिए गई, ज्योंही वह नहाकर बाहर आई तो देखा कि सारे वस्त्र पड़े थे लेकिन गले का बहुमूल्य हार गायब था। हुआ यह था कि जब वो नहाने के लिए गई थी, उस समय कोई बन्दर आ गया और हार उठाकर ले गया। वहाँ पर बन्दरों का बड़ा उपद्रव था। श्रेणिक महाराज ने अभय से कह दिया कि वह हार आ जाना चाहिए। अन्यथा ठीक नहीं रहेगा। तुम मेरा स्वभाव जानते ही हो।

अभय कुमार ने खूब खोजा लेकिन कहीं पर भी नहीं मिला। उधर बंदर उस हार को लेकर आराम से बैठा था। हार को कभी गले में पहनता, कभी कान में पहनता। बड़ा पुराना विचारशील बंदर था। आज के जमाने का बंदर होता तो कभी का हार को तोड़ताड़ कर फेंक देता। आचार्य सुहस्ति एक बगीचे में ध्यान में लीन थे। शाम का समय था। बंदर उसी पेड़ के ऊपर बैठा था उसने मुनि महाराज को देखा और विचार किया, हार क्यों न मैं इनके गले में डाल दूं। डाल दिया। यद्यपि आचार्य श्री ध्यान में लीन थे।मन के सूक्ष्म संचरण से ज्ञान हो गया था कि मेरे गले में हार किसी ने डाला है। लेकिन एक पल हल्के से विचार के बाद अपने मन को पुन. स्वयं की स्थिति में, स्वयं की दशा में तल्लीन कर लिया।

रात्रि का समय था। मुनियों का तो रात्रि का समय ही जागने का होता है। रात्रि का समय ही स्वयं की साधना का होता है। सारे मुनि रात्रि को ध्यान में लीन थे। सभी के एक-एक प्रहर का कायोत्सर्ग का टाईम था। अभय कुमार भी वहीं आया हुआ था और वह भी रात्रि की साधना में वहीं पर तल्लीन था।

दो मुनियों ने ज्योंही आचार्य म. के गले में हार देखा विचार किया। उनको पता नहीं था कि यह हार बंदर डाल गया है। मुनियों ने आचार्य म. के गले में हार देखा और आश्चर्य किया। आचार्य श्री के गले में हार कैसे? इस समय कोई व्यक्ति वहाँ पर उपस्थित हो तो तरह-तरह के विचार कर लें। भीतर की सारी श्रद्धा का खातमा हो जाय। मुनियों ने आचार्य म. के गले में हार देखकर विचार किया। हम सभी मुनि तो निर्भय की अभय की साधना करते हैं लेकिन निर्भय की साधना में यह बाधा-कैसे उपस्थित हो गई। तीन मुनि ध्यान से उठे भीतर गये अभय जागृत अवस्था में बैठा हुआ था। अभय कुमार से धर्मचर्चा की। दो शब्द कहें- अहो भयं अहो भयं!

अभय विचार में पड गया कि ये मुनि आत्मा की बात नहीं करते और अहोभयं-अहोभयं कहते हैं। ये मुनि बन गये हैं फिर भय की क्या आवश्यकता? अब इन्हें डरने की क्या बात? वे मुनि तो अहोभयं करके आगे बढ गये। अभय ने पूछा भी लेकिन मुनियों ने कोई जवाब नहीं दिया।

दूसरा प्रहर खत्म हुआ। अभय जागृत अवस्था में था अन्य मुनि फिर बाहर आये उन्होंने भी आचार्य श्री के गले में हार देखकर विचार किया कि यहाँ पर भी भय का प्रसंग उपस्थित हो गया। आचार्य श्री के गले में हार आया कैसे? तीनों मुनि भीतर गये और बोले अतिभयं-अतिभयं। अभयकुमार बडा परेशान हो गया। ये क्या मामला हो रहा है। इतना भय इन मुनियों को। मुनित्व पद धारण करने के बाद तो भय का नाम ही नहीं रहना चाहिए। भय की उपस्थिति का मूल कारण पाप है। अभय ने विचार किया- ये तो सभी मुनि मुनित्व की गरिमा से युक्त है और यदि यहाँ पर भी भय का प्रवेश हो गया। तो फिर निर्भय स्थान कौनसा मिलेगा? यह मैं क्या देख रहा हूँ?

लेकिन ज्योंही थोडी देर के बाद अभय बाहर आया और चमकते हुए हार को आचार्य म. के गले में देखा त्योंही सारी स्थिति समझ में आ गई। गले में हार को देखा त्योंही भय का कारण समझ गया।

कुमार आगे बढा- हार को देखा तुरन्त पहचान गया कि यह तो चेलणा राणी का हार है हार को बाहर निकाला। आचार्य श्री ने हार को आते हुए भी देखा और जाते हुए भी। लेकिन उनकी साधना अभय की साधना थी इस कारण जब हार आया तो भीतर में कोई प्रसन्नता नहीं थी और हार गया तो मन में पीड़ा के कोई भाव नहीं थे।

ध्यान रहे! भय का मूल कारण पाप है। हार के प्रति आचार्य म. के मन में तृष्णा जाग उठती थैली में रख देते तो निश्चित रूप से मन में भय का प्रवेश हो जाता।

उनकी साधना को हमें उपलब्ध करना है, इसलिए आचार्य म यह सूत्र देते हैं। यह सूत्र ऊपर से तो बड़ा विरोधाभासी लगता है। जब तक मन में भय उपस्थित नहीं होता, तब तक अभय की साधना नहीं हो सकती।

लेकिन भय किससे हो? पापो से हो, दुर्गुणों से हो। जो भीतर के दुर्गुणों से डरता है, वही सद्गुणों को प्राप्त कर सकता है। अभय की उपस्थिति के लिए पाप से डरना अनिवार्य है। पाप से भय होगा तो निश्चित रूप से हम निर्भय की साधना कर सकेंगे।

आज इतना ही।

17 भावना भवनाशिनी

अनंत उपकारी जिनेश्वर परमात्मा ने केवल ज्ञान की सम्पदा को प्राप्त करने के पश्चात् करुणा भाव से भरकर देशना दी। देशना के द्वारा जगत् की हर चेतना को जगत् की हर आत्मा को परमात्म तत्त्व तक पहुँचाने का मार्ग प्रशस्त किया।

किस प्रकार व्यक्ति अपने भीतर में उन्मज्जन निमज्जन करें, किस प्रकार व्यक्ति अपने भीतर की गहराईयों में डुबकी लगाये ताकि स्वभाव रमणता से आत्मा में स्थिर बन सके। अपने भीतर के भावों में प्रवेश करके अपने भीतर के साथ तादात्म्य सम्बन्ध जोड़ सके। अपने अन्तर के साथ एक संतुलन स्थापित कर सके।

हमारा जीवन इसी एक मात्र लक्ष्य के लिए है। लेकिन हमने अपने जीवन में अन्य वस्तुओं को अन्य पर्यायों को अन्य भावों को बहुत ज्यादा महत्त्व दिया और इसी कारण भीतर के भावों को बिल्कुल विस्मृत कर बैठे। हमें भीतर का चिन्तन करना चाहिए लेकिन हमारा चिन्तन मात्र बाहर के लिए हो रहा है।

जैसा बाहर के लिए सोचते हैं वैसा भीतर के लिए सोचें। जैसा भीतर के लिए सोचते हैं वैसा बाहर के लिए सोचें। तब हमारे जीवन में क्रांति का बिगुल बज जाय।

युवराज भद्रबाहु अपने मित्र को साथ में लेकर के एक बार घूमने के लिए जा रहा था। युवराज भद्रबाहु परम सौन्दर्यवान् था परम लावण्यवान् था। उसे अपने रूप व सौन्दर्य पर बड़ा अहंकार था।

वह मन में हरपल चिन्तन किया करता था कि मेरे जैसा स्वरूपवान और कौन है? मैं कितना लावण्य युक्त हूँ। बार-बार उसे देखकर के अहंकार को तृप्त किया करता था। शरीर की लालिमा को देखकर भीतर में अपार हर्ष के अम्बार खड़े करता था। एक बार अपने मित्र को लेकर चला जा रहा था घूमने के लिए। चलता-चलता श्मशान घाट पहुँच गया वहाँ देखा-एक मुर्दा जलाया जा रहा था।

युवराज ने पूछा मित्र से कि सामने क्या हो रहा है। उस मित्र ने जवाव दिया- सामने एक मुर्दा जलाया जा रहा है। "मुर्दा जलाया जा रहा है, शरीर जलाया जा रहा है।" युवराज ने सोचा- चलो कोई कुरूपवान् होगा, इसी कारण उसे जलाया जा रहा होगा।

पूछा कि वह पुरूष क्या कुरूप था क्योंकि उसके मन में अपने रूप और सौन्दर्य के प्रति बडा अहंकार था, इस कारण उसका अपना दृष्टिकोण शरीर के सौन्दर्य से ही निर्मित था। व्यक्ति अपने जीवन में, मन में, अपनी विचारधारा में जिस वस्तु को महत्व देता है, जिस वस्तु का मूल्य हृदय मे प्रतिष्ठित करता है फिर वह व्यक्ति उसी दृष्टि से सारे संसार को देखता है। उसी दृष्टिकोण से सारी चीजों को नापता है। व्यक्ति धन को महत्व देता है तो वह सब चीजो को धन से ही नापता है।

कभी विचार किया कि हम धर्म को भी धन से नापने के आदी बन चुके हैं। चले जाय- बिरला मन्दिर तो कहेंगे कि क्या शानदार यह मन्दिर बना है। वहाँ पर हमारा दृष्टिकोण बाहरी सौन्दर्य से युक्त होता है। जिस वस्तु के निर्माण में एक करोड रूपये लगे, वह बडा अच्छा है और जिस वस्तु के निर्माण में इससे कम लगे तो उसका मूल्य उससे कम है।

हम बाहर के सौन्दर्य से प्रभावित होते है, हम वहाँ पर यह नहीं देखते कि परमात्मा की क्या शांत मुद्रा है? वहाँ पर भी चूने और पत्थर को देखकर हर्षित होते हैं लेकिन वहाँ पर यह नहीं सोचते कि अरे? मै तो इस मन्दिर में यह देखने नहीं आया। मैं तो परमात्मा के दर्शन करने आया हूँ। यदि व्यक्ति की दृष्टि आंतरिक बन जाय तो फिर वहाँ जाकर बाहर की चीजो को न देखे। लेकिन वह स्वयं अपने जीवन में किसको मूल्य देता है, वह सारे जीवन मे उसी मूल्य के नजरिये से सारी चीजों को देखता है।

युवराज भद्रबाहु ने अपने मन में शरीर को महत्त्व दिया था और इसी कारण जब उसने सुना कि एक मुर्दा जलाया जा रहा है, शरीर जलाया जा रहा है। उसने सोचा- होगा कोई कुरूपवान। यदि स्वरूपवान होता तो थोडे जलाया जाता। पूछा कि कोई कुरूपवान था इसलिए जलाया जा रहा होगा। हितैषी ने जवाव दिया- सुरूपवान हो या कुरूपवान! जब शरीर में से आत्मा निकल जाय तो उसे जलाया ही जाता है। बडी दुर्गन्ध इसमें से पैदा होती है। भले कितना ही सुरूपवान हो, जब आत्मा इसमें से निकल जाती है तो बड़ी दुर्गन्ध इसमें से आने लगती है।

मन में बड़ी उधेडबुन चली। रथ को वापस लौटा दिया। लेकिन मन में तरह-तरह के विचार पैदा होने लगे कि मैंने यह क्या सुना? चाहे स्वरूपवान हो या कुरूपवान दोनों की एक ही दशा होने वाली है। मन मे बडे विचार पैदा हुए। वह किसी बडे सन्त के पास पहुँचा। मन की ग्रंथियो को शब्दों के द्वारा अभिव्यक्त किया और पूछा- कि मै जिसे सबसे ज्यादा महत्व देता हूँ क्या इसे भी जलाया जाएगा?

सन्त ने जवाब दिया- शरीर तो केवल उपकरण है शरीर तो केवल साधन है। शरीर को महत्त्व देते हो इसी कारण जीवन में इतने झंझावात हैं भीतर में नाना तरह के ज्वालामुखी उमर रहे हैं। "जिसे जितना महत्त्व देना चाहिए उसे उतना ही महत्त्व दो।" सन्त ने बड़ी सुन्दर बात कही। शरीर साधन है उसे साधन के रूप में ही समझो स्वयं आत्मा साध्य है उसे साध्य के रूप में ही मानो। जिस वस्तु का जितना मूल्य है उसे उतना ही मूल्य दिया जाय तो जीवन में फिर किसी तरह की अशांति नहीं रहती।

हमारे जीवन में समस्याओं का जाल खड़ा है। उसका मूल कारण है जिस वस्तु का जितना मूल्य है उसे उतना मूल्य नहीं देते। या तो उसे बहुत ज्यादा मूल्य देते हैं या फिर कम मूल्य देते हैं। शरीर का मूल्य जितना है उससे कहीं अधिक गुणा मूल्य इसको देते हैं और इसी कारण जीवन में झंझावात है। शरीर का मूल्य जितना नहीं है उसे हम लाख गुणा मूल्य देते हैं और स्वयं की आत्मा का जो मूल्य है उस मूल्य को जरा भी नहीं आंकते।

कभी कोई वाणी परमात्मा की हमारे भीतर में उतर जाय कभी कोई वाणी हमारे जीवन के लिये चिन्तन का आधार बन जाय यदा-कदा उसे हम मूल्य देते हैं। सन्त ने बड़ी महत्वपूर्ण बात कही- इस बात से युवराज भद्रबाहु का सारा चिन्तन बदल गया सारा जीवन बदल गया जीवन की प्रक्रियाएँ बदल गई।

सन्त ने कहा- जिस वस्तु का जितना मूल्य है उसे उतना ही देंगे तो सारी समस्याएँ समाप्त हो जाएंगी। हम या तो ज्यादा मूल्य देते हैं या फिर बिल्कुल भी मूल्य नहीं देते।

हम कहीं पर भी चले जाय किसी भी क्षेत्र में चले जाय हर क्षेत्र में हमारा वही दृष्टिकोण रहेगा। हमने शरीर को ही मूल्य दिया है और हम हर वस्तु को शरीर के नजरिये से ही देखते हैं। दृष्टिकोण को बदलना होगा। आत्मा के चिन्तन को ऊपर उठाना होगा उसे ही प्रतिष्ठा देनी होगी। शरीर को साधन तक ही सीमित रखें उसे साध्य न बनायें। शरीर को यदि साध्य बना लिया तो सारा जीवन व्यर्थ चला जाएगा।

कभी-कभी हम धर्म के क्षेत्र में प्रवेश करते हैं तो वहाँ भी शरीर के मूल्य को ही आंकते हैं। बड़ी विद्रूप विचारधारा है। इस प्रकार की विचारधारा को लेकर के व्यक्ति अपने भीतर के कोश को उपलब्ध नहीं कर सकता। इस विचारधारा को समाप्त करना होगा। *अध्यात्म के क्षेत्र में प्रवेश करना है तो आत्मा की दृष्टि से ही देखना होगा।*

शरीर की दृष्टि से देखने पर हम भीतर में नहीं उतर सकते।

कभी-कभी परमात्मा के मंदिर में जाते ही बड़ी गर्मी लगती है। 7-8 मिनट रुकना है 4-5 मिनट का चैत्यवंदन आपको करना है वहाँ पर भी आपका दृष्टिकोण शरीर से संबंधित रहता है। बड़ी गर्मी लग रही है।

चाहते हैं, आत्मा के भीतर में उतरना और दृष्टिकोण शरीर का साथ में लेकर के चलते हैं, बड़ी विद्रूप विचारधारा है। इस विचारधारा को लेकर के हम कभी भी भीतर नहीं उतर सकते। इसे छोडना होगा, इस विचारधारा को मन से, मस्तिष्क से हटाना होगा। तभी तो वहाँ पर जाने के बाद जो प्राप्त करना चाहते हैं, वो प्राप्त कर सकेंगे।

उस क्षेत्र में जाने के बाद भी हमारा दृष्टिकोण बाहर से सम्बन्धित रहा तो निश्चित रूप से हम भीतर मे कुछ भी उपलब्ध नहीं कर पायेंगे। ये सारे के सारे संसार के परमाणु है, इस परमाणुओं को नष्ट करने के बाद ही स्वयं के साम्राज्य में पहुँचा जा सकता है।

एक व्यक्ति हमारे पास में पहुँचा---- बड़ी जिज्ञासा को लेकर पहुँचा। धर्म क्या है? चेतना क्या है? इस सब के विषय में मैं प्रश्न करना चाहता हूँ। व्यक्ति महाराज के पास पहुँचने के पश्चात् सवाल करने लगा। मुनि म॰ ने सोचा- बड़ी उत्कट इसकी तितिक्षा लग रही है, बडा मुमुक्षु लग रहा है। जरा भीतर की दृष्टि से देखूँ कि यह अपनी जिज्ञासा लेकर के आया है या यों ही। महाराज ने पूछना प्रारंभ किया- पूछा- कहाँ से आ रहे हो? जयपुर से। पुन मुनि म॰ ने पूछा- वहाँ पर गेहूँ के भाव क्या है? उसने बाजार के सारे भाव बताना शुरू किया। बातें करते-करते आधा घण्टा हो गया, महाराज विचार में पड गये, मैंने एक प्रश्न पूछा और इसने सारा पिटारा खोलकर रख दिया। मुनि म॰ ने कहा- तुम जयपुर से इतना सारा कूड़ा-करकट दिमाग में भरकर लाये हो, फिर आत्मा परमात्मा का ज्ञान कैसे होगा। यदि ज्ञान करना है तो सारे कचरे को बाहर फेंक दो। धर्म के क्षेत्र में चले जाय और भीतर में संसार के परमाणु हो, संसार की वासनाएँ हो, भीतर में संसार का कचरा हो तो कभी भी हम भीतर में नहीं उतर सकते। भीतर में उतरने के लिए संसार के परमाणुओं को बाहर फेंकना होगा। हमारी स्थिति बड़ी विचित्र है। स्थिति तो यह होनी चाहिए कि हम व्यापार के क्षेत्र में भी चले जाय, वहाँ पर भी आत्मा के परमाणु साथ में होने चाहिए। संसार की बातें करें, उस समय भी हमारा दृष्टिकोण आत्मा का रहना चाहिए। लेकिन उल्टा हो गया। हम तो धर्म के क्षेत्र में चले जाय, परमात्मा के क्षेत्र में चले जाय, वहाँ पर भी शरीर का दृष्टिकोण रहता है जबकि रहना उल्टा चाहिए। हमारी स्थिति बड़ी विचित्र है।

मि॰ जटा शंकर अपने गाँव में रहता था। बड़ा परेशान था। गाँव के सारे लोग उस पर झल्लाते थे। बड़ा बेवकूफ आदमी था। जटा शंकर की क्रियाएँ ही कुछ इस तरह की होती थी कि सारे लोग उसे मूर्ख कहते थे, बेवकूफ कहते थे। वह विचार करता था कि इस गाँव के सारे लोग मुझे मूर्ख कहते हैं तो मैं इस गाँव को छोड़कर ही चला जाऊँगा। जटाशंकर चला गया पास के गाँव में। जहाँ पर उसे कोई जानते नहीं थे। करीब 12 बजे वह पहुँच रहा था। गाँव का कुआँ समीप में आ गया था। वहाँ पर बहुत सारे नल वगैरह लगे हुए थे। उसने सोचा- प्यास तेजी से लगी हुई है, क्यों न पानी पीकर ही गाँव में जाऊँ।

वहाँ पर महिलाएँ पानी भर रही थी मि जटा शंकर वहाँ पहुँच गया जहाँ एक नल खाली पड़ा था नल से पानी पीने लगा। महिलाएँ पास में खड़ी थी। उसने हाथ हटाया नहीं सिर हिला रहा था पानी पी चुका लेकिन नल सिर हिलाने से बन्द होने वाला नहीं नल बंद करने के लिए हाथ का उपयोग करना होगा।

महिलाओं ने देखा- यह क्या मामला है? काफी देर से सिर हिला रहा है। महिलाओं ने कहा- बेवकूफ! मूर्ख! यदि नल को बन्द करना है तो हाथ का उपय॰। कर। सिर हिलाने से नल बंद होने वाला नहीं। जटा शंकर आश्चर्य में पड गया- विचार करने लगा- अरे! यहाँ वालों को कैसे पता चला कि मेरा नाम मूर्ख है। सारे लोग मुझे मूर्ख कहते हैं। उसने कहा- देवी जी! आपको क्या पता कि मेरा नाम मूर्ख है। महिलाओं ने कहा- तुम्हारी क्रियाएँ ही ऐसी है जिससे पता चलता है कि तुम मूर्ख हो। भाई! नल तो हाथ से बन्द करना होगा। सिर हिलाने से नल बंद नहीं होता।

वस्तु के प्रति जैसा दष्टिकोण होना चाहिये उस वस्तु के विषय में चिन्तन स्पष्ट हो जाय तो निश्चित रूप से हम भीतर में उतर जाय। हम तो केवल सिर हिलाकर चाहते हैं कि सारे पाप नष्ट हो जाय सिर हिलाकर चाहते हैं कि कर्मों का बंध नष्ट हो जाय केवल सिर हिलाने से काम नहीं चलता।

पाप को नष्ट करने के लिए- स्वयं के दृष्टिकोण को बदलना होता है लेकिन अभी तक हमने अपने दृष्टिकोण को नहीं बदला। दष्टिकोण जिस पल बदल जाएगा हम उसी पल स्वयं के साम्राज्य को उपलब्ध कर लेंगे।

शीतला चार्य आचार्य म की दीक्षा हुई। उनकी बहिन हमेशा अपने छ पुत्रों से कहती थी कि तुम्हारे मामाजी ने दीक्षा ली है तो तुम भी उसी मार्ग में जाओ। उनके भीतर के संस्कार ऐसे थे कि उनके मामा के प्रभाव में आकर छ ही भानजों ने दीक्षा ले ली। लेकिन उस समय आचार्य भगवंत किसी दूसरे गाँव में विराज रहे थे। छहों ने स्वयं ने दीक्षा ले ली। दीक्षा लेने के बाद विचार किया- अब मामाजी महाराज के दर्शन कर लें। विचार करके वहाँ से विहार कर गये।

विहार करते-करते एक गाँव पहुँचे। गाँव के पास नदी थी। उस नदी के दूसरे किनारे वही गाँव था जहाँ मामा जी म विराजमान थे। शाम को नदी में पानी का पूर आ गया वे आगे नहीं जा सके। सोचा- यदि थोड़ी देर पहले आते तो इस नदी को पार कर लेते मामाजी म के पास में पहुँच गये होते। उनके चरणों में बैठकर उनकी मुख मुद्रा से अमृत वाणी का पान करते। इस प्रकार की उनकी मानसिक स्थिति बनी। एक रात्रि के लिए उन्हें अलग रहना पड़ा। वो पास के ही बगीचे में रूक गये।

उधर मामाजी म को पता चला कि मेरे भानजे मेरे दर्शनार्थ आ रहे हैं मन में बड़ी प्रसन्नता थी। इधर मुनियों के मन में इस तरह की भावना प्रवाहित हुई कि हम कितने अभागे हैं जो गुरू महाराज से दूर हैं परमात्मा की वाणी से दूर है भीतर में

इतने ज्यादा उतर गये कि क्षपक श्रेणी के द्वारा केवल ज्ञान को उसी रात्रि मे उपलब्ध कर लिया। भीतर में इतना पश्चाताप हुआ कि उसी रात्रि में छ हों ने कर्मो के बन्धन को नष्ट कर लिया। केवल ज्ञान व केवल दर्शन को उपलब्ध कर लिया। अब वे केवली बन गये थे। अब उनका स्वरूप परम निर्मल हो गया था।

इधर शीतलाचार्य इंतजार कर रहे थे कि रात्रि में तो न आ सके लेकिन अब वे मुनि मेरे दर्शनार्थ आयेंगे। इंतजार कर रहे थे लेकिन काफी देर तक कोई समाचार नहीं मिले। बाद में किसी ने कहा- कि वे मुनि एक कि·मी· दूर जो बगीचा है, वहाँ पर विराजे हुए हैं। नदी का पानी उतर चुका था।

आचार्य श्री ने सोचा- क्यों नहीं आ रहे हैं वे यहाँ? लगता है, उन्हें घमंड आ गया है कि वो मेरे सामने किस प्रकार आऐं और किस प्रकार वन्दन करें। वो आना नहीं चाहते हैं तो मैं ही चला जाता हूँ। यद्यपि शिष्टाचार उनका है क्योंकि वे नवदीक्षित है, फिर भी मैं ही चला जाता हूँ- क्या फर्क पड़ेगा?

आचार्य श्री बगीचे तक पहुँच गये। विचार किया- कम से कम यहाँ तक तो मुझे लेने आऐंगे, बगीचे तक पहुँच गये लेकिन कोई मुनि आगत- स्वागत के लिए 5-6 कदम भी नहीं आया। आचार्य श्री को पता नहीं था कि ये मुनि केवली बन गये हैं। मेरे विषय में चिन्तन करते-करते इन्होने अपने ज्ञान को प्रकट कर लिया है। उन्होंने सोचा- अभी तक नहीं आए- लगता है बहुत ज्यादा घमंड आ गया है। मन में थोड़ा-थोडा आक्रोश भी आया। अरे! मैं इतना बडा हूँ फिर भी ये सामने नहीं आए। फिर विचार किया- कोई बात नहीं, मैं ही सामने चला जाता हूँ।

आचार्य श्री बिल्कुल सामने पहुँच गये। सोचा- सामने जाऊंगा तब तो ये मुनि अपने आसन से खड़े होंगे, तब तो ये स्वागत करने के लिए उठेंगे। लेकिन वो तो केवली थे। आचार्य श्री के सामने पहुँचने पर भी मुनि अपने आसन से नहीं उठे।

शीतलाचार्य ने विचार किया- मैंने तो कल्पनाएँ की थी लेकिन अब तो स्पष्ट हो गया कि ये अहंकार के शिखर पर आरूढ हो गये। ऐसा लगता है कि मैं ही इन्हें वंदना करूँ। चलो, मैं ही इन्हें वंदन कर लेता हूँ। शीतलाचार्य के मन में क्रोध था फिर भी वंदना करनी शुरू की। वंदना के पश्चात् कहा- अब तो तुम्हारा मन राजी हुआ।

उनमें से एक ने जवाब दिया- कि आपने वंदन तो किया लेकिन द्रव्य वंदन किया- भाव वंदन नहीं किया। भाव वंदन के अभाव में आप भीतर में उतर नहीं सकते।

ज्यों ही यह बात आचार्य म· ने सुनी, आश्चर्य चकित हो गये कि ये बिल्कुल सत्य बात कर रहे हैं कि द्रव्य वंदन किया- क्योंकि क्रोध के आवेग में किया गया वंदन द्रव्य वंदन है। मन की निष्ठा और दिल की श्रद्धा न हो तब तक वह वंदन द्रव्य वंदन माना जाता है, भाव वंदन नहीं होता।

उन्होंने पूछा कि आपको कैसे पता चला कि मैंने द्रव्य वंदन किया। उन मुनियों ने कहा- हमने अपने ज्ञान से देखा। आचार्य श्री चमक उठे। रोम-रोम प्रकम्पित हो उठा। ये मैं क्या सुन रहा हूँ। आपको कौन सा ज्ञान उपलब्ध हुआ?

अप्रतिपाति ज्ञान उपलब्ध हुआ है।

आचार्य श्री द्रवित हो उठे कि मैं कितना अज्ञानी जीव हूँ कि मैंने इन केवलियों की आशातना कर ली। मैं इतनी देर से बढ-चढाता हुआ आया- वंदन भी किया लेकिन भीतर में नहीं उतर सका। उसी समय जब भाव वंदन के द्वारा स्वयं के पापों को धो डाला भाव वंदना के द्वारा जब स्वयं के कर्मों को धो डाला उन्हें भी उसी समय केवल ज्ञान प्राप्त हो गया।

ध्यान रहे। संसार के परमाणुओं को साथ में लेकर के व्यक्ति कभी भी भीतर में उतर नहीं सकता। हम जीवन में मोक्ष की यात्रा करना चाहते हैं तो भी संसार को साथ में लेकर के। संसार की क्रियाएँ, संसार के बाहरी साधन संसार के बाहरी सुख साथ में लेकर के यात्रा करना चाहते हैं।

आचार्य श्री हरिभद्रसूरि धर्म बिन्दु ग्रंथ के द्वारा उसी लक्ष्य को अपने में प्रतिष्ठित करना चाहते हैं। मैं हमेशा प्रारंभ में उसी लक्ष्य की बात करता हूँ। भीतर में उतरने की बात कहता हूँ। इसका एक मात्र कारण है हमारे मन में हमारे भीतर में ऐसा पुरुषार्थ जाग उठे ऐसा संकल्प जाग उठे कि मूल लक्ष्य को स्वयं के भीतर में केन्द्र बिन्दु में प्रतिष्ठित कर ले। ताकि हमारा आचरण भी उसी दिशा में कदम बढा सके।

व्यक्ति जब निर्णय कर लेता है कि मुझे उस दिशा में जाना है तो फिर बाद में वह लाख परेशानियाँ भोगने को तैयार हो जाय कितने भी बीच में नदी नाले आ जाय यदि लक्ष्य मजबूत होगा तो व्यक्ति का आचरण भी उसी दिशा की ओर प्रवाहित हो जाएगा।

मूल लक्ष्य को अपने दिमाग में अपने मस्तिष्क में प्रतिष्ठित करना है।

यहाँ पर आचार्य म. श्रावक का तीसरा गुण बतला रहे हैं। दो गुण आपने सुने। पहला गुण धन के विषय में था। दूसरा गुण विवाह के विषय में था। यहाँ पर तीसरा गुण बतला रहे हैं कि श्रावक डरे। भय के विषय में कहा।

आचार्य श्री फरमाते है कि श्रावक डरे, जीवन में भयभीत बने। लेकिन किन चीजों से भयभीत बने किन चीजों से डरे। आचार्य महाराज सावधान करते हुए कहते हैं कि "पाप भीरू" अर्थात् व्यक्ति बाधाओं से डरे, उपद्रवों से डरे। उपद्रवों से डरे, बाधाओं से डरे, यह तो ऊपरी-ऊपरी बातें हैं। इसका भीतरी अर्थ बडा महत्त्वपूर्ण है। आचार्य श्री स्पष्ट रूप से कहते हैं कि शरीर की बाधाएँ-बाधाएँ नहीं होती आत्मा की बाधाएँ ही बाधाएँ होती है। आत्मा की बाधाओं से डरना है वही व्यक्ति श्रावकत्व की भूमिका में पहुँच सकता है। भीतर के उपद्रवों से हमें डरना है। यहाँ पर आचार्य श्री भीतर

उतरने की बात करते हैं। धन की बात थोडी ऊपर की थी, विवाह की बात भी थोडी ऊपर की थी। अब वे आपको भीतर की गहराईयों में पहुँचाना चाहते हैं।

सबसे पहले आचार्य श्री ऑपरेशन करना चाहते हैं। जैसे एक व्यक्ति बीमार है यदि बीमारी को नष्ट न करे तो— जैसे- मान लो। एक व्यक्ति के शरीर में फोडा हो गया और उसके शरीर में रस्सी हो गई तो डॉक्टर सबसे पहले रस्सी को दूर करने का उपाय करेगा। जब तक रस्सी दूर न हो जाय तब तक वह ओइन्टमैंट नहीं लगाएगा। रस्सी साफ होने के बाद फिर वह ओइन्टमैंट लगायेगा।

इस प्रकार आचार्य श्री सबसे पहले ऑपरेशन करना चाहते हैं। अर्थात् भीतर की गन्दगी बाहर निकल जाये तो परमात्मा का पवन हमारे भीतर में प्रवेश कर जाये, परमात्मा का विशुद्ध आलोक हमारे भीतर में आनन्द के रूप में प्रतिष्ठित हो जाय।

आचार्य श्री सबसे पहले भयभीत होने की बात करते हैं यही आत्मा का ऑपरेशन है। आत्मा का ऑपरेशन अर्थात् आत्मा के ऐसे उपद्रव, ऐसी बाधाएँ जो हमें नीचे की ओर धकेलती है। उन्हीं से हमें डरना है, हम बाहर की चीजों से डरते हैं, मगर भीतर की चीजों से नहीं डरते। हमारे भीतर में कितने दूषण भरे पडे हैं, भीतर के उपद्रवों से डरना ही होगा।

ध्यान रहे। हर व्यक्ति के मन में यह प्रतिष्ठित होता है कि मैं क्या कर रहा हूँ? मेरी क्रियाएँ कैसी हो रही हैं? हर व्यक्ति सोचता है कि मैं जो कर रहा हूँ वह क्रिया कैसी है? भले ही वह स्वार्थ के वश में अन्धा हो जाय। यदि कोई व्यक्ति चोरी करता है तो उसे मालूम रहता ही है कि मैं चोरी कर रहा हूँ।

स्वयं की साक्षी से ही भीतर के उपद्रवों से डरना है। यह एक निश्चित तथ्य है कि जो क्रियाऐं पापमय होती है, उन्हीं से व्यक्ति भयभीत बनता है। पाप से ही व्यक्ति को डर लगता है और किसी से व्यक्ति को डर नहीं लगता।

एक मुनि महाराज अपने शिष्य को साथ में लेकर के चले जा रहे थे। मुनि म थे तो अपरिग्रही, फिर भी उनके मन में धन के प्रति थोड़ी मूर्च्छा जागृत हो गई थी। कुछ ही दिनो पहले किसी व्यक्ति ने उन्हें एक स्वर्ण खण्ड दिया था और उसी स्वर्णखण्ड पर उनकी मूर्च्छा थी। उस स्वर्ण खण्ड को उन्होंने अपने मस्तिष्क में प्रतिष्ठित कर दिया था। रोज-रोज उसे देखते, प्रसन्न होते। वो जानते थे कि मैं जो कर रहा हूँ वह अच्छा नहीं, पापमय है, इसी कारण मुनि म उस चीज को छुपा-छुपाकर रखते थे। एक बार शिष्य के साथ जंगल में आगे बढ रहे थे।

अंधेरा होने लगा। उस स्वर्णखण्ड के कारण उन्हें डर भी लग रहा था। उन्होंने शिष्य से पूछा- अभी गाँव कितना दूर है? मुझे डर लग रहा है। शिष्य ने विचार किया- मुनियो को, फक्कडों को काहे का डर लगे? मुनियों को तो जैसा स्थान मिले, वहीं रह जाय। बंगला हो या जंगल, कहीं पर भी उन्हें डर नहीं लगना चाहिए।

शिष्य ने विचार किया- डर का कोई निमित्त होना चाहिए। शिष्य बड़ा चतुर था। उसने सोचा- मुझे डर के कारण को ही समाप्त कर डालना है। गुरू म को कहीं जाना था उन्हें शिष्य पर बड़ा विश्वास था। उसने झोली शिष्य को संभला दी। गुरू के जाने के बाद शिष्य ने झोली को खोलकर देखा तो सारा राज समझ में आ गया कि इसी कारण गुरू म कह रहे थे कि मुझे डर लग रहा है उसने सोने को बाहर फैंक दिया उसके स्थान पर पत्थर रख दिया। और आराम से बैठ गया।

गुरू म आये। झोली उठा ली। वजन बराबर है। आराम से आगे चल दिये। शिष्य को कहा- जल्दी चलो। डर लग रहा है। शिष्य ने कहा- अब डरने की कोई बात नहीं। डर को तो मैंने पीछे ही फैंक दिया है डर को तो मैंने पीछे ही छोड़ दिया। गुरू म को यह बात समझ में नहीं आई। फिर भी शिष्य की बात ने गुरू म के मन में संशय को जगा दिया। भीतर हाथ डाला- झोली में। चांदनी में देखा तो लगा कि कहाँ पीला-पीला चमकीला सोना था और यह क्या खुरदरा-खुरदरा पत्थर दिख रहा है?

अरे! यह पत्थर! मेरा सोने का टुकड़ा कहाँ गया? शिष्य ने कहा- मैं तो भय को पीछे ही छोड आया। थोडी सी चीज के लिए क्यों मन को प्रकम्पित करना? आराम से चलो। गुरू म ने झोली वहीं पर रखी और कहा- जब डर का कोई कारण नहीं तो फिर गाँव में जाने की क्या जरूरत है? यहीं पर रह जाते हैं।

आचार्य श्री उसी से भयभीत होने की सलाह देते हैं। कहते हैं कि तुम्हारा मन यह साक्षी दे कि मैं जो कर रहा हूँ वह गलत है उन क्रियाओं से व्यक्ति डरे तो निश्चित रूप से गन्दगी बाहर आएगी। इस तीसरे गुण के रहस्य को हमें समझना है।

केवल ऊपरी बातों से नहीं इसके अर्थ को जीवन में उतारना है। इस गुण के प्रति वही व्यक्ति भीतर में जागरूक हो सकता है जिसने अपना लक्ष्य बना लिया और निश्चय कर लिया कि मैं उस वस्तु को उतना ही मूल्य दूंगा जितना उसका है। न मैं ज्यादा मूल्य दूँगा और न कम मूल्य दूंगा यदि यह सूत्र हमारे समझ में आ जाय तो जीवन की सारी क्रियाएँ बदल जाय जीवन में नया मोड आ जाय।

आज इतना ही।